अभावमय–आनन्द

जीवन में करना, पाना, खोना और होना–इन चारों पहलुओं की प्रेरक हमारी अतृप्ति व असन्तुष्टि है। किसी भी अभाव की पूर्ति के लिए जीवन में हम कुछ न कुछ करते रहते हैं। साधारणतः वस्तु का पाना या खोना (छुटकाराञपाना) इच्छा की पूर्ति समझी जाती है। लेकिन यह पाना और खोना इच्छा की समाप्ति नहीं होती। कुछ खोकर या पाकर हम **होने** के रूप में, उसका कुछ Out come चाहते हैं, कि इच्छित वस्तु पाने अथवा खोने के बाद ऐसा हो जाएगा। यह **'होना'** मानसिक भाव है, प्रमोशन मिल गई अब मैं बहुत प्रसन्न हूँ, यह प्रसन्नता सशर्त है। लेकिन पाने के बाद भाव बदलते रहते हैं। कोई वस्तु हम पाना चाहते थे। उसे पाने के बाद मन उल्लसित है या किसी आशंका, तनाव, भय के कारण डूब रहा है, यह उस प्राप्ति के बाद की हमारी मानसिक स्थिति है, जिसकी कल्पना हम साधारणतः नहीं करते।

जितनी भी हमारी प्राप्तियाँ हैं, उनके आकलन का स्तर बौद्धिक है, उनका आधार हमारी सोच है। कुछ पाने और खोने के बाद की मानसिक स्थिति हमारी आसक्ति या विरक्ति का मापदण्ड है। यदि मानस विरक्त है तो हर करने-पाने और खोने के बाद हमारा अभीष्ट मात्र यही रहेगा, कि मानसिक आनन्द खण्डित न हो। विरक्ति स्वयं में शक्ति है। **विरक्ति, अभावमय भाव है और आसक्ति, भावमय भाव है।** यदि मानसिक स्थिति विरक्तिमयी है, तो हम किसी भी वस्तु की प्राप्ति के लिए लालायित नहीं होते, बल्कि छुटकारा पाना ही हमारे लिए पाना होता है। हमें किसी वस्तु की

प्राप्ति भी होती है, तो उसके अधिग्रहण में हमें समय लगता है, कि क्या करना है, मैं तो वैसे ही आनन्द में हूँ। मानसिक स्थिति जब अभावमय भाव की होती है तो हमारी बाह्य भाग-दौड़ बन्द हो जाती है। हमारा कर्ता भाव समाप्त हो जाता है। तब कृत्य स्वतः होते हैं। असन्तुष्टि व अतृप्ति का भाव ही हमें किसी कृत्य के लिए प्रेरित करता है, कि यह पा लूँ तो ऐसा हो जाएगा। यहाँ हम प्राप्तियों के लिए लालायित होते हुए स्वयं कर्ताभाव में कार्य करते हैं।

जीवात्मा का जब विशुद्ध स्वरूप प्रस्फुटित होता है, तो इसका सर्वप्रथम लक्षण यह होता है, कि उसका कर्ता भाव पूर्णतः शून्य हो जाता है। वहाँ जो कुछ होता है, स्वतः होता है। यही **कर्मयोग** है, इसमें हममें निमित्तता का भाव भी नहीं रहता। यह कर्म तो प्रभु किसी के द्वारा भी करवा सकते हैं, मेरे द्वारा हो गया इसमें कोई विशेष बात नहीं है। **कर्मयोग** का आधार **ईश्वर से योग** है। योगी ईश्वर से जुड़ा होता है उसके द्वारा **'योगकर्म'** होता है। **ईश्वर या सद्गुरु से मानसिक योग में हमारे द्वारा जो भी होता है, वह योग कर्म है, जिसका प्रतिफल कर्मयोग है।** वही निष्काम कर्म है जिसमें एक तो कर्ता भाव न हो और दूसरे कर्म की प्रेरणा कुछ पाना या खोना न हो। ईश्वर सच्चिदानंद है। सद्-चेतन व आनन्द का अविरल एवं अकाट्य संगम है। जब हमारा मन अभावमय भाव से परिपूरित है तो आनन्दमय होता है। उस आनन्दमय मन के साथ बुद्धि का चेतनामयी होना दैवीय कानून है। इन दोनों में समन्वय हुआ-हुआ होता है। जिसका प्रतिफल सद् कर्म के रूप में प्रकट होता है। इसमें हमारे द्वारा हुए-हुए कर्म का हमें सूक्ष्म आभास **सा** होता है। योग कर्म सद् है क्योंकि उसमें खोना और पाना कोई महात्म्य नहीं रखता। मानस पहले ही आनन्द से परिपूरित रहता है।

खोने-पाने और होने का भाव उन्हीं कृत्यों में होता है, जिनमें मानस में कोई अतृप्ति या चाहत रहती है। चाहतें भी कई प्रकार की होती हैं। सद्गुरु के सामीप्य व सान्निध्य की चाहत, कुछ सद् श्रवण की चाहत, इष्ट-दर्शन की चाहत। ये चाहतें इतनी भारी हैं कि जीवन में हमारी 16000 चाहतों पर

हावी होकर हमारी समस्त आसक्तियों को विरक्ति में रूपान्तरित कर देती हैं। **'सद्'** की चाहत हमें तभी होगी, जब भीतर से हम आनन्द व चेतनता से जुड़े हों।

साधना, ध्यान-समाधि, श्रवण, चिन्तन, मनन आदि का लक्ष्य हमारे मानस को आनन्दित रखना ही है। ताकि हमारी मानसिक स्थिति अभावमय भाव की हो जाए। विशिष्ट भाव जब परिपक्व होते हैं, तो स्वभाव बन जाता है। अन्ततः स्वभाव ही संस्कार बन जाते हैं। उन संस्कारों पर ही हमारे जन्म-जन्मान्तरों की श्रंखला निर्भर है।

जहाँ **'चाहिए'** होगा, वहाँ **'चाहत'** होगी और जहाँ चाहत होगी वहाँ कृत्य होगा। जहाँ कृत्य होगा, वहाँ कर्ता भाव होगा और कर्ता का अभिमान होगा। जहाँ कर्ता भाव होगा वहाँ **'अभावमय भाव'** नहीं हो सकता। कर्ता भाव के साथ भोक्ता भी बनना होगा। जहाँ करने की चाहत होगी, वहाँ पाने की चाहत भी होगी। वहाँ कर्ता भाव भी होगा, तो हम प्रारब्ध से कैसे छूटेंगे? इसलिए कुछ भी मुझे क्यों करना चाहिए?

जीवन **में** हमारी असंख्य चाहतें हैं। जिनकी पूर्ति जीवन **में** होनी उतनी ही अनिश्चित है जितना कि हमारा जीवन अनिश्चित है। इसलिए हम आजीवन इन्हीं जीवन **में** भविष्यों में उलझे रहते हैं। जीवन **का** भविष्य **'भस्मी'** सुनिश्चित, परिलक्षित व दर्शित है। जीवन **में** जो कुछ करना, पाना, खोना और होना हुआ उसका अन्ततः यही (भस्मी) होना है जो स्वयं में जड़ एवं **'कुछ नहीं'** है। यदि हम अपने जीवन-काल में अपनी भस्मी की अवधारणा करके उससे आत्मसात् हो जाएँ, तो वह भस्मी चेतन हो जाएगी।

देह **में** भविष्य, **देह तक** हैं और देह **का** भविष्य, **देहातीत** है। देह में जितने भविष्य हैं वे सब देह के साथ समाप्त हो जाते हैं। जो देह का भविष्य है, वह देह के समाप्त होने के बाद प्रकट होगा। दोनों का परस्पर कोई दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। देह **में** भविष्य हमारी कल्पनाएँ हैं और देह **का** भविष्य भस्मी सुनिश्चित है। जब देह, काल (वर्तमान, भूत, भविष्य) से परे हो जाए, तब देह का भविष्य प्रकट होता है। देह के रहते जब अवधारणा द्वारा परम

सद्गुरु-कृपा से देह का भविष्य प्रकट होगा, तब काल, अकाल हो जाएगा। यदि देह नहीं रहेगी, तो देह **में** भविष्य नहीं रहेंगे। महत्त्वपूर्ण यह है, कि **'भस्मी'** देह **का** भविष्य है लेकिन **'भस्मी'** का अतीत देह नहीं है। अतः जो सुनिश्चित है और देह के बाद अवश्य प्रकट होगा, उसका देह-काल में अवधारणा द्वारा प्रकाट्य हो जाए, तो जो देह रहेगी वह विदेह-देह होगी।

देहातीत भविष्य (भस्मी) देह का है, तो देह के होते हुए जब कुछ क्षण नित्य अवधारणा द्वारा इसका जामन देह में लगेगा, तो देह के होते हुए भी हम विदेह हो जाएँगे। देह की जिन विधाओं एवं प्राप्तियों को हम भाव देते हैं, उनके प्रति भावों का अभाव होने की मानसिक स्थिति को **अभावमय भाव** कहते हैं। हमारे भाव उसी प्रकार परिवर्तित होते रहते हैं, जैसे बाज़ार में भाव चढ़ते-उतरते रहते हैं। अभावमय भाव में चढ़ने-उतरने का प्रश्न ही नहीं होगा। वह चढ़ेगा तो अभाव, उतरेगा तो अभाव और स्थिर रहेगा तो अभाव। हमारे समस्त भावों में जब अभाव का जामन लगने लगता है, तो हमारे **'भावों'** का **'अभावमय भाव'** में रूपान्तरण हो जाता है। जीते जी जब **'अभावमय'** मानसिक स्थिति हमारी देह में पदार्पित होती है, तो उसका प्रमुख लक्षण यही है, कि हम कभी भी **अभाव में** नहीं होते।

''चाह गई चिन्ता गई मनुवा बेपरवाह,
जिसको 'कुछ नहीं' चाहिए, वह शाहों का शाह।''

'भस्मी' देह का **'कुछ नहीं'** है, जीवन का देहातीत भविष्य **'कुछ नहीं'** है। जीवन व देह में असंख्य भविष्य हैं। थोड़ा कुछ, कुछ न कुछ, कभी कुछ-कभी कुछ, इतना कुछ, उतना कुछ, ऐसा कुछ, वैसा कुछ इनकी श्रृंखला अन्तहीन है। जब देह का कुछ नहीं (भस्मी) जीवन में कुछों-कुछों में पदार्पित, अवतरित, अवधारित होता है, तो ये सभी **'कुछ'** परे हट जाते हैं। तब **'कुछ नहीं'** (भस्मी) का अखण्ड साम्राज्य होता है। यह **'कुछ नहीं'** सब कुछों का स्वामी है। यह **'कुछ नहीं', कभी भी 'तनिक भी कुछ'** नहीं बन सकता। भस्मी, देहातीत है जैसे दही, दूधातीत है। दही, पुनः दूध में परिवर्तित नहीं हो सकता। बहुत से दूध में थोड़े से दही का जामन लगाने से

सारा दूध दही बन जाएगा, लेकिन थोड़े से भी दही में कितने भी दूध का जामन लगने से वह दूध में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार देह का **'कुछ नहीं'** देह में **'सब कुछ'** को हमेशा के लिए **'कुछ नहीं'** कर देता है। यह नकारात्मकता नहीं है, बल्कि परम आनन्दमय एवं जीवन्त जीवन में सर्वोकृष्ट एवं सर्वोत्तम सकारात्मकता है। जब परम सद्‌गुरु-कृपा से जीवन के किसी भी काल, विधा, परिस्थिति में हम इस **'कुछ नहीं'** को धारण कर लेते हैं, तो हमें स्वामित्व मिल जाता है।

जीवन-काल में हम बहुत से उपर्युक्त **'कुछों'** में भटकते रहते हैं। इस भटकन में अन्ततः मृत्योपरान्त **'कुछ नहीं'** (भस्मी) की ही सिमटन होती है। जीवन-काल में हम धन, प्रौपर्टी, विभिन्न सम्बन्ध, पद-प्रतिष्ठा और न जाने क्या-क्या समेटने में लगे रहते हैं और अन्ततः मृत्योपरान्त हमारे भस्मी बनने पर सारा समेट, मलियामेट हो जाता है। वही हमारा Ultimate है। इस मलियामेट (भस्मी) का जामन सारे समेट में यदि जीते जी जीवन-काल में कुछ क्षण भस्मी की अवधारणा द्वारा लगा दें, तो सारा समेट हमारी दृष्टि में मलियामेट (महत्त्वहीन) हो जाएगा। यह मलियामेट फिर कभी समेट नहीं बनेगा, क्योंकि दही दूध नहीं बन सकता।

बुद्धिजीवी प्रश्न कर सकते हैं, कि जीवन भर में सारे समेट को जीते जी मलियामेट क्यों करना है, समेटा काहे के लिए है? सद्‌गुरु कहता है, कि बिना मलियामेट के तू उसका भोग और आनन्द लेकर दिखा, वह तुझे समेट जाएगा। तेरे जीवन के सुख, शान्ति, संतोष, स्वास्थ्य, स्वजन, सत्संग आदि को तेरा समेट ही लपेट लेगा। भोग और आनन्द तभी होगा, जब भाव में अभाव का जामन लग जाएगा:–

''यूँ तो तेरे बगैर मुझे कुछ कमी नहीं,
ये और बात है कि मयस्सर खुशी नहीं।''

खुशी इसलिए नहीं है, क्योंकि समेट ने हमें लपेटा हुआ है। मलियामेट उस लपेट को समाप्त कर देगा। वहाँ से हमारा आनन्द प्रस्फुटित होगा। **अभावमय भाव ही आनन्द है।** जीवन में यदि (पद, प्रतिष्ठा, धन, सम्पदा,

मान, सम्मान, नाम-यश, ज्ञान, सौन्दर्य आदि) भावों का हमारे मन में कोई भाव (मूल्य या महात्म्य) न हो, उनका अभाव हो जाए तो जो भाव होता है, वह अभावमय भाव होता है। डिग्रियाँ बहुत हैं, पद बहुत ऊँचा है, सुन्दर कार, बंगले, ऑफिस आदि हैं, गीता, वेद, उपनिषद् सबके श्लोक कण्ठस्थ करके मानो सारे ज्ञान को समेटा हुआ है, नाम के पोस्टर लगे हुए हैं, अखबारों या पत्रिकाओं में जय-जयकार हो रही है, शक्तियाँ बहुत हैं इस प्रकार के हमारे भावों में बहुत **आकर्षण** होता है, लेकिन अभावमय भाव में **संकर्षण** होता है।

हममें कल्पना करने की ईश्वर प्रदत्त अद्भुत शक्ति है। हम बैठे-बैठे कल्पना कर लें, कि विश्व के समस्त बैंकों में मेरा ही धन है। देखिए हमने अपना कितना भाव बढ़ा लिया, फिर सोंचे तो क्या हो जाएगा? इस तरह भावों में अभाव का साम्राज्य हो जाएगा, हमारा मानस अति ऐश्वर्यवान हो जाएगा। हमने इस स्थिति की अनुभूति कभी नहीं की क्योंकि हमारी देह जब भस्मी बनती है, तो हम नहीं रहते। तो देह के रहते जब कुछ क्षणों के लिए हम अपनी उस देहातीत स्थिति (भस्मावस्था) की अवधारणा कर लेते हैं, तो वह देह जो सुखों-दुःखों में भटक रही थी, वह आनन्द का स्रोत हो जाती है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(24 – 25 जून, 2007)

'जीवात्मा'

जीवात्मा को जब देहाधिपत्य (देह मेरी है) के साथ देहाध्यास (मैं देह हूँ) हो गया, तो वहीं से इसकी अन्तहीन अधोगति का सिलसिला प्रारम्भ हो गया। सच्चिदानंद परमात्मा का इकलौता मानस-पुत्र Divine Penal Code (D.P.C.) की 1008 धाराओं के अन्तर्गत युगों-युगान्तरों से (प्रारब्धवश) विभिन्न जन्मों-जन्मान्तरों में भटक रहा है। यह गलतियों के ऐसे चक्रव्यूह में फँस गया, कि इसके लिए बाहर आना असम्भव सा हो गया। यह अध्यास व अधिपत्य क्या है? किसी साम्राज्य पर आक्रमण करके जीतने पर अथवा किसी राजा के अपना साम्राज्य समर्पित करने पर राज्याधिपत्य कर लिया जाता है। जब कोई राजा किसी राज्य पर अधिपत्य कर लेता है, तो साम्राज्य का ख़जाना और सम्पूर्ण गतिविधियों का नियन्त्रण एवं संचालन उसके हाथ में आ जाता है। वहाँ जो कुछ होता है, उसके संकेत पर ही होता है; इसे अधिपत्य कहा जाता है। इसलिए राजा को राज्याधिपति भी कहते हैं।

मानव-देह में सबसे महत्त्वपूर्ण मन एवं बुद्धि हैं। हाथों, पैरों तथा स्थूल देह पर अधिपत्य का कोई अर्थ नहीं है। देह की सरकार देह का नर्वाइन सिस्टम (तन्त्रिका तंत्र)त्रऔर हारमोनिक सिस्टम है। इस पर और देह पर आधारित सब कुछ पर जब **जीवात्मा** को अधिपत्य हो जाता है, तो उसे देहाधिपत्य कहा जाता है। यह **गलती से गलती** हुई थी, जो क्षम्य थी। देहाध्यास (मैं देह हूँ) **सरासर गलती** है। देहाध्यास में देह सहित जगत में जब, जो, जैसा है उस पर कब्ज़े की भावना होती है। यहाँ देह की समस्त

कार्य-प्रणाली, तन्त्रिका-तंत्र एवं निर्णय, परामर्श और क्रियाओं पर पूर्णतः अध्यास का भाव होता है।

जीवात्मा ने स्वयं को देह के नाम-रूप के साथ पहचाना और जाने-अनजाने अनन्त अधोगति को प्राप्त हो गया। जिन साकार वस्तुओं, प्राणियों और विधाओं को हम अपना कहते हैं, उन्हें अपना स्वरूप नहीं मानते। उदाहरणतः कार मेरी है, घर मेरा है, दुकान मेरी है, कुत्ता, तोता या घोड़ा मेरा है; हम कहते हैं, लेकिन कोई नहीं कहता मैं कार हूँ, मैं घर या दुकान हूँ आदि-आदि। लेकिन देह के विषय में हम सबसे यह **सरासर गलती** हो गई, क्योंकि हम कहते हैं, कि मैं अमुक-अमुक (देह का नाम-रूप) हूँ; यहाँ जीवात्मा फँस गया। जन्म से देह की हर अवस्था, हर रूप, हर परिस्थिति, हर सम्बन्ध, हर प्राप्ति यानि देह की हर विधा के साथ इसे अध्यास हो गया। अलग-अलग समय में एक ही नाम की देहें अलग थीं, लेकिन एक ही **'मैं'** (जीवात्मा) सब रूपों के साथ जुड़ गई। यह **गलती-पर-गलती** थी और दैवीय दृष्टि से अपराध था। यहाँ देहाध्यास हृष्ट-पुष्ट हो जाता है और जन्म-दर-जन्म परिपुष्ट होता रहता है। मैं पिछले जन्म में किए पापों का फल भुगत रहा हूँ अथवा अब मैं पुण्य कर्म कर रहा हूँ, ताकि अगले जन्म में सुख भोग सकूँ। इस प्रकार देहाध्यास की पुष्टि पर पुष्टि (परिपुष्टि) से **गलती-दर-गलती** होती रही और जीवात्मा को देह की धारणा हो गई। यह जघन्य एवं घोर अपराध था।

देह सहित समस्त दृश्यमान चराचर सृष्टि जिसे **'मैं'** (जीवात्मा) अपनी विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से देख, सुन, चख, सूँघ व स्पर्श करता हूँ और जो मेरे ख्याल, ख्वाब, कल्पना में काल की तीनों विधाओं (भूत, भविष्य, वर्तमान) सहित है, वह मेरा जगत है। मेरी देह सहित इस समस्त जगत का प्रकाट्य मेरी एक नाम-रूप की व्यष्टि देह की अवचेतना में होता है। छोटा सा स्विच ऑफ होने पर एक बल्ब समस्त कक्ष को अन्धकारमय कर सकता है और वही स्विच जब ऑन होता है, तो सारा कक्ष प्रकाशित हो जाता है। उस प्रकाश में वह बल्ब **भी** दिखाई देता है और अन्धकार में वह

बल्ब **भी** दिखाई नहीं देता। बल्ब सहित समस्त कक्ष, बल्ब द्वारा **ही** प्रकाशित होता है। जब देह का प्रकाट्य होता है, उसके साथ ही जगत का भी प्राकट्य होता है। उस जगत में जैसे अन्य देहें हैं, वैसे मेरी (जीवात्मा की) देह **भी** होती है। विशिष्टता यह है, कि देह सहित जगत, मात्र मेरी देह के प्रकाशित होने से प्रकट होता है।

किसी कमरे में यदि कोई वस्तु खोजनी है, तो हम स्विच ऑन करके चीज़ खोजने लगते हैं। उस बल्ब पर हमारी दृष्टि नहीं जाती, जिसके प्रकाशित होने से समस्त कक्ष की वस्तुएँ प्रकाशित हुई हैं। जबकि समस्त प्रकाश का स्रोत बल्ब ही है। बल्ब तो पहले भी था, लेकिन प्रकाशित नहीं था। हमने स्विच ऑन किया। यदि वह ऑन हुआ, तो उसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया यह थी, कि पहले बल्ब प्रकाशित हुआ और उसके प्रकाश से कक्ष प्रकाशित हुआ। दोनों कार्य साथ-साथ हुए। इसी प्रकार हम जैसे ही देहाध्यास में आते हैं, तो तुरन्त हमारी देह सहित जगत प्रकट हो जाता है। हाँलाकि पहले बल्ब की तरह देह प्रकाशित हुई और फिर वह जगत प्रकाशित हुआ, जिसमें वह देह **भी** थी तथा समस्त प्रकाश का आधार वह देह **ही** थी।

देह सहित जगत को प्रकाशित करने वाली देह नहीं है, शिव के पंच-प्राणों की अदृश्य ज्योति है। जिस प्रकार कि बल्ब सहित कमरे को प्रकाशित करने वाली शक्ति विद्युत-शक्ति है। विद्युत-शक्ति न बल्ब है, न कमरा है। इसी प्रकार पंच-प्राणों की ज्योति न देह है, न जगत है। देह का प्रकाशन होगा और देह का प्रकाट्य होगा तथा तुरन्त देह सहित जगत प्रकट हो जाएगा। प्रकाशित हुए बिना कक्ष की समस्त वस्तुओं की तरह बल्ब भी दिखाई नहीं देता। कक्ष में कूड़ा पड़ा है अथवा सज्जा हो रही है, इसका कारण बल्ब नहीं है। वह बल्ब स्वयं भी विद्युत-शक्ति के प्रकाश से ही प्रकाशित है। बिजली न हो या बल्ब फ्यूज़ हो जाए, तो स्विच कितना भी ऑन करो, न बल्ब प्रकाशित होगा, न कमरा।

जीवात्मा स्वयं में ज्योति-पुंज परमात्मा का अंश है, लेकिन उसकी देह सहित जगत के प्रकाशित होते ही उसे देहाध्यास (मैं देह हूँ) हो गया। देह

सहित जगत, देह के नाम-रूप की अवचेतना में था। चेतना में न देह थी, न जगत था। एक ज्योति की शक्ति से जीवात्मा की देह सहित जगत प्रकट हुआ। उस ज्योति को न देहाध्यास है, न देहाधिपत्य है और न ही उसके लिए देह सहित जगत का कोई महात्म्य है। समस्त प्राकट्य का आधार वह ज्योति है, जो मेरे (जीवात्मा के) पिता परमात्मा की है। यह ज्योति पंच-प्राण हैं, जिनका आधार **वैराग** (भस्मी) है। पंच-प्राण (प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान) और वैराग (भस्मी) दोनों अदृश्य हैं। परमात्मा और जीवात्मा का **अद्वैत में द्वैत** सा है। किसी दृश्यमान अथवा अदृश्य ज्योति का प्रकट अथवा अप्रकट (अदृश्य) आधार होना परमावश्यक है। ज्योति का प्राकट्य और समाहन होता रहता है। समाहन में वह शक्ति अदृश्य रूप से रहती है। भस्मी या अतिशक्ति वैराग पंच-प्राणों की ज्योति का आधार है। समस्त जगत का प्रकाश और प्राण वह ज्योति है, जिसका आधार भस्मी (वैराग) है। यही देवाधिदेव महादेव (शिव) का स्वरूप है।

शिव का स्वरूप वैराग है। पंच-प्राणों की महाशक्ति का शिव के वैराग से अभ्युदय हुआ। पंच-प्राणों की ज्योति (महाशक्ति) की मूल वैराग (अतिशक्ति) से क्रीड़ा हुई, इसका प्राकट्य समय-समय पर पंच-महाभूतों की चराचर सृष्टि में निर्माण, पालन व संहार के विभिन्न रूपों में होता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश—शिव की ही तीन विधाएँ हैं। अन्ततः पंच-महाभूतों की समस्त सृष्टि पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है। वैराग में समाहित पंच-प्राणों की ज्योति का प्राकट्य व लय ही पंच-महाभूतों की सृष्टि का प्राकट्य व लय है।

'मैं' (जीवात्मा) विवेक बुद्धि से विचार करके जान जाता हूँ, कि जैसे ही मैं देह के रूप में प्रकट होता हूँ, साथ ही साथ उस समय की देह सहित मेरा जगत भी प्रकट हो जाता है। मैं देह के नाम-रूप से अपनी पुष्टि, प्रमाणिकता एवं सत्यापन करता हूँ, तो मैं भूल जाता हूँ, कि मेरी देह के अनुसार ही उस जगत का प्राकट्य हुआ है, जिसमें मेरी एक नाम-रूप की देह भी है। देह सहित जगत के प्राकट्य का आधार वह पंच-प्राणों की ज्योति है, जिससे मेरी देह प्रकाशित हुई और साथ ही साथ जगत भी प्रकाशित हो

गया। इनका आधार **भस्मी** या **वैराग** है।

मैं पुनः वर्णन करूँगा, कृपया एकाग्र करें। बल्ब का स्विच ऑन करके हम बल्ब को नहीं देखते, बल्कि कक्ष की समस्त वस्तुओं को देखने लगते हैं। इसी प्रकार तथाकथित जाग्रत होने अर्थात् देह के नाम-रूप की अवचेतना में आने पर हम स्वयं को नहीं देखते, संसार को देखने लगते हैं। जीवात्मा को यहीं मायिक भ्रम हो गया। जीवात्मा, ज्योति पुंज परमात्मा का अंश है, उसे देह रूपी बल्ब पर अध्यास व अधिपत्य हो गया, कि मैं देह हूँ और देह मेरी है। जहाँ से देह प्रकाशित हुई, वहीं से देह सहित जगत प्रकाशित हुआ। दोनों एक ही प्रकाश से प्रकाशित हुए।

देह सहित जगत ब्रह्माण्ड है और पंच-प्राणों की ज्योति ब्रह्माण्डातीत है। संसार का आधार देह है। देह सहित संसार का आधार ज्योति है और ज्योति का आधार शिव के वैराग की प्रतिरूप अदृश्य भस्मी है। शिव जब क्रीड़ा करना चाहता है, तो अपनी संघनित विरक्ति शक्ति के आधार से पंच-प्राणों की महाशक्ति प्रकट करता है। पंच-प्राणों की महाशक्ति और अतिशक्ति विरक्ति में क्रीड़ा होती है। इस क्रीड़ा के आनन्द का प्रकाट्य पंच-महाभूतों की सृष्टि के रूप में दृश्यमान होता है। इन पंच-महाभूतों में संगम और समस्त क्रियान्वयन शिव की अतिशक्ति विरक्ति की प्रतिनिधि अदृश्य भस्मी की शक्ति द्वारा होता है, जो इनके कण-कण में समाहित है। पंच-महाभूतों में जितनी चमक-दमक व अमूल्यता है, वह भस्मी के संघनन की है। ये पंच-महाभूत स्वयं में सहज जड़ हैं, लेकिन अविरल, निरन्तर, चिरन्तन, अबाध एवं अकाट्य रूप से गतिमान हैं और इनकी गतियाँ अति संक्षिप्त व सूक्ष्म (Precise), अति सारगर्भित (Thematic), अति विशिष्ट (Specific), अतिगुणात्मक (Qualitative) और उद्देश्यपूर्ण (Purposeful) हैं।

पंच-प्राणों की ज्योति का स्रोत वैराग है। शिव वैराग का संघनित रूप है। उसका मानस-पुत्र जीवात्मा भी उसी के जैसा है। जब देह सहित पंच-महाभूतों की सृष्टि प्रकट हुई और जैसे ही पहले देह प्रकाशित हुई, तो जीवात्मा ने उसे अपना स्वरूप मान लिया। तब देह रूपी बल्ब की समस्त

कार्य-प्रणाली पर अपना अधिपत्य कर लिया, कि देह मेरी है। उसने उस जगत को स्वयं से भिन्न मान लिया, जो उसकी देह सहित साथ-साथ प्रकाशित हुआ था। कमरे में प्रकाश के प्रकाट्य का स्रोत बल्ब था, जिसमें प्रकाश आते ही बल्ब सहित कमरे की समस्त वस्तुएँ प्रकाशित हो गईं। इसी प्रकार जीवात्मा, जो प्रकाश-पुंज का अंश था, उसके **'मैं'** रूप में प्रकाट्य का स्रोत वह देह थी, जिससे देह सहित जगत प्रकट हो गया। जीवात्मा ने भ्रमवश उस देह को अपना स्वरूप समझ लिया। मूलतः वह प्रकाश पुंज है। दूसरी भूल यह हुई, कि उसने जगत को स्वयं से भिन्न मान लिया, जबकि जगत जैसा भी था, उसकी देह के साथ ही प्रकट हुआ था। उसने शक्ति का महात्म्य छोड़कर जो प्रकाशित हुआ, वह भी मात्र नाम-रूप की एक देह रूपी बल्ब को अपना स्वरूप समझ लिया। बल्ब फ्यूज़ हो गया, तो उसने स्वयं को मृत मान लिया, बल्ब ऑन हुआ तो स्वयं को जीवित मान लिया।

विद्युत-शक्ति एक विशिष्ट प्रक्रिया द्वारा बल्ब में प्रकट हुई, तो वह ज्योति स्वयं को बल्ब मान बैठी। वही ज्योति एयर कंडीशनर में आई, तो उसने कहा मैं ए. सी. हूँ। इस प्रकार समाहित विद्युत ऊर्जा विभिन्न उपकरणों के विविध रूपों में प्रकट होती है। चराचर जगत में उपकरणों के अनुसार उनके भिन्न-भिन्न कार्य थे। सभी के गुण-धर्मों के प्रकटीकरण का कारण वह विद्युत ऊर्जा थी। ज्योति या प्रकाश पृथक् है और उसका प्रकाट्य पृथक् है। विद्युत शक्ति बिजली के तार में समाहित है, जो स्विच ऑन होने पर बल्ब में प्रकट होती है और बल्ब के साथ-साथ समस्त कक्ष को प्रकाशित करती है। इसी प्रकार पंच-प्राणों की महाशक्ति शिव के वैराग में समाहित है, जो जीवात्मा के लिए एक मानव-देह में प्रकट होकर उस देह सहित पंच-महाभूतों की विभिन्न नाम-रूपात्मक सृष्टि को प्रकाशमान करती है।

जीवात्मा का स्वरूप पंच-प्राणों की ज्योति और वैराग का प्रतीक अदृश्य भस्मी था। जिस नाम-रूप की देह के रूप में वह प्रकट हुई, उसे उसने अपना स्वरूप मान लिया। वह रूप जगत के विभिन्न नाम-रूपों में से

एक था। अतः उसमें और जगत में द्वैत का भाव आ गया। जितने विभिन्न पशु-पक्षी और मानव देहें हैं, वे विभिन्न उपकरण हैं, पंच-प्राणों की ज्योति एक ही है। जब प्राण शक्ति वैराग में समाहित हो गई, तो समस्त जगत लय हो गया, इसे महाप्रलय कहते हैं।

समस्त नामरूपात्मक जगत ईश्वर की माया है। माया का होना और माया का प्रकाशित होना, दोनों पृथक् बातें हैं। जब जीवात्मा देहाध्यासवश जीव बनकर स्वयं के प्रकाश को भूल जाता है, तो माया के वशीभूत हुआ भटकता है। जैसा जीवात्मा एक मानव-देह में प्रकट हुआ, उस समय वैसा ही जगत भी था। जैसेकि बल्ब जितने वाट का होगा, कक्ष की वस्तुएँ उसी के समान अनुपात में प्रकाशित होंगी। जीवात्मा को यह सत्य आत्मसात् होना परमावश्यक है, कि मेरी देह सहित जगत मेरे प्रकाश से प्रकाशित हुआ है, मैं देह नहीं हूँ। वैराग से प्रस्फुटित पंच-प्राणों की ज्योति का मैं अंश हूँ। मैं जीव-ज्योति हूँ, चुटकी भर भस्मी के आधार पर टिमटिमाती हुई पंच-प्राणों की लौ मेरा स्वरूप है। पंच-महाभूतों की मानव-देह उपकरण है, जो मेरे प्रकाश से प्रकाशित हुई है और साथ ही साथ जगत भी प्रकाशित हुआ है। देह सहित जगत को देखने के बाद प्रभु-कृपा से स्वयं को देखने के लिए मैं नाम-रूप की देह की अवचेतना का स्विच ऑफ करके आँखें बंद कर लेता हूँ, तो समाधिस्थ होकर अपना दैदीप्यमान स्वरूप देख सकता हूँ, जिसका स्रोत वह शक्तिपुंज मेरा पिता परमात्मा है। **जब प्राणान्त हो जाएगा, तो मेरी मानव-देह नहीं रहेगी लेकिन वह प्रकाश रहेगा, केवल उस देह में प्रकट नहीं होगा।** क्योंकि वह प्रकाश अविरल, अनन्त व चिरन्तन है। मानव-देह धारण करके इस सत्य को अनुभव करना परमावश्यक है, क्योंकि अन्य प्राणी-जगत जलचर, थलचर एवं नभचर, पेड़-पौधे आदि इस सत्य को नहीं जान सकते।

सद्गुरु-कृपा से सद्शिष्य यह जान जाता है, कि मैं जगत सहित देह के रूप में प्रकट होता हूँ और इस देह सहित जगत के प्राकट्य का Main Switch मेरी जिस देह में है, वह अदृश्य है। इस प्रकार मेरी दो देहें हैं—एक

साकार जगत सहित देह, दूसरी निराकार देह, जो देह सहित जगत से परे की देह है। जहाँ से नाम-रूप की अवचेतना का Switch on-off होता है, जहाँ से करन्ट आता है। तीसरी देह, कारण-देह है, जो स्वयं **परमात्मा** है—वह Power House है—**विद्युत, विद्युतिकरण और उपकरण।** जहाँ से विद्युत प्रवाह हो रहा है, वह मेरी **जीवात्मा** है, जो परमात्मा का ही अंश है। मेरी देह उपकरण है, जो जगत सहित प्रकट और लीन होती है। **देहें अनेक एवं पृथक्-पृथक् इसलिए हैं, क्योंकि मेरी एक देह है।**

विद्युत—पंच-प्राणों की महाशक्ति है। **विद्युतिकरण**—जीवात्मा है। पंच-प्राणों की महाशक्ति विभिन्न **उपकरणों** (देह सहित जगत) में सामर्थ्य, आवश्यकता और उपलब्धि के अनुसार प्रकट होती है। परमात्मा, जीवात्मा और सृष्टि की इससे सरल व्याख्या नहीं हो सकती। जगत में हर वस्तु का अपना-अपना महत्त्व है। बल्ब प्रकाश देता है, पंखा हवा देता है, हीटर गर्मी देता है, ए. सी. ठण्डक देता है। इन सबमें विद्युत शक्ति एक ही है। सद्गुरु इस बात को जनवाता है, मनवाता है और अनुभूति करवाता है। अनुभूति मात्र सद्गुरु-कृपा से ही होती है।

जगत में सारे उपकरण क्षण-क्षण परिवर्तनशील, क्षण-भंगुर एवं मायिक हैं। मानव-देह ही वह उपकरण है, जिसमें प्रभु ने समस्त प्राणी-जगत से पृथक् विशिष्टतम् बुद्धि दी है, जो ईश्वरीय चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। इस उपकरण को प्रकाशित करने वाला प्रकाश **जीवात्मा** है और उसके इस प्रकाश का स्रोत **परमात्मा** है। अज्ञानवश जीवात्मा ने जगत रूपी कक्ष में प्रकाशित अपनी मानव-देह रूपी बल्ब को अपना स्वरूप मान लिया और अपने प्रकाश को भूल गया। जगत रूपी कमरे में कोई वस्तु नई आई, तो बल्ब ने मान लिया, कि मैं लेकर आया हूँ। मैं इतनी देर से जल रहा हूँ, तभी कमरे में नया मेज आया है, कमरे में तिजोरी मेरी वजह से आई है, आदि-आदि। जीवात्मा, जगत की मानव-देह रूपी उपकरण का रूप ले लेता है। उन पर अधिपत्य करना चाहता है। उसकी देह सहित जगत में जो कृत्य स्वतः हो रहे हैं, उनका वह कारण व कर्ता बन जाता है। उसकी देह मात्र

एक उपकरण है, जब तक वह प्रकाशित नहीं होगा, उसका देह सहित जगत भी प्रकाशित नहीं होगा। जब उसकी देह रूपी उपकरण फ्यूज़ (मृत्यु) हो जाएगा, तो उसके लिए सब कुछ लय हो जाएगा। लेकिन वैराग और पंच-प्राणों की शक्ति अविरल व शाश्वत् है।

देह सहित जगत का **'सद्'** ग्रहण करने से जीवात्मा अपना स्वरूप जान लेगा, कि मेरी देह, कक्ष में प्रकाशित बल्ब की तरह है। मैं तो वह ऊर्जा हूँ, जिसके प्रकाश से देह सहित जगत प्रकाशित होता है। यह प्रकाशित हुआ है, खराब होने पर इसका लोप भी हो सकता है, लेकिन मैं हूँ और **'मैं'** (जीवात्मा) अपने पिता परमात्मा की वजह से हूँ। मैं देह सहित जगत के प्रकाशित होने से पहले भी था, इसके प्रकाशित होने के दौरान भी हूँ और इसके बुझने के बाद भी रहूँगा। मैं निराकार हूँ और उस महाज्योति (पंच-प्राण-पुंज) का अंश हूँ। तू (परमात्मा) है, तो **'मैं'** (जीवात्मा) हूँ।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(17 जुलाई, 2007)

अर्थार्थी

मानव-जीवन एवं मानव-देह का मिलना अति दुर्लभ है। **वह मानव जो होश में आकर यह विचार करता है, कि मुझे मानव-देह क्यों मिली है, वही मानव-जीवन जीता है।** जिज्ञासु वस्तुतः वह **अर्थार्थी** है, जो मानव-जीवन के अर्थ का अर्थ अपने जीवन-काल में किसी भी तरह से जानना चाहता है और उसके लिए सब कुछ दाव पर लगाने को तत्पर हो जाता है।

मानव-देहधारी होने के नाते हमारे जीवन का **'अर्थ'** है। उसके अर्थ का अर्थ है, कि यह निश्चित अवधि से बँधा है। इसे हमने **'अर्थार्थ'** (अर्थ का अर्थ) कहा था। जैसेकि विद्या का अर्थ जानने वाला **विद्यार्थी** होता है, उसी प्रकार जीवन के अर्थ का अर्थ यानि अर्थार्थ को जानने के इच्छुक जिज्ञासु को **'अर्थार्थी'** कहा जा सकता है। अर्थार्थी का सन्धि-विच्छेद करें, तो बना अर्थ+अर्थी=**अर्थार्थी**। हम **अर्थी का अर्थ** जान लें, तो घर बैठे **अर्थार्थी** हो जाएँगे।

जिज्ञासु अर्थार्थी होता है। वह विद्यार्थी नहीं होता। जीवन का अर्थ जानने की जिज्ञासा हो और उसे हम आत्मसात् करें। इसके लिए किसी सन्त महापुरुष की खोज करें, वह कृपा करके हमें अर्थार्थी बनाए। कब जाकर ईश्वर-कृपा से कोई सद् पुरुष मिले, उसकी कृपा प्राप्त हो ! यह बहुत लम्बी प्रक्रिया है और मात्र कृपा-साध्य है। मैं इसका बहुत छोटा सा रास्ता ले रहा हूँ। जहाँ पहुँच कर हमने अर्थ जानना है तथा किसी प्रकार से अपनी जिज्ञासा को शान्त करना है। उस स्थिति में पहुँचने के लिए सम्भव है, कई जन्म लग जाएँ। फिर भी हम वहाँ पहुँचे या नहीं, कहा नहीं जा सकता। हम

उस स्थिति में पहुँच कर कार्य प्रारम्भ करें, तो रास्ता छोटा व सुगम हो जाएगा। उदाहरणतः, मुझे लन्दन पहुँच कुछ करना है, तो लन्दन पहुँचना ही स्वयं में दुर्गम एवं अति क्लिष्ट प्रक्रिया है। लन्दन पहुँचने के लिए पहले मुझे पारिवारिक स्थितियों को देखना होगा। वहाँ का वीज़ा चाहिए, पासपोर्ट चाहिए, धनराशि और वहाँ ठहरने की व्यवस्था व और बहुत कुछ चाहिए। यदि कोई मुझे मेरे बिना किसी प्रयास के लन्दन पहुँचा दे, तो मेरा कार्य सुगम हो जाएगा। मैं सद्‌गुरु-कृपा से आध्यात्मिक यात्रा का वह रूट बता रहा हूँ।

सद्‌गुरु कहता है, कि तू अर्थार्थी है, क्योंकि जीवन के अर्थ का अर्थ जानने का इच्छुक है। पहले तूने सन्धि की, कि जीवन के अर्थ का अर्थ=**अर्थार्थ** और उसे जानने का इच्छुक **'अर्थार्थी'** बना। अब तू **'अर्थार्थी'** शब्द का सन्धि-विच्छेद कर, अर्थ+अर्थी=अर्थार्थी। जब तुझे अर्थी पर लिटाया जाएगा, तू होश में नहीं होगा। अब होश में अपनी **अर्थी का अर्थ** जान लें, तो **अर्थार्थी** हो जाएगा। मानव-जीवन के अर्थ का अर्थ वहीं से प्रारम्भ होता है। अति कृपालु सद्‌गुरु उस मील के पत्थर पर पहुँचा रहा है, जहाँ से मानव-जीवन का अर्थ प्रारम्भ होता है और अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की ओर ऊर्ध्वगमन होता है।

इष्ट-कृपा से आत्मानुभूति के आधार पर मैंने सम्पूर्ण मानव-जीवन को पाँच खण्डों में बाँटा है, इनका सविस्तार वर्णन **'सो हम्'** शीर्षक प्रवचन में किया गया है। सद्‌गुरु व्यष्टि देह के ही पाँच चरणों पर चिन्तन, मनन एवं नित्याध्यासन करवाता है। सद्‌शिष्य विचार करता है, कि देह के निर्माण और देह के विलय में किसी की बुद्धि कोई कार्य नहीं करती। होश में आने तक देह के पालन-पोषण और होश गुम हो जाने पर देह के चिता तक पहुँचने तक मेरी अपनी बुद्धि की कोई आवश्यकता नहीं होती। होश सम्भालने से होश गुम होने तक बीच के आयाम में मेरा अपना पूरा हस्तक्षेप रहता ही है। पहले चरण में पंच-महाभूतों का संगम हुआ और देह प्रकट (जन्म) हुई। पाँचवे चरण में पंच-महाभूतों से संगमित देह का पंच-महाभूतों में

विलय (मृत्यु) हुआ और भस्मी प्रकट हुई। दूसरे चरण में मेरी होश आने तक देह के लिए पालन-पोषण सम्बन्धी कार्य हुए और चौथे चरण में होश गुम होने से चिता या कब्र तक जाने में देह के लिए विभिन्न कार्य होंगे। मृत्योपरान्त मेरी देह के क्रियाकर्म का कार्यक्रम बनाया जाता है, जिसमें मेरी अपनी कोई दखलन्दाज़ी इसी प्रकार नहीं होगी, जिस प्रकार दूसरे चरण में मेरे जन्म के बाद होश में आने तक मेरी देह के लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा, रहन-सहन आदि में नहीं थी।

मानव-देहधारियों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण तीसरा चरण है, जिसमें परिपक्व होश में वह स्वयं निर्णय ले सकता है, परामर्श दे सकता है और कार्य कर सकता है। इसमें कोई भी विवेकशील, प्रज्ञावान व्यक्ति विचार कर सकता है, कि सम्पूर्ण जीवन के पहले दो और अन्तिम दो चरणों में मेरी होश की कोई भूमिका नहीं होती, लेकिन देह के लिए समस्त कार्य हुए और बाद में भी होंगे। होश में सोचें, कि देह के लिए सब कुछ हुआ और होगा। इसका अर्थ है, कि यह मानव-देह एक नाम-रूप की व्यष्टि-देह नहीं है।

होश सम्भालने पर जब हम अपने नाम-रूप की अवचेतना में आते हैं, तो भ्रमवश यह समझते हैं, कि मैं अमुक-अमुक (एक नाम-रूप) हूँ। जबकि सद् यह है, कि जैसे ही मैं एक देह के नाम-रूप की अवचेतना में आता हूँ, तो उस अवचेतना में मेरी देह सहित सम्पूर्ण जगत प्रकट होता है। **यह मेरी व्यष्टि की समष्टि है।** This is the totality of an individual. My total totality must embrace my individuality, because my individuality is the base of my total totality. यदि मैं अपनी देह के नाम-रूप की अवचेतना में नहीं हूँ, तो कोई जगत भी नहीं होगा। महादुर्भाग्यवश हम इस परम सद् को जाने-अनजाने में उपेक्षित किए रहते हैं।

सबसे महत्त्वपूर्ण सद् यह है, कि एक समय की विशिष्ट मानसिक स्थिति में मेरी देह सहित जगत में उस समय का मौसम, विशिष्ट लोगों की प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में उपस्थिति, पारिवारिक विधाएँ, विशिष्ट समय व स्थान, उस समय की देश-विदेश की विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक,

आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियाँ, पशु-पक्षी, उस समय प्रकट या अप्रकट ख़्याल-ख्वाब, कल्पनाएँ, मान्यताएँ, धारणाएँ, योजनाएँ आदि अपने भूत, भविष्य और वर्तमान सहित सब कुछ जैसा होता है, मात्र मेरे लिए होता है। एक व्यक्ति के रूप में जो मानव-देह मुझे प्रभु ने दी है, वैसी देह न आज तक किसी की थी, न है और न होगी।

स्वयं को एक व्यष्टि देह समझना हमारी भूल है। जब कोई भूल बार-बार होती है, तो वह आदत बन जाती है। सद्गुरु भी आदतों का रूपान्तरण करता है, वह उन्हें बदल नहीं सकता। पहले वह उस आदत की जड़ों की गहराई का आकलन करता है, फिर विचार करता है, कि क्या उसी जड़ पर अन्य पौधा रोपा जा सकता है। मानव-देह व मानव-जीवन एक पहेली है, जिसका उत्तर सद्गुरु के पास है :—

(पहेली) आदि ज़ीरो, अन्त ज़ीरो, मध्य में मदान्ध ज़ीरो,
कैसे हो ज्वलन्त ज़ीरो?
(उत्तर) ''मई सच्चिदानंद ज़ीरो, सद्गुरु सद्संग ज़ीरो
भई सच्चिदानंद ज़ीरो, ऐसे हो ज्वलन्त ज़ीरो।''

मानव भूखा-नंगा संसार में आता है (आदि ज़ीरो) और चिता पर लिटाने पर डोम कफन भी उतार लेता है (अन्त ज़ीरो)। मध्य में (तीसरा चरण) होश में आता है, तो वह मद या अहंकार में अन्धा हो जाता है, इसलिए ज़ीरो ही रह जाता है। सद्गुरु के सत्संग व सम्बन्ध के बिना इस ज़ीरो का ज्वलन्त एवं दैदीप्यमान होना असम्भव है। मानव-देह पाकर तथाकथित होश सम्भालते ही हम अपनी देह और उस पर आधारित जगत की विविध विधाओं में रीझ जाते हैं और उन्हीं में लिप्त हो जाते हैं। वे विधाएँ हमारी आदतें बनकर जीवन का रुटीन बन जाती हैं। हम भूल जाते हैं, कि हमारी होश गुम भी अवश्य होगी। जो धन-सम्पदा, परिवार, सम्बन्ध, पद-प्रतिष्ठा, व्यापार-कारोबार, मकान-दुकान, सन्तान, समाज आदि मिला है, वह कभी भी हमें छोड़ सकता है। वह नहीं छोड़ेगा, तो एक दिन हम उसे छोड़ कर इस दुनिया से चले जाएँगे।

हम देह और देह पर आधारित जगत की विविध विधाओं में लिप्त होकर उन्हें अपने जीवन की दिनचर्या बना लेते हैं। हम किसी विशिष्ट विचारधारा अथवा कार्यक्रम को अपनी देह **का** रुटीन बना लेते हैं। देह पर जैसे हम अपनी इच्छानुसार सम्बन्ध थोप लेते हैं, उसी प्रकार अपना स्वनिर्मित एक रुटीन भी थोप लेते हैं। लेकिन देह हमारे थोपे हुए सम्बन्धों और रुटीन से नहीं बँधती। देह का अपना ईश्वरीय रुटीन है। यहीं पर हमारे और देह के बीच में क्लैश हो जाता है। आयु, परिस्थिति, उपलब्धि और सामर्थ्य के अनुसार देह परिवर्तित होती रहती है, लेकिन हम अपना बना- बनाया रुटीन उस पर थोपना चाहते हैं। धनाभाव, बीमारी, बुढ़ापे आदि में देह की स्थितियाँ बदलती हैं। यात्रा के दौरान अथवा स्थानान्तरण होने पर अथवा अन्य किसी कारण से हम बँधे-बँधाए रुटीन से नहीं चल सकते। इसलिए अन्ततः हमें हारना पड़ता है। देह हर पल, हर निमिष बदलती है, इसलिए असद् है और हमारा अपना रुटीन भी स्वयं में असद् है। जब तक दोनों असद्ों की चलती है, तब तक साथ रहते हैं। बाद में हमारी अपनी देह ही हमसे घृणा करने लगती है। असद् और असद् दोनों बहुत दिन तक साथ नहीं रह सकते। इस प्रकार असद् का असद् से क्लैश हो जाता है। सद् का किसी से कोई क्लैश नहीं होता।

किसी से हमारी निकटता का आधार कुछ Common बिन्दु होते हैं। जब वे समान बिन्दु नहीं रहते, तो सान्निध्यता में दरार पड़ जाती है। भौतिक जगत की जितनी विधाएँ हैं, वे अस्थाई हैं। उनमें कभी घनिष्ठता होती है, कभी अनिष्टता की सम्भावनाएँ होने लगती हैं। आध्यात्मिक जगत इसके ठीक विपरीत है। यदि हम ईमानदारी से **'सद्'** का अनुसरण एवं अनुभूति करना चाहते हैं, तो वहाँ आयु, सम्बन्ध, पारिवारिक स्थितियाँ, आर्थिक व सामाजिक स्तर के उतार-चढ़ाव आदि का कोई प्रभाव नहीं होता। यह नहीं कि पहले मैं धनवान था, तो बहुत ध्यान कर लेता था, अब धन क्षीण हो गया तो मैं ध्यान नहीं कर सकता। ध्यान-धारणा हमारा

मानसिक खेल है। अस्थाई दैहिक स्थितियाँ यहाँ अधिक देर तक हावी नहीं हो सकतीं।

हम संसारी लोगों की घनिष्ठता असद् में है। जब हम आत्म-चिन्तन करते हैं, तो **'असद्'** का चिन्तन भी **'सद्'** में करना होगा। असद् की असद् में चिन्ता होती है, चिन्तन नहीं हो सकता। दैहिक, भौतिक जगत की सभी विधाएँ परिवर्तनशील, नश्वर एवं आनी-जानी हैं। इस सद् चिन्तन द्वारा हमारे असद् जगत की हर विधा सद् के साथ जुड़ कर **सदासद्** (सद्+असद्) हो जाएगी और हम जीवन का आनन्द लेंगे। सद्गुरु कहता है ईश्वर ने तुझे तीन पत्ते स्पष्ट दिखा दिए। बेटा ! तुझे मैं जो मानव-देह दे रहा हूँ, वैसी देह व्यष्टि रूप में और समष्टि रूप में किसी की नहीं है। दूसरे, यह देह अवधि से बँधी है और उपहार नहीं है। मैं कभी भी इसे छीन सकता हूँ। तीसरा, पत्ता यह दिखाया, कि होश सम्भालने पर जो कुछ तू कर-करा, पा या खो रहा है और तेरे लिए जो कुछ हो-हवा रहा है, जब तेरी भस्मी बन जाएगी, वहाँ वह कुछ नहीं रहेगा। तेरी देह की भस्मी अवश्य बनेगी। यद्यपि तेरी देह ब्रह्माण्ड सहित है, लेकिन तू ब्रह्माण्ड को अपने से पृथक् मानता है, तो भी तेरी अपनी देह स्वयं में अनुपम एवं अतुलनीय है। ईश्वर ने स्पष्ट दिखाया है, कि व्यष्टि रूप में भी तुझ जैसा मैंने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सृष्टि प्रारम्भ होने से आज तक कोई नहीं बनाया था, इस समय भी तेरे जैसा कोई नहीं है और आगे आने वाले युगों-युगान्तरों में भी नहीं होगा। मैंने (ईश्वर) यह अति चमत्कारिक मानव-देह तुझे दी है, इसका विशिष्टतम अर्थ है। जो कुछ तू कर-करा रहा है, वह मैं करवा रहा हूँ। तू कर नहीं रहा, वह हो रहा है और अन्ततः तेरी देह की भस्मी बनने के साथ सब कुछ मलियामेट हो जाएगा। इसका भी विशिष्ट अर्थ है।

जीवन में समस्त कार्यक्रमों का एक दैवीय सुनिश्चित कार्यक्रम होता है। जिस प्रकार बिना कार्यक्रम के देह का क्रियाकर्म भी नहीं होता, उसी प्रकार बिना कार्यक्रम के जीवन-काल में कोई कार्यक्रम भी नहीं होता। जिस प्रकार मेरी देह के क्रियाकर्म का कार्यक्रम मेरे हाथ में नहीं होता, उसी प्रकार

जीवन-काल के समस्त कार्यक्रम भी किसी दैवीय कार्यक्रम के तहत बनते हैं। मेरे बनाए गए कार्यक्रमों में तथाकथित विघ्न अक्सर इसी एकसूत्रता के अभाव के सूचक होते हैं। वे वस्तुतः विघ्न न होकर मेरी नासमझी, अहं और अज्ञान के उत्पाद होते हैं। होश सम्भालने से होश गुम होने तक मानव-जीवन के मध्य के चरण में मैं मदान्ध हो जाता हूँ। मैं अहंकार और ममकार से पूरित स्वयं कुछ न कुछ करना, पाना, खोना और होना चाहता हूँ। यहीं से मेरी देह मेरे विरूद्ध हो जाती है और मेरे दुःखों की श्रंखला प्रारम्भ हो जाती है।

जब मेरी होश में आने की प्रतीक्षा होती है, तो मेरी देह के लिए विभिन्न कार्य होते हैं। होश गुम हो जाने के बाद (यदि मृत्यु नहीं हुई है) सबकी मुझे होश में लाने की इच्छा होती है और मेरी देह के लिए विभिन्न कार्य होते हैं। दूसरे चरण में मेरी होश परिपक्व करने के लिए मेरे तथाकथित अपनों ने मेरी देह के लिए बहुत कुछ किया। सभी मेरी होश आने की **प्रतीक्षा** करते हैं, ताकि उनकी मुक्ति हो और मैं स्वयं फँसू। चौथे चरण में मुझे किसी प्रकार से होश में लाने का **प्रयत्न** होता है। यदि प्रयत्न में असफल रहे, तो मुझे चिता तक पहुँचा दिया जाता है। ये दोनों कार्य होश वालों द्वारा किए गए। इसके पीछे उनसबका भाव यही था, कि ये होश में आए और हमारा पिण्ड छूटे। कोई यह नहीं कहता, कि मेरा बच्चा हमेशा बच्चा बना रहे। सारे होश वाले मेरी होश के पीछे पड़े रहते हैं। महादुर्भाग्यवश होश आने पर मैं मदहोश हो जाता हूँ और होश गुम होने तक मदहोश ही रहता हूँ:—

''आदि ज़ीरो अन्त ज़ीरो मध्य में मदान्ध ज़ीरो,
कैसे हो ज्वलन्त ज़ीरो।''

मानव-देह व जीवन स्वयं में एक खुला शास्त्र है, इसे उपेक्षित करके अध्यात्म में प्रविष्टि असम्भव है। **जो गृह (आत्मस्वरूप) में स्थित हो, वह गृहस्थ है।** इस सद् को हमने नहीं समझा। होश में आकर हम सब उनके लिए करना प्रारम्भ कर देते हैं,जो होश में नहीं हैं। वे होश में आकर वही काम करते हैं, जो पहले उनके लिए होश वालों ने किया। हमें ज्ञान होना चाहिए,

कि आखिर मेरी होश का उपयोग किस दिशा में हो रहा है। जिनको मैं होश में लाना चाहता हूँ, तो मूलतः मैं अपना पिण्ड छुड़ाना चाहता हूँ। कारण और कर्ता बनने के लिए होश नहीं है, बल्कि यह समझने के लिए होश है, कि कर्ता और कारण मात्र परमात्मा है।

मैंने होश सम्भालने की भौतिक दृष्टि से परिभाषा दी थी। जब मैं स्वयं अपने लिए निर्णय ले सकूँ, दूसरों को परामर्श दे सकूँ और स्वयं कार्य कर सकूँ इसे होश सम्भालना कहा जाता है। स्वयं निर्णय लेने, परामर्श देने और स्वयं कार्य करते हुए मैं कर्ता बनना चाहता हूँ, जोकि होश का दुरुपयोग ही नहीं, बल्कि होश के लिए अपराध है। होश में **'मद'** आ जाएगा। **'मद'** का अर्थ **'विकार', मल और अहंकार** है। मानव होश आने पर होश का सदुपयोग करते हुए यह समझे, कि कर्ता और कारण कौन है? नौ महीने में माँ के गर्भ में देह बनी, उसका कर्ता और कारण कौन था? होश में आने तक देह का लालन-पालन किसने किया? लोगों को इसका कारण व कर्ता समझूँगा, तो मैं अपनी होश के उद्देश्य को ग्रहण नहीं कर पाऊँगा। होश सम्भालते ही मुझे कारोबार, नौकरी, पद-प्रतिष्ठा, सम्बन्धों आदि की चिन्ता पड़ जाती है।

मानव-देह धारण करके होश में आने पर मुझे चिन्तन करना है, कि मेरी होश का वास्तविक अर्थ क्या है? यह देह कभी भी मुझसे छीन ली जाएगी। इसलिए इसके अर्थ में अर्थ यानि अर्थार्थ है, कि होश में मैं यह जान जाऊँ, कि मैं कर्ता और कारण नहीं हूँ। जब यह बात पल्ले पड़ जाएगी, तो मुझे होश की होश आ जाएगी। हम होश में हैं, इसका प्रमाण यही है कि होश की होश आ जाए। यदि होश की होश नहीं आई, तो हम तथाकथित होश में हैं। होश की होश यह है, कि मेरे होश सम्भालने से पहले मेरे लिए निर्णय कोई और ले रहा था और अब भी कोई और ले रहा है। यह मैं तहेदिल, मन एवं रूह से जान जाऊँ और मान लूँ, कि सृष्टि में समस्त कार्य स्वतः हो रहे हैं, मैं कर्ता और कारण नहीं हूँ।

होश में आकर यदि मैं भी कर्ता और कारण बन गया, तो मदहोश

हो जाऊँगा। मोह, अहंकार, काम, क्रोध, लोभ आदि विकृतियों से ग्रसित हो जाऊँगा। अतः होश सम्भालने पर मैं यह जान लूँ और मान लूँ, कि मेरी देह का पंच-महाभूतों से निर्माण करने वाला और जन्म के बाद पालन करने वाला मैं नहीं हूँ। मेरी होश गुम हो जाने पर मेरी देह के लिए सब कुछ करने वाला तथा चिता तक पहुँचाने पर देह को पंच-महाभूतों में विलीन करने वाला ईश्वर ही है। मध्य में मेरी होश है, अब भी वही शक्ति मेरी देह के लिए सब कुछ कर रही है। मेरी होश का अवश्य ही कोई विशेष अर्थ है, इसके अर्थ में विशिष्टतम् अर्थ यानि अर्थार्थ है, कि मेरी होश कभी भी गुम हो सकती है। **सद्गुरु का दर्शन, स्पर्श, श्रवण और उसके निर्देशन में होने वाले समस्त कर्मों का लक्ष्य यह है, कि मुझे होश सम्भालने के दौरान यह होश आ जाए, कि होश कभी भी गुम हो सकती है।** मेरी होश के दौरान भी मेरे द्वारा और मेरे लिए होने वाले समस्त कृत्यों का कर्ता व कारण उसी प्रकार परमात्मा ही है, जैसे मेरी होश सम्भालने से पूर्व था और होश गुम हो जाने के बाद होगा। अब भी वही सब कुछ कर-करवा रहा है। मैं परिपक्व होश में अपनी अर्थी का अर्थ जान लूँ तो **अर्थार्थी** बन जाऊँगा और जीवन का अर्थ वहीं से शुरू होगा।

अर्थी का अर्थ जानने की इच्छा रखने वाला **'अर्थार्थी'** होश में मदहोश या मदान्ध नहीं होता। अर्थार्थी होश के दौरान चिन्तन करता है, कि मुझे अर्थी, मेरे बिना किसी प्रयत्न के मिलेगी। उस पर मुझे उठा कर लिटाया जाएगा। फिर चार व्यक्ति कन्धे पर उठा कर ले जाएँगे, गन्तव्य स्थान का निर्धारण होगा। मेरी वह अर्थी जब सजेगी तब मात्र मेरी ही चर्चा होगी। अर्थी बिना मेरे कुछ किए, मेरे लिए सुरक्षित है। अर्थी का अर्थ है वहाँ मुझसे सब कुछ छूट जाता है। उसमें मेरी एक ही स्थिति होती है, चाहे मैं बच्चा, युवा या किसी भी अवस्था में हूँ। मैं मृतक देह के रूप में स्थिर पड़ा होता हूँ। साधारण जीवित व्यक्ति किसी को कहे, कि मुझे उठा कर वहाँ ले चलो, तो कोई नहीं उठाएगा। लेकिन अर्थी पर पड़े हुए मुझे लोग श्रद्धा से उठाएँगे अथवा मेरे तथाकथित सम्बन्धियों को प्रसन्न करने के लिए झूठी श्रद्धा प्रकट

करेंगे। मेरे होश खोने के बाद जो होश में होते हैं, वे मेरे लिए अर्थी बनाते हैं और मुझे उठाकर चिता तक पहुँचाते हैं। उस क्रियाकर्म के कार्यक्रम के लिए उनमें परस्पर अनुरोध, प्रतिरोध, विरोध, गतिरोध, शोध, अवरोध होते हैं। लोग प्रेमवश या आडम्बर से रोते हैं। सबकी ज़ुबान पर मेरी ही चर्चा होती है। अक्सर लोग मरने के बाद अच्छाई ही करते हैं, क्योंकि उस समय सब विरक्त भाव में अच्छे बने होते हैं। वे बुराइयाँ भूल जाते हैं। मेरी अर्थी को देखकर सभी अस्थाई रूप से ज्ञानी, वैरागी हो जाते हैं।

मरके तो सब कुछ छूटेगा ही, यदि जीते जी होश में सब कुछ छोड़ दें, तो क्या होगा ! इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। अर्थी का गन्तव्य स्थान (लक्ष्य) एक ही होता है। हमारा जीवन में जब किसी भी प्रकार से या सब प्रकार से सद् की अनुभूति का लक्ष्य हो जाता है, तो जीते जी उपर्युक्त समस्त सुविधाएँ मिलनी शुरू हो जाती हैं। **अर्थार्थी** ब्रह्मज्ञानी और तत्त्वज्ञ होगा। जीते जी अर्थी साथ रहने से विभिन्न परिस्थितियों में न तो बांछे खिलेंगी और न मुँह लटकेगा। व्यक्ति सामान्य रहते हुए हर स्थिति का आनन्द लेगा। उसे सद्गुरु मिल जाएगा।

समस्त वक्तव्य का सारांश यह है, कि कर्ता और कारण बनने के लिए यदि मैं होश में आया हूँ अथवा लाया गया हूँ, तो मैं **मदहोश** हूँ। होश में आने पर यदि मुझे कर्ता और कारण का ज्ञान नहीं है, फिर भी मैं कुछ न कुछ करना, पाना, खोना और होना चाहता हूँ, तो मैं **बेहोश** हूँ। मदहोश बद्धज्ञानी है, वह स्वयं को कर्ता व कारण मानने से बाज़ नहीं आ सकता। सद्गुरु, मदहोश और बेहोश में से बेहोश को चुन लेता है। यदि मुझे होश की होश नहीं है और मैं कर्ता और कारण बनता हूँ, तो यह मदान्धता असद् में असद् है। जब यह ज्ञान हो जाए, कि सब कुछ हो रहा है, न मैं कर्ता हूँ न कारण, यही **'सद्'** होश है। यहाँ सद् चाल, सद् स्थिरता, सद्गुरु का सान्निध्य, सद् वाणी, सद् श्रवण, सद् स्पर्श और सब कुछ सद् ही होगा।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(29 एवं 30 जुलाई, 2007)

जीवन अर्थ

आध्यात्मिक और वैज्ञानिक दोनों दृष्टियों से मानव-देह अति अद्‌भुत एवं विशेष रूप से अति रहस्यमयी है। सम्पूर्ण महाब्रह्माण्डों में समष्टिगत एवं व्यष्टिगत दोनों दृष्टियों से मानव-देह जैसी ईश्वर की संरचना अन्य कोई नहीं है। इसका **'अर्थ'** हमारे पल्ले पड़ना अति आवश्यक है। मानव-देह का अर्थ जानना और मानना तथा नित्याध्यासन करते हुए इसका अनुभूतिगम्य होना ही मानव-जीवन का लक्ष्य है। अन्यथा देह सहित जगत यदि जीवन-काल में हमारे पल्ले नहीं पड़ा, तो अवश्य ही हमारे गले पड़ जाएगा। यह धमकी नहीं है। व्यासपीठ जाग्रत और सचेत करती है, डराती एवं भयभीत नहीं करती। मानव-जीवन के सभी रोग-दोष, वैर-वैमनस्य, राग-द्वेष, आधि-व्याधि-उपाधि, पीड़ा-व्यथा, भय-त्रास, मल-विक्षेप-आवरण, ईर्ष्या-शत्रुता आदि इसलिए हैं, क्योंकि हमारी देह सहित समस्त जगत हमारे पल्ले पड़ने की बजाय गले पड़ा हुआ है। यदि यह हमारे पल्ले पड़ जाता, तो हम अपनी उत्कृष्टतम् मानव-देह से जीवन में परमानन्द की अनुभूति कर पाते।

चिकित्सक होने के नाते इस देह के अति गहन अध्ययन के बाद मैं स्वयं में पूर्णतः आश्वस्त हो गया, कि इसके बारे में अपनी बुद्धि से न कुछ जान पाया हूँ और न जान सकता हूँ। परम सद्‌गुरु-कृपा से मेरे प्रवचनों के समस्त विषय देह से और देह को लेकर हैं। क्योंकि भौतिक देह का सदुपयोग करते हुए इस तथाकथित असद् एवं नश्वर देह द्वारा ही, परम शाश्वत सद् की अनुभूति की जा सकती है, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। दुर्भाग्यवश हम बुद्धिजीवी मानव इसका सदुपयोग तो क्या, उपयोग करना

भी नहीं जानते, बल्कि दुरुपयोग करना हमारे जैसा और कोई नहीं जानता।

मानव-देह पंच-महाभूतों के अति चमत्कारिक एवं रहस्यमय संगम का **शेष** है, जिससे मैं जीवन आरम्भ करता हूँ। इस शेष का शेष है–वह **'भस्मी';** जो तब प्रकट होती है जब पंच-महाभूतों की देह पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है। अतः एक शेष का दूसरे शेष में अन्त हो जाता है। एक **शेष** में **देह प्रकट** होती है तथा दूसरे **शेष** में **भस्मी का प्राकट्य** होता है। जीवन, शेष से शुरू होकर शेष में समाप्त हो जाता है। तात्विक दृष्टि से देखें, तो मानव देह एक पहेली है:–

''आदि ज़ीरो, अन्त ज़ीरो,
मध्य में मदान्ध ज़ीरो,
कैसे हो ज्वलन्त ज़ीरो?''

इस पहेली का उत्तर है–**'मानव-देह'**। मानव-देह ज़ीरो है, ज़ीरो रहेगी, लेकिन यह ज्वलन्त कैसे हो? यह जिज्ञासा है। सद्गुरु-कृपा से इस जिज्ञासा को शान्त किया गया है:–

''मई सच्चिदानंद ज़ीरो, सद्गुरु सद्संग ज़ीरो,
भई सच्चिदानंद ज़ीरो, ऐसे हो ज्वलन्त ज़ीरो।''

अनादि काल से हमारे वेद-वेदान्तों, शास्त्रों, उपनिषदों, तत्वज्ञों, ऋषियों, मुनियों, पुराणों ने इस जिज्ञासा को शान्त करने का एकमात्र उपाय **'सद्गुरु का सत्संग'** बताया है। जीवन शून्य से प्रारम्भ होता है और अन्ततः शून्य में समाप्त हो जाता है। हम मानव-जीवन का आरम्भ जन्म से मानते हैं और अन्त मृत्यु से मानते हैं। मैंने इष्ट-कृपा से इन दोनों छोरों को इनकी दिशाओं में और आगे बढ़ाया है। जीवन के प्रारम्भ (जन्म) के आरम्भ (भ्रूणावस्था) को मैंने **प्रारम्भारम्भ** नाम दिया था। जब किसी माँ के गर्भ में मेरी मानव-देह के लिए गर्भाधान होता है, बीज रूप में उस भ्रूण को नग्न आँखों से नहीं देखा जा सकता। मैंने जीवन के अन्त (मृत्यु) के अन्त (भस्मावस्था) को **अन्तान्त** नाम दिया था, जब मानव काया पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है और भस्मी शेष रह जाती है। भ्रूणावस्था रूप उस बिन्दु

या D.V. Dot में हमारे सम्पूर्ण जीवन का ढांचा जीवन्त व सक्रिय रूप से अंकित रहता है। जन्म कब, कहाँ, कैसे, किन परिस्थितियों में होगा, माता-पिता तथा अन्य पारिवारिक विधाएँ कौन-कौन व कैसी होंगी, पालन-पोषण किस प्रकार व किन परिस्थितियों में किन-किन लोगों द्वारा होगा, शिक्षा-दीक्षा किन संस्थानों में तथा किन सहपाठियों एवं शिक्षकों के मध्य होगी। डिग्रियाँ व पद कौन-कौन से मिलेंगे। विवाह-शादी कहाँ, किससे, कब होगी, सन्तान कौन-कौन सी होंगी, सुख-दुःख, लाभ-हानि, यश-अपयश, रोग-दोष, कब-कब किस-किस प्रकार आएँगे और अन्त यानि मृत्यु कब, किस प्रकार एवं किस-किस की उपस्थिति में होगी, क्रियाकर्म का कार्यक्रम एवं अन्तान्त अर्थात् भस्मी कैसे बनेगी तथा किसके द्वारा वह भस्मी गंगा-यमुना में विसर्जित की जाएगी? यह सम्पूर्ण जीवन्त ढांचा उस बिन्दु रूपी Live D.V.D. में अंकित रहता है। इस सम्पूर्ण जीवन को मैंने इष्ट-कृपा से आत्मानुभूति से पाँच चरणों में विभाजित किया है।

पहला, माँ के गर्भ में नौ महीने में मेरी देह बनी, जिसके निर्माण में किसी मानव या किसी भी चराचर प्राणी का कोई परामर्श, निर्णय या कार्य न था, न हो सकता है और न कभी होगा। अति अद्भुत, चमत्कारिक, स्वचलित देह स्वतः बनकर तैयार हो गई। पंच-महाभूतों से संगमित होकर मेरी देह **का** निर्माण हुआ, जो किसी भी चराचर की सोच से परे की घटना थी। मैं अपनी होश में, सारे संसार के मानवों की होश एकत्र करके भी करोड़ों जन्मों तक इस देह का एक बाल अथवा एक नाखून भी नहीं बना सकता। किसी का कोई हस्तक्षेप इस चरण में नहीं था। यह मैं होश सम्भालने पर विवेक बुद्धि से विचार करके जान जाऊँ और मान जाऊँ कि मेरी **देह का** निर्माण स्वतः हुआ। निर्माण के बाद जन्म हुआ और दूसरे चरण में उस देह **के लिए** पालन-पोषण, सुरक्षा, स्कूल एवं शिक्षकों का चयन, शिक्षा-दीक्षा आदि अनेक कार्य हुए, जिसके कारण आज मैं होश में आने वाला कहलाता हूँ। निर्माण मेरी देह **का** हुआ और पालन-पोषण आदि कार्य मेरी देह **के लिए** हुए, इन समस्त कृत्यों में मेरा स्वयं का कोई हस्तक्षेप नहीं

था। वे चाहे किसी ने भी किए।

तीसरा और अति महत्त्वपूर्ण चरण मेरे होश सम्भालने से होश गुम होने तक का है। **जब कोई मानव निर्णय ले सकता है, परामर्श दे सकता है और कार्य कर सकता है, तो उसे भौतिक दृष्टि से होश सम्भालना कहा जाता है।** हम होश सम्भालने पर बिना सोचे-विचारे ये तीनों कार्य करना प्रारम्भ कर देते हैं। सद्गुरु-कृपा से विचार कोई-कोई करता है। अब होश में आकर यदि अति होश से मैं विचार करूँ, कि मुझे होश आई है, तो होश जाएगी भी अवश्य। महादुर्भाग्यवश, होश के दौरान मध्य में मानव भूल ही जाता है, कि होश जाएगी। मध्य में **'मद'** से वह अन्धा हो जाता है। होश में आने से होश गुम हो जाने वाले मध्य के चरण के बाद भी होश सम्भालने से पूर्व जैसे ही दो चरण होंगे। होश गुम हो जाने से चिता पर डालने तक मेरी देह **के लिए** अनेक कार्य होंगे। इस चरण में न मेरा कोई निर्णय होता है, न परामर्श और न ही मेरा कोई कार्य अथवा हस्तक्षेप होता है। इसके बाद अन्तिम चरण में मेरी **देह का** पंच-महाभूतों में विलय होगा, जिसमें किसी का भी कोई परामर्श या निर्णय या कार्य नहीं होगा, जो मात्र ईश्वरीय कृत्य है।

प्रारम्भारम्भ (भ्रूणावस्था) से प्रारम्भ (जन्म) और अन्त (मृत्यु) से अन्तान्त (भस्मी) के दो चरणों में किसी भी मानवीय बुद्धि का हस्तक्षेप नहीं होता और देह के जन्म से मेरे होश में आने और होश गुम होने से मेरे चिता या कब्र में लिटाने के दो चरणों में मेरा अपना कोई हस्तक्षेप, निर्णय, परामर्श अथवा कार्य नहीं होता। अतः मैं होश के दौरान विचार करूँ, कि मुझे होश किसलिए आई है। **मध्य में मदान्ध ज़ीरो, कैसे हो ज्वलन्त ज़ीरो?** जब यह जिज्ञासा उत्पन्न होगी, तो वह मानव, जीवन का अर्थ जानने की ओर प्रेरित होता है।

मैं इस मानव-देह को ज़ीरो कैसे छोड़ दूँ। यह मानव-देह आलोकित, दैदीप्यमान अथवा ज्वलन्त कैसे हो? यह किसी की बुद्धि से समझ में आने वाला विषय नहीं है। इसके लिए सद्गुरु से सम्बन्ध होना आवश्यक है। क्या मैं बार-बार ज़ीरो से ज़ीरो में अन्त होता हुआ पुनः पुनः जन्म लेता और मरता

रहूँगा। क्या यह जानना महत्त्वपूर्ण नहीं है, कि इस मानव-देह का मेरे लिए अर्थ क्या है? मध्य की होश में जो यह मान लेता है, कि मुझे होश आ गई तो समझो उसे होश आ (कर), गई। सद्‌गुरु व सन्तों की कृपा से जिसे वास्तविक होश आ जाती है, वह अपने होश में आने से पहले के दोनों चरणों और होश गुम हो जाने के बाद के दोनों चरणों के विषय में चिन्तन करता है। क्या प्रभु मेरे होश में आते ही मुझसे रूठ गया है, कि अब मुझे अपनी देह के लिए सब कुछ स्वयं करना होगा। मुझे होश क्या इसलिए आई है, कि जो कार्य पहले मेरे बिना हो रहे थे, होश सम्भालने पर उन्हीं कार्यों को मैं करना प्रारम्भ कर दूँ। इतने चमत्कारिक एवं विलक्षण कार्य मेरी होश के बिना हो गए, तो मुझे होश किसलिए मिली है?

मध्य में मुझे होश इसलिए मिली, कि मैं होश में देख लूँ, कि सब कुछ मेरी होश के बिना हो रहा है। यह होश पशुओं को नहीं मिलती, केवल मानव अपनी होश में, अति होश में आकर यह देख सकता है, कि उसकी होश के दौरान भी उसी प्रकार सारे कार्य हो रहे हैं, जैसे उसके होश सम्भालने से पूर्व हुए और होश गुम हो जाने के बाद होंगे। वह जो कर रहा है, उससे करवाया जा रहा है, क्योंकि सब कुछ उस D.V. Dot में अंकित रिकार्ड के अनुसार होता है। होश में, होश से पहले और होश गुम हो जाने के बाद के कार्यक्रमों पर अति सूक्ष्मता से विचार करने पर मानव ही यह जान सकता है, कि सब कुछ हो रहा है। यह जानने के बाद इस होश को सद्‌गुरु चरणों में समर्पित कर दे। यदि मानव-देह पा कर अपनी होश के दौरान यह चिन्तन-मनन नहीं होता तो मानव, मानव-देह में पशु ही है। मानव-देह धारण करके यदि हम इस परम सोच से हट जाएँगे, तो मात्र जीवन के लिए ही सोचते रहेंगे। यह उत्कृष्ट मानव-देह, **काहे के लिए** मिली है, इसका अर्थ क्या है, यह जानने से वंचित रहेंगे और हमारे जीवन की गुणात्मकता समाप्त हो जाएगी।

जन्म के बाद दो-तीन साल की उम्र से पूर्णतया होश सम्भालने तक मैं स्वयं को नाम-रूप की देह से पहचानते हुए भी बहुत आनन्दित रहता हूँ, क्योंकि मेरी अपनी जीवनचर्या में मेरा अपना कोई निर्णय, परामर्श और कार्य

नहीं होता। मेरी देह पर आधारित जगत ही, समय-समय पर मेरे लिए समस्त निर्णय लेता है। परस्पर विचार-विमर्श, परामर्श, अनुरोध, विरोध, प्रतिरोध, गतिरोध, शोध, अवरोध आदि करते हुए कार्यरत रहता है। मैं स्वयं में बहुत आनन्दित इसलिए रहता हूँ, क्योंकि मुझसे जो कुछ हो रहा है, वह करवाया जाता है और विभिन्न कार्य करते हुए भी अपरिपक्व होश से पूर्णतः होश में आने तक मैं स्वयं को किसी कार्य का कर्ता व कारण नहीं मानता। यह मैं होश सम्भालने पर विचार करूँ, कि उस अवस्था में मुझे अपनी होश तो थी, लेकिन मैं स्वयं न कोई निर्णय ले सकता, न परामर्श दे सकता था और स्वयं किसी कार्य का कर्ता व कारण भी मैं नहीं बना। उस दौरान मैं बहुत आनन्दित और मस्त रहा तथा बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य हुए, जिनकी वजह से मैं होश वाला कहलाता हूँ।

मुझे होश आई है और एक दिन होश अवश्य जाएगी। जीवन-काल में भी जा सकती है और मृत्यु के बाद तो **जाएगी ही।** यदि जीवन-काल में होश गुम हो जाती है, तो मेरी देह के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य होते हैं। उनमें परस्पर विरोध, अनुरोध, प्रतिरोध, गतिरोध, अवरोध, शोध न जाने क्या-क्या होता है, लेकिन उसमें मेरा अपना कोई निर्णय, परामर्श व कार्य नहीं होता। जैसे बचपन में मेरी होश सम्भालने तक, मेरे लिए कार्य हुए, वैसे ही होश गुम हो जाने से मेरी देह के चिता में लिटाने तक मेरे लिए कार्य किए जाएँगे। उसके बाद मेरी पंच-महाभूतों की देह, पंच-महाभूतों में विलीन हो जाएगी।

यहाँ सबसे महत्त्वपूर्ण यह है, कि होश के दौरान मैं जान लूँ, कि क्या मैं वाकई होश में हूँ? यदि मैं वाकई होश में हूँ, तो क्या होश का सही उपयोग कर रहा हूँ अथवा दुरुपयोग करके होश को Abuse कर रहा हूँ? इतना कुछ मेरी होश के बिना हो गया और हो जाएगा, तो मध्य में मेरी होश का **'अर्थ'** क्या है? हमें एक **नाम** दे दिया जाता है और **रूप** से हमारी पहचान हो जाती है। होश के दौरान हम नाम व रूप में फँस जाते हैं, कि मैं अमुक नाम और अमुक रूप का व्यक्ति हूँ। किसी को 5 – 10 साल बाद मिलें, तो उसके रूप से हम उसे पहचान नहीं पाते। हम उसके नाम से उसे पहचानते हैं। वह

अपना नाम, पिता का नाम, स्थान आदि बताता है, तो हम उसे पहचान पाते हैं। हमने उसके बदले हुए रूप से नहीं पहचाना, लेकिन नाम से पहचाना। लोगों के लिए हमारा रूप बदलता है, लेकिन हमारे अपने लिए हमारा रूप नहीं बदलता। यह परिवर्तन बहुत धीमा होता है। अक्सर हम अपने रूप के बदलाव को व्यक्तिगत तौर पर अनुभव नहीं कर पाते, कोई दुर्घटना हो जाए अथवा बीमारी आदि की अवस्था हो, तो दूसरी बात है। हम अपनी बहुत पुरानी फोटो देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं, कि मैं पहले ऐसा था! बात यह छोटी सी लगती है, लेकिन इसका **'अर्थ'** बहुत गम्भीर है। मैंने इष्ट-कृपा से अध्यात्म को भौतिक देह व जगत की विभिन्न विधाओं से लिया है और आत्म-विद्या की सरलतम व्याख्या करने का प्रयास किया है।

हम जन्म के बाद थोड़ा होश सम्भालने पर नाम और रूप में ही फँस जाते हैं। फिर एक दिन होश परिपक्व होती है, कि हम निर्णय लेने, दूसरों को परामर्श देने और स्वयं कार्य करने में सक्षम हो जाते हैं। पहले मुझे नाम-रूप की होश आई थी, लेकिन होश परिपक्व नहीं हुई थी, तो मेरे लिए सब काम कोई न कोई करता था और तब मुझसे भी कुछ करवा लिया जाता था। मैं उस होश में हुकुम चलाता था और मेरे बाल हठ के आगे सब झुकते थे। मैं बहुत आनन्द में था, क्योंकि न मैं कर्ता था और न कारण था। मुझे कारण और कर्ता की होश ही नहीं थी। मैं उस नाम और रूप में बँध गया। रूप मुझे ईश्वर ने दिया था, नाम परिवार वालों ने दिया। मैंने स्वयं को अपनी व्यष्टि देह के नाम-रूप से पहचानना शुरू कर दिया, कि मैं अमुक-अमुक हूँ, मेरे माता-पिता अमुक-अमुक हैं, आदि-आदि। जब मेरी होश परिपक्व हुई, तब भी मैं वही व्यष्टि का व्यष्टि ही रहा। यह मेरी होश का सबसे बड़ा दुरुपयोग था, कि मैंने स्वयं को मात्र एक नाम-रूप का व्यक्ति मानकर कुछ न कुछ करना, पाना, खोना और कुछ होने के लिए अपनी उत्कृष्टतम् होश की समस्त शक्तियों को झोंकना शुरू कर दिया। मेरी Carrier बनाने और कुछ बनने की सोच ने मेरे जीवन को घुन लगा कर खोखला करना आरम्भ कर दिया। होश परिपक्व होने पर मुझे कर्ता और

कारण की होश भी आ गई। मैं एक व्यक्ति बना रहा और स्वयं को वह एक देह मानने के कारण मेरी देह द्वारा होने वाले कार्यों का में स्वयं कर्ता बन गया। **जब मैं कर्ता बन गया, तो मैं भरता भी बना।** कर्ता इसलिए बना, क्योंकि मुझे तथाकथित होश आ गई थी।

मेरी **'मैं'** और सबकी **'मैं'** एक ही है। **'मैं'** मेरा जीवात्मा-स्वरूप है, जिसका एक नाम-रूप की देह की अवचेतना में शब्द रूप में प्रकाट्य होता है। प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक धर्म, प्रत्येक कर्म, व्यवसाय, देश-काल, लिंग, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य, गुण-अवगुण **'मैं'** शब्द लगने से प्रमाणित होते हैं। हम सबकी **'मैं'** Common है। हमारी नाम-रूप की देह परस्पर हर प्रकार से पृथक् हैं। जन्म के एक-दो साल बाद मेरी **'मैं'** ने एक नाम-रूप की देह से स्वयं को पहचाना था और होश परिपक्व होने पर मेरी देह विकसित हो गई। मेरी सोचने की शक्ति, निर्णय लेने की शक्ति और कार्य करने की शक्ति बढ़ गई, लेकिन मेरी **'मैं'** वहीं की वहीं रही, कि मैं अमुक-अमुक नाम का व्यक्ति हूँ। पहले मैं स्वयं को नन्हा-मुन्ना बच्चा कहता था, अब मैं स्वयं को 25 वर्ष का जवान मानता हूँ। मेरी देह बदल गई, लेकिन **'मैं'** उतनी ही रही।

एक विशिष्ट समय में, मेरे जगत में मेरी देह भी होती है और उस समय के मेरे विचार, खयाल, ख्वाब, मान्यताएँ, धारणाएँ, योजनाएँ, परियोजनाएँ आदि काल की तीनों विधाओं सहित प्रकट होती हैं। जब मैं नाम-रूप की अवचेतना में आता हूँ, तो उस समय का मौसम, प्रकृति और प्राणी-जगत की विशिष्ट विधाएँ, वर्तमान, भूत, भविष्य सहित मेरी देह सहित जगत में होती हैं। **मैं एक व्यक्ति के रूप में जाग्रत नहीं होता, बल्कि अपनी समस्त समष्टि सहित जाग्रत होता हूँ।** नाम-रूप की अवचेतना में मेरी देह सहित जगत प्रकट होता है और अवचेतना न रहने पर लीन हो जाता है। **जगत निर्मित नहीं होता, बल्कि देह सहित जगत प्रकट होता है। यह जगत का रहस्य है।**

'मैं' जीवात्मा अपने पिता परमात्मा की भाँति स्वयं में सच्चिदानंद, निराकार व सहज सुखराशि है। जब **'मैं'** ने स्वयं को देह के नाम-रूप की

अवचेतना में पहचाना, कि मैं अमुक-अमुक नाम-रूप की देह हूँ, तो मेरी चेतना आच्छादित होकर अवचेतना बन गई। दूसरी भूल यह हुई, कि मैं यह भूल गया, कि यह जगत भी मेरे साथ प्रकट हुआ है, यह मुझसे भिन्न नहीं है। जो जगत मेरे साथ, मेरे लिए, मेरे होने से प्रकट हुआ था, उसे मैंने स्वयं से भिन्न मान लिया। **यदि होश आने पर मुझे अपनी देह के नाम-रूप की अवचेतना में मेरी देह सहित मेरे जगत की अवचेतना की होश आ जाए, तो यही समष्टिगत चेतना होगी।** तब देह सहित जगत में होते कार्यों का मैं कभी भी कर्ता और कारण नहीं बनूँगा। देह सहित जगत की क्रीड़ा मेरे आनन्द के लिए होगी।

'मैं' होश के दौरान मध्य में **'मदान्ध'** हो गया। संस्कृत में **'मैं'** को **अहम्** कहते हैं। **'मैं'** जब देह के नाम-रूप की अवचेतना में आया, तो देह सहित जगत प्रकट हुआ। लेकिन मैंने देहाधिपत्य एवं देहाध्यासवश जगत रहित देह को अपना स्वरूप मान लिया। मुझे अहंकार हो गया और जगत को मैंने स्वयं से पृथक् मान लिया। जब मेरी नाम-रूप की देह तक मेरी अवचेतना सीमित होगी, वहाँ देह-चिन्तन नहीं देह-चिन्ता ही होगी। मेरी चेतना की अवचेतना में इतनी शक्ति थी, कि उसका विस्तार जगत सहित देह तक था। **'मैं'** देह सहित जगत बनकर प्रकट होता हूँ, इस अवचेतना की होश आते ही मुझमें कर्ता और कारण भाव समाप्त हो जाएगा। प्रभु ने मेरी एक देह के लिए अनेकों प्रबन्ध किए हुए हैं। सारा जगत मेरे लिए मेरे साथ प्रकट होता है। उसमें मेरी देह उसका एक अंग मात्र है। इस जगत में प्रभु ने मुझसे जो करवाना होगा, करवा लेगा। **यह देह और जगत मेरे लिए है, मेरा नहीं है।**

प्रश्न उठता है, जो मेरी देह, जगत सहित है, उसका आकार, वजन, उम्र, देश-काल, स्थान आदि क्या हैं ? उस देह का क्या नाम है? उसका धर्म-कर्म, गुण-अवगुण, अवस्था क्या है? देह-चिन्तक अपनी उस देह के बारे में विचार करेगा, जो जगत सहित प्रकट हुई है। यह विचार वह अपनी एक नाम-रूप की स्थूल देह से ही करेगा। इस देह का एक अन्य स्वरूप है,

जिसमें यह देह, जगत सहित है। यह देह-चिन्तन होश में आने पर मेरी ऊर्ध्वगति का लक्षण है। वह एक नाम-रूप की देह, जिसकी मैं चिन्ता करता था, वह एक देह यह चिन्तन कर रही है, कि मेरा विस्तार कितना है। यह देह-चिन्तन ही आत्म-चिन्तन का प्रथम सोपान है।

'मैं' जीवात्मा या चेतना है। वह मैं जब एक देह के नाम-रूप की अवचेतना में आता हूँ, तो देह सहित जगत के रूप में उठता हूँ और देह सहित जगत के रूप में चलता हूँ और जब सो जाता हूँ, तो देह सहित जगत मुझी में समाहित हो जाता है। **उसके बाद जब मैं उठता हूँ, तो जिस देह सहित जगत को लेकर मैं जाग्रत होता हूँ वह, वो नहीं होता जिस देह सहित जगत को लेकर मैं सोया था।** देह सहित जगत मेरे साथ सोता है और बिल्कुल पृथक् देह सहित जगत मेरे साथ उठता है। कुछ भी मेरे हाथ में नहीं है, सब कुछ परमात्मा के हाथ में है।

''पड़ा रहने दो अपने दर पे, मुझको क्यों उठाते हो,
मेरी किस्मत संवरती है, तुम्हारा क्या बिगड़ता है।
मेरे टूटे हुए पाए तलब का मुझपे अहसान है,
कि तेरे दर से उठकर अब कहीं जाया नहीं जाता।''

संसार में समर्थ और असमर्थ दो स्थिर होते हैं। समर्थ को गति करने कीआवश्यकता नहीं है—ये करोड़ों महाब्रह्माण्ड उस परम समर्थ का भृकुटि विलास है। उसकी संकल्प-शक्ति से समस्त निर्माण, पालन एवं संहार होता है। **असमर्थ में चलने की शक्ति नहीं होती और समर्थ को चलने की आवश्यकता नहीं होती।** यदि **असमर्थ** को **समर्थ** का दीदार करना है, तो उसे अपनी असमर्थता का ज्ञान और अनुभूति होनी आवश्यक है। मैं सच्चिदानंद की संतान होते हुए भी एक देह के नाम-रूप से स्वयं को पहचान कर समस्त समष्टि से कट जाता हूँ और ज़ीरो रहते हुए पुनः पुनः जन्मता-मरता रहता हूँ। जबकि एक नाम-रूप की उस देह सहित जगत के रूप में मैं प्रकट होता हूँ और वह देह सहित जगत, मेरी एक देह की अवचेतना के समाप्त होते ही लय हो जाता है। मेरी देह सहित जगत के

प्रकट और लीन होने का Main Switch मेरी देह में है। ऐसे यह ज़ीरो दैदीप्यमान होगा।

जब मुझे अपनी देह की अवचेतना की यह Consciousness हो जाए, कि मैं देह सहित जगत का अधिष्ठाता हूँ, तो यह मेरी Awareness है। कमरे में बल्ब के जलने से सम्पूर्ण कक्ष प्रकाशित होता है और उसी प्रकाश में वह बल्ब भी दिखाई देता है। बल्ब, एक देह है, उसमें जो बिजली की शक्ति या पंच-प्राणों की ज्योति है, वह बल्ब या देह से पृथक् है। बल्ब उसी बिजली की शक्ति से प्रकाश देता है और पंखे, कूलर और अन्य उपकरण उसी बिजली की शक्ति से अपना-अपना कार्य करते हैं :–

''एक ज्योति तों सब जग उपज्या, क्या चंगे क्या मंदे।''

सब उपकरणों रूपी देहों का अपना-अपना महत्त्व है। एक है विद्युत, दूसरा है विद्युतिकरण और तीसरा है उपकरण। **विद्युत**–पंच-प्राणों की महाशक्ति है। **विद्युतिकरण**–जीवात्मा है। पंच-प्राणों की महाशक्ति विभिन्न **उपकरणों** में सामर्थ्य, आवश्यकता और उपलब्धि के अनुसार प्रकट होती है, वह यह जगत है। परमात्मा, जीवात्मा और सृष्टि की इससे सरल व्याख्या नहीं हो सकती। जगत में हर वस्तु और प्राणी का अपना-अपना महत्त्व है। बल्ब प्रकाश देता है, पंखा हवा देता है, हीटर गर्मी देता है, ए. सी. ठण्डक देता है। इन सबमें विद्युत शक्ति एक ही है। सद्गुरु इस बात को जनवाता है, मनवाता है और अनुभूति करवाता है। अनुभूति मात्र सद्गुरु-कृपा से ही होती है। सद्शिष्यों की जिज्ञासानुसार सद्गुरु प्रवचन देते हैं। इसे Projection या Projectivity कहा है। सद्शिष्य मन एवं ध्यान से अपनी श्रद्धानुसार सुनते हैं। इसे Reception या Receptivity कहा है। अन्तिम Realisation है, जो पूर्णतः सद्गुरु की कृपा पर निर्भर है। **'सद्'** को धारण करने की शक्ति का नाम **'श्रद्धा'** है। जिसमें असद् को धारण करने की शक्ति होगी, उसी में सद् को धारण करने की शक्ति भी होगी। धन, मान, पद-प्रतिष्ठा, जन-बल आदि होते हुए भी जिसमें अभिमान नहीं हुआ, वही सद्शिष्य बनने योग्य होता है। सद्गुरु उसका रूपान्तरण करता है।

वह सद्शिष्य के **'असद्'** का **'सद्'** में रूपान्तरण कर देता है।

यह नहीं भूलना, कि यह होश का क्षेत्र मात्र जीवन-काल के मध्य में है। हम जब सोकर उठते हैं, तो अपने नाम-रूप की देह की अवचेतना में स्वयं को एक व्यक्ति मान लेते हैं। यह विचार ही नहीं करते, कि पूरी सृष्टि भी मेरे ही साथ उठी है। मेरी देह सहित ये समस्त सृष्टि मात्र मेरे लिए है। मेरी समस्त सृष्टि का आधार मेरी व्यष्टि है। **'मैं'** जीवात्मा हूँ। वह देह जिसमें मेरी देह सहित सारा जगत है, वह मेरी अदृश्य सूक्ष्म देह है। भ्रमवश मैंने साकार नाम-रूपात्मक जगत में एक नाम-रूप की देह को अपना स्वरूप मान लिया और स्वयं को जगत से पृथक् मान लिया।

जीवन में मेरे समस्त लक्ष्य एक नाम-रूप की देह के लिए होते हैं, जो देह समुद्र में एक बूंद भी नहीं है। मुझे अपनी उस सूक्ष्म देह की Consciousness हो जाए, जिसकी अवचेतना में मेरी साकार देह सहित जगत प्रकट हुआ, यही सद्गुरु की कृपा है। जब सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आपमें समा गया, तो आपसे बड़ा कौन हो सकता है? इस स्थिति को सद्गुरु-कृपा से जान लें, मान लें और अनुभूति कर लें, इसलिए प्रभु ने मानव-देह में होश दी है। पशु यह कार्य नहीं कर सकते।

हमें मानव-देह प्रारब्धवश मिली है। प्रारब्धवश ही हमारा जीवन स्वतः चलता है। उचित समय पर ईश्वरीय प्रेरणाओं एवं प्रारब्ध में अंकित लेखे-जोखे के अनुसार कार्य स्वतः होते रहते हैं। उसमें हम कर्ता और कारण न बनें। हम कार्य स्वयं कर रहे हैं अथवा हमसे कार्य करवाया जा रहा है, दोनों भावों में बहुत अन्तर है। जब मैं कर्ता बनता हूँ, तो मैं अपने लक्ष्य को निर्धारित करता हूँ, उसमें मेरे अपने कारण होते हैं। अपनी कई बातें तो हम अपने निजी सम्बन्धियों से भी गुप्त रखते हैं। चाहे हम जीवन में स्वयं योजनाएँ बनाकर कितने भी कार्य करते हैं, लेकिन जानते हैं, कि कार्य हमारी बनाई योजना के अनुसार नहीं होता। ईश्वर की जिस योजना और रहस्य के तहत मुझे कार्य में लगाया हुआ है, यह मैं न जानता हूँ और न जान सकता हूँ। कभी-कभी हम करना कुछ चाहते हैं और होता कुछ और है।

अपनी ओर से हम लक्ष्य निर्धारित करते हैं, कि मैं यह कार्य कर रहा हूँ और मुझे यह प्राप्ति होने की आशा है। लेकिन मुझे क्या मिलना है और क्या होता है, यह ईश्वर ही जानता है। अतः सब कुछ स्वतः हो रहा है और अज्ञानवश मैं यह समझता हूँ, कि मेरे करने से हो रहा है।

सद्गुरु-कृपा से यह बात पल्ले पड़ जाए, कि जो मैं कर रहा हूँ, वह मुझसे करवाया जा रहा है और जो करवाया जा रहा है, वह स्वतः हो रहा है। यदि हमने कर्ता ईश्वर को मान लिया, तो हमारा लक्ष्य किसी वस्तु की प्राप्ति या खोना नहीं होगा। हमारा लक्ष्य उस वस्तु को पाने अथवा खोने के बाद की मानसिक स्थिति होगी। जब कार्य हम प्रभु इच्छा से करेंगे, तो कभी उसके कर्ता नहीं बनेंगे। **आनन्द-मिश्रित कर्म का नाम उत्साह है।** आनन्द-मिश्रित कर्म वही होगा, जिसके हम न कारण होंगे, न कर्ता होंगे।

सद्गुरु-कृपा से सद्शिष्य यह जान जाता है, कि मैं जगत सहित देह के रूप में प्रकट होता हूँ और इस देह सहित जगत के प्राकट्य का Main Switch मेरी जिस देह में है, वह अदृश्य है। इस प्रकार मेरी दो देह हैं—एक साकार जगत सहित देह, दूसरी निराकार देह, जो देह सहित जगत से परे की देह है। जहाँ से नाम-रूप की अवचेतना का Switch on-off होता है, जहाँ से करन्ट आता है। तीसरी देह, कारण-देह है जो स्वयं परमात्मा है—वह Power House है—**विद्युत, विद्युतिकरण और उपकरण।** जहाँ से विद्युत प्रवाह हो रहा है, वह मेरी **जीवात्मा** है, जो परमात्मा का ही अंश है। परमात्मा और जीवात्मा का अद्वैत में द्वैत सा है। मेरी देह उपकरण है, जो जगत सहित प्रकट और लीन होती है। **देहें अनेक एवं पृथक्-पृथक् इसलिए हैं, क्योंकि मेरी एक देह है।** जो भी प्रकट होता है, वह **'मैं'** हूँ। यह सूर्य, चन्द्रमा, बादल, बरसात सब कुछ मैं हूँ।

जब हम अपनी नाम-रूप की देह की अवचेतना में अपनी देह सहित जगत की अनुभूति कर लेते हैं, तो व्यावहारिक दृष्टि से हमें लाभ यह होगा, कि हममें से Inferiority और Superiority Complex दोनों समाप्त हो जाएँगे। यह दोनों Complex Individuality में हैं। जहाँ **'मैं'** स्वयं को

नाम-रूप की देह मानकर जगत को स्वयं से भिन्न देखते हुए हीन-भावना अथवा अहं की भावना से ग्रसित हो जाता हूँ। हमारा जितना भी भौतिक परिदृश्य है, उसके पीछे हमारा एक ही मुद्दा होता है, कि मैं Inferior से Superior होना चाहता हूँ। जब स्वयं को मैं जगत सहित मान लूँगा, तो किसके आगे बढ़ना और किसके आगे छोटा होना। मैं इष्ट-कृपा से आज इस व्यास-पीठ से उस स्थिति का नाम दे रहा हूँ–Totality Simplex.

हम सब Inferiority अथवा Superiority Complexes से ग्रसित हैं। जो भी स्वयं को मात्र एक व्यक्ति समझता और मानता है, वह इन दोनों में से किसी न किसी कुण्ठा (Complex) से ग्रसित अवश्य होगा। समय व परिस्थिति के अनुसार यह बदलते रहेंगे। यदि सद्गुरु-कृपा से मैं यह जान लूँ, मान लूँ और अनुभूति कर लूँ, कि सब कुछ **'मैं' ही 'मैं' हूँ**, तो मेरे सारे Complexes, Totality Simplex में रूपान्तरित हो जाएँगे।

मानव-देह पाकर जब मैंने स्वयं को देह के नाम-रूप से पहचाना और जगत को स्वयं से भिन्न माना, तो होश सम्भालने से होश गुम होने तक (मध्य में मदान्ध ज़ीरो) मेरी सारी सक्रियता अपने Complexes को दूर करने के लिए ही होती है। **'मैं'** इस जगत का बिल्कुल भी आनन्द नहीं ले पाता। कभी सुखी, कभी दुःखी होता हुआ, आसक्तियों को लिए अकाल मृत्यु को प्राप्त होता हूँ और पुनः ज़ीरो से प्रारम्भ करता हूँ। सद्गुरु इतना कृपालु होता है, कि असद् देह सहित जगत को धारण करने की क्षमता से युक्त श्रद्धालु को वह सद् में रूपान्तरित कर देता हैः–

''मई सच्चिदानंद ज़ीरो सद्गुरु सद्संग ज़ीरो,
भई सच्चिदानंद ज़ीरो, ऐसे हो ज्वलन्त ज़ीरो।''

यह एक स्पष्ट तथ्य है, कि जैसे ही मैं देह के नाम-रूप की अवचेतना में आता हूँ, तो देह सहित जगत के रूप में प्रकट होता हूँ। **यह प्रकाट्य मेरे हाथ में नहीं है।** होश सम्भालने पर जब भी मुझे इस परम सत्य की अनुभूति हो जाए, तो यही मेरी Awareness होगी। होश में आने पर अपनी इस Awareness को Realise करना ही मानव-देह का **'अर्थ'** है। मैं स्वयं में

व्यष्टि नहीं, कुल समष्टि हूँ और मेरी व्यष्टि देह की अवचेतना देह सहित जगत की अवचेतना है।

मानव को मानव-जीवन देकर होश के दौरान प्रभु ने स्पष्ट दिखा दिया है, कि तुझे मैंने ऐसी मानव-देह दी है, जैसी समस्त जगत में किसी अन्य प्राणी की नहीं है। इस देह में तू स्पष्ट देख सकता है, कि होश में आने से पहले जब तू निर्णय करना, परामर्श देना अथवा कोई कृत्य नहीं कर सकता था, मैंने पंच-महाभूतों से तेरी देह का निर्माण किया। उसके बाद तेरी होश सम्भालने तक मेरी कृपा से तेरी देह का पालन-पोषण आदि कार्य हुए। तेरी होश खोने के बाद, चिता में देह जाने तक, मेरी कृपा से कार्य होंगे और उसके बाद तेरी देह का पंच-महाभूतों में विलय मात्र मेरी इच्छा से होगा। साथ ही बीच के होश वाले आयाम में अपनी इच्छा से जो भी तू करे या न करे, कुछ पाए अथवा कुछ खोए और तेरा कुछ हो या न हो, तेरी देह सहित जगत अन्ततः **'कुछ नहीं'** (**भस्मी**) हो जाता है।

मानव-देह पाकर होश सम्भालने पर अति होश में आकर मैं यह देख सकता हूँ, कि मेरे कुछ भी करने से मैंने होश नहीं सम्भाला। होश के दौरान जब मैं कर्ता बनता हूँ, तो मैं भरता बन जाता हूँ और मेरा भुरता बन जाता है; जीवन **'असद्'** हो जाता है। **झूठ** भी **असद्** और **सत्य** भी **असद्।** झूठ-सत्य एक दूसरे के सापेक्षिक हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से दोनों असद् हैं। जब हमने **'सद्'** का अधिग्रहण कर लिया और उसके साथ **'असद्'** लग गया, तो जीवन **सद्+असद्=सदासद्** हो जाता है। देह सहित जगत की अवचेतना मेरी Awareness है। चेतन के साथ अवचेतन जुड़कर हमारा समस्त जीवन **चेतन+अवचेतन=चेतना व चेतन** हो जाता है। जहाँ **'चेतना'** होगी, **'सद्'** होगा, वहाँ **'आनन्द'** होगा ही।

प्रभु ने मेरी होश सम्भालने से पहले के दो प्रकरणों द्वारा मुझे स्पष्ट दिखा दिया, कि मैं मात्र एक व्यक्ति नहीं हूँ। व्यक्ति रूप में हम सब एक दूसरे से पूर्णतः भिन्न हैं, इसलिए व्यक्तिगत दृष्टि से हममें समानता हो ही नहीं सकती। छोटा-बड़ा, ऊँचा-नीचा, पापी-पुण्यी, सुखी-दुःखी समस्त

समष्टि के साथ मैं अपनी देह सहित जगत के विभिन्न रूपों में प्रकट होता हूँ। फिर Inferiority or Superiority का प्रश्न ही नहीं उठता। तब मुझ में Totality Simplex का भाव स्थाई रूप से रहेगा।

सद्गुरु जीवन का **'अन्तान्त'** दिखा देता है, कि तेरी देह अन्ततः भस्मी अवश्य बनेगी। जीवन **में** भविष्य अनन्त हैं, वे पूरे हों या न हों और सबके पृथक्-पृथक् हैं। **लेकिन जीवन का भविष्य यह भस्मी है, जो सबका एक ही है और वह निश्चित, परिलक्षित एवं दर्शित भविष्य है।** तेरी देह की जो भस्मी होगी, वह भस्मी तुझे देह के रूप में नहीं पहचानेगी। वह सबकी एक होती है। यदि तू स्वयं को एक व्यक्ति भी मानता है, समस्त समष्टि नहीं मानता, तो उसका रहस्य भी तू स्पष्ट देख सकता है। तेरी देह की भस्मी तेरी देह की नहीं होगी। भस्मी से यदि पूछा जाए, कि आप किसकी हैं? यदि भस्मी बोल सकती हो तो वह कहेगी, कि ''आज तक पूरे ब्रह्माण्ड में जितने मर चुके हैं, उनका मैं **वर्तमान** हूँ, आज जो जीवित हैं, उनका मैं निश्चित, परिलक्षित एवं दर्शित **भविष्य** हूँ और आज के बाद पैदा होने वालों का मैं **भूत** (अतीत) हूँ। मैं किसी नाम-रूप की देह से नहीं बँधी।'' मेरा (जीवात्मा) भूत, भविष्य, वर्तमान सब कुछ भस्मी ही है। भस्मी **'शिवत्व'** है। यदि मैं स्वयं को देह सहित जगत के रूप में मान लूँ, तो मुझमें और मेरी भस्मी में कितनी समानता है।

होश आने पर सद्गुरु-कृपा से यह ज्ञान हो जाए, कि जो मैं कर रहा हूँ, वह मेरे द्वारा हो रहा है। मैं देह सहित जगत के रूप में प्रकट होता हूँ और जब मैं सोता हूँ या मरता हूँ या भस्मी बनता हूँ, तो देह सहित जगत मेरे लिए लय हो जाता है। जीवन में परम इष्ट-कृपा से जब इस भाव की सिद्धि हो जाएगी, तब मेरा लक्ष्य कभी कुछ पाना या खोना नहीं होगा, बल्कि मेरा लक्ष्य मेरा मानसिक आनन्द होगा। **जीवन में किसी कृत्य का मैं न कारण बनूंगा, न कर्ता।** इसे **'कर्मयोग'** कहते हैं। 'कर्मयोग' वस्तुतः योगकर्म से प्रारम्भ होता है। कर्मयोग का आधार प्रभु से जुड़ना (योग) है।

प्रभु ने हमें अति उत्कृष्ट मानव-देह के साथ अति आनन्दमय

मानव-जीवन भी दिया। प्रभु इसके बदले में हमसे अपने लिए कुछ नहीं चाहते। हम कल्पना भी नहीं कर सकते, कि प्रभु हमारे लिए कितने कृपालु हैं। लेकिन यह देह हमसे वापिस अवश्य लेनी है और कब वापिस लेनी है, वह अवधि हमसे पूर्णतः छिपा कर रखी गई है। इस मानव-देह का **'अर्थ'** हम नहीं जानते। विश्व के एक हज़ार उत्कृष्टतम् बुद्धिजीवियों को एकत्र करके उनसे यह पूछा जाए, कि आपको दी गई मानव-देह का अर्थ क्या है? सबकी सोच पृथक्-पृथक् होगी। हमारी मानवीय बुद्धि असंख्य अर्थ निकाल सकती है। हज़ार बुद्धिजीवी एक ही प्रश्न का अलग-अलग उत्तर दें, तो इसका अर्थ है, कि उसका उत्तर कोई नहीं जानता। उनमें से कोई यदि यह जान ले और तहे-दिल और रूह से यह मान ले, कि मैं इसका उत्तर नहीं जानता, मात्र वही अपनी उत्कृष्टतम् मानवीय बुद्धि का सदुपयोग जानता है। यह बुद्धि से उठा हुआ प्रश्न नहीं है, बल्कि रूह से उठी जिज्ञासा है। मानव-जीवन के ये दो विपरीत मार्ग हैं, 'अर्थ' आधार है। एक मार्ग अर्थ से स्वार्थ की ओर जाता हुआ अधोगति में निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ की ओर जाता है। दूसरा मार्ग अर्थ से यथार्थ, धर्म, काम और मोक्ष की ओर ऊर्ध्वगति की ओर जाता है। दोनों का परस्पर कोई सम्बन्ध ही नहीं है। हम सब अधिकतर अर्थ, निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ के सोपानों पर ही भटक रहे हैं।

मानव-देहधारी होकर जो अपनी देह की विलक्षणता एवं अर्थ के विषय में चिन्तन नहीं करता, वह मानव-देह में होते हुए भी पशुवत् जीते हुए मर जाता है। देह में रात-दिन करोड़ों क्रियाएँ स्वतः चलती रहती हैं। दिल, गुर्दे, रक्त-संचार, श्वास-प्रश्वास, पाचन-संयन्त्र आदि स्वतः कार्य करते रहते हैं। हमें कुछ नहीं करना पड़ता। उन क्रियाओं के कारण ही हमारी बाहरी क्रियाएँ होती हैं। हमें उत्कृष्ट बुद्धि इसीलिए मिली है, कि हम जान जाएँ, कि इस देह का अर्थ हम नहीं जानते और अपने मन से इस परम **'सद्'** को पूरी तरह स्वीकार कर लें। मन, बुद्धि, दोनों में इस विषय पर समन्वय हो जाए। साथ ही इस देह की निश्चित अवधि है, जो हम नहीं जानते। इसके पीछे भी ईश्वर का विशेष अर्थ है। इसीलिए देह के अर्थ में अर्थ है। यह देह हमें

अर्थार्थ मिली है। हमारी बुद्धि तो **अर्थ** भी नहीं जानती और **अर्थार्थ** तो बिल्कुल नहीं जानती। विशिष्टतम् मानव अपनी बुद्धि से इसका अर्थ यह लगाएगा, कि ईश्वर प्रदत्त इस देह का कोई विशेष प्रयोजन है, जो मुझे शीघ्रातिशीघ्र सिद्ध कर लेना चाहिए। क्योंकि यह देह कभी भी छीन ली जा सकती है। लेकिन जिस देह का कार्यक्रम हम नहीं जानते, उस देह से हम देह के लिए ही प्रोग्राम बनाते रहते हैं। इसका अर्थ है, कि हम इस उत्कृष्टतम् मानव-देह का मात्र दुरुपयोग ही कर रहे हैं।

जब हम अर्थार्थ नहीं जानते, तो हमारे लिए यही उचित होगा, कि इस परम सद् को जानकर और मानकर, इस देह को प्रभु को समर्पित कर दें। ''प्रभु ! आपने यह अति अद्‌भुत, परम रहस्यमयी मानव-देह मुझे दी है, इसका बहुत ही विशिष्ट **'अर्थ'** होगा। इसकी अवधि भी घोषित नहीं की, इसमें भी आपका विशिष्ट अर्थ होगा। परन्तु प्रभु ! जो बुद्धि आपने मुझे दी है, उससे मैं जान गया हूँ, कि इसका अर्थ मैं न जानता हूँ और न ही अपनी बुद्धि से जान सकता हूँ। यह आप भी जानते हैं, कि मैं नहीं जानता। यह मेरा कोई दोष नहीं है। इसलिए आपकी इच्छा, शक्ति एवं कृपा से **'मैं'** यह देह, मन एवं बुद्धि आपके चरणों में समर्पित करता हूँ।'' जब हम नित्य सुबह उठकर सर्वप्रथम अपनी समस्त शारीरिक, बौद्धिक एवं मानसिक शक्तियों से अपनी देह के **'अर्थ'** का तहे-मन एवं रूह से इस प्रकार समर्पण (अर्थार्पण) कर देते हैं, तो हमारा जीवन तुरन्त **'यथार्थ'** हो जाता है। **यथार्थ जीवन, सर्वदा हितार्थ और अन्यार्थ होता है।**

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(10 जून, 22 जुलाई एवं 12 अगस्त 2007)

स्मृति–भ्रमवती एवं भगवती

स्मृति देह की नहीं, **'मैं'** (जीवात्मा) की है। जब उस **'मैं'** पर अधिकार आ जाएगा, तभी स्मृति **भगवती** होगी। श्रुति या स्मृति भगवती को देह के स्पर्श से मैंने मात्र देह के Frontal Lobe की स्मृति बना ली।

ईश्वर एक है और जीवात्मा भी एक है। ईश्वर स्रष्टा है और जीवात्मा मात्र दृष्टा है। ईश्वर द्वारा रचित समस्त प्रपंचमय सृष्टि के अधिग्रहण एवं प्रस्तुतिकरण के लिए जीवात्मा को एक मानव-देह दी जाती है, जो समय-समय पर विभिन्न मानसिक अवस्थाओं में देह सहित जगत की सृष्टि के विभिन्न रूपों में प्रकट व लीन होती है।

हमारी स्मृतियाँ उन स्वप्नों की हैं, जिन स्वप्नों को देखते समय हमें अपनी सुषुप्ति और उन स्वप्नों के स्वप्न होने का ज्ञान नहीं होता। स्वप्न-जगत की स्वप्नवत् प्रतीति के लिए अपनी सुषुप्ति की मानसिकता की अनुभूति आवश्यक है। **'मैं'** (जीवात्मा) जैसे ही एक देह के नाम-रूप की अवचेतना में आता हूँ, तो तुरन्त उस समय की मानसिक स्थिति के अनुसार मेरी देह सहित जगत का प्रकाट्य हो जाता है। अतः मैं अपनी व्यष्टि देह के नाम-रूप के बारे में ही Conscious नहीं होता, बल्कि ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से साथ-साथ समस्त समष्टि के बारे में भी Conscious हो जाता हूँ। इस समष्टि में एक नाम-रूप में मेरी देह भी होती है। देह सहित जगत के प्रकाट्य में कोई समय का अन्तराल (Time duration) नहीं होता। अज्ञानवश जब मैं नाम-रूप में व्यष्टि देह को अपना स्वरूप मान लेता हूँ, तो जगत को स्वयं से पृथक् मान लेता हूँ और उस जड़तापूर्ण अवचेतना में मेरे दुःखों की श्रृंखला जन्म-दर-जन्म चलती रहती है।

जीवात्मा को परमात्मा का मानस-पुत्र कहा गया है। भाव, स्वभाव, संस्कार एवं मान्यता—मन इन चार विधाओं का पुंज है। जितनी भी हमारी सांसारिक मान्यताएँ हैं, वे संस्कारों के अनुसार होती हैं। संस्कार हमारे स्वभाव के अनुसार होते हैं और स्वभाव हमारे भावों से बनता है। किसी भी व्यक्ति के द्वारा उसकी मान्यताओं की तुष्टि और पुष्टि ही उसका जीवन है। मन के चार प्रकार हैं—**विकृत मन, विकसित मन, विस्तृत मन और विशुद्ध मन।** बाह्य जगत में हमारी अपनी देह सहित जितना भी प्रकाट्य है, वह मन के चारों प्रकारों और चारों विधाओं (भाव, स्वभाव, संस्कार एवं मान्यताएँ) के अनुसार पृथक्-पृथक् समय पर पृथक्-पृथक् होता है। हम जहाँ भी, जैसे भी, जिस भी स्थिति में हों, हमारे भाव, स्वभाव, संस्कार और मान्यताएँ जो भी हों, उसमें हम विकृत, विकसित, विस्तृत एवं विशुद्ध चारों आयामों में हो सकते हैं। **विकृत** मानसिकता में **'मैं'**(जीवात्मा) ने नाम-रूप की देह पर अधिपत्य, अधिग्रहण व अध्यास कर लिया, कि मैं अमुक-अमुक हूँ और संसार को स्वयं से पृथक् मान लिया। विकृत मन में भाव, स्वभाव, संस्कार और मान्यताएँ एक व्यष्टि-देह तक सीमित एवं संकीर्ण रहती हैं। ऐसी देह विकृत मानस का प्रतिनिधित्व करती है। **विकसित** मानस का प्रतिनिधित्व करने वाली देह, जगत सहित होती है। इस देह का अस्तित्व वह मानस है, जिसमें जीवात्मा सबके सहित अपना भला सोचता है। **विस्तृत** मानस का प्रतिनिधित्व करने वाली देह में जीवात्मा की इस भाव में सिद्धि हो जाती है, कि आदि से अन्त तक जितने भी देह सहित जगत बने हैं, उन सब में **'मैं'** ही **'मैं'** हूँ। **विशुद्ध** मानस का प्रतिनिधित्व करने वाली देह 'जगत सहित देह' से रहित होती है। वहाँ न देह है, न जगत। इस प्रकार देह का स्वयं में कोई अस्तित्व नहीं है। जिस मानस का साकार देह प्रकाट्य है, वह मानस निराकार एवं अदृश्य है। देह सहित जगत साकार एवं दृश्यमान है और हर क्षण परिवर्तित होता है। **'मैं'** (जीवात्मा) 'जगत सहित देह' **रहित** निराकार मानस हूँ।

सुषुप्ति मेरी वह मानसिक स्थिति है, जिसमें **'मैं'** (जीवात्मा) अपने

नाम-रूप के विषय में Conscious नहीं होता, तो देह सहित मेरा सम्पूर्ण जगत लय हो जाता है। सुषुप्ति में मुझे अपनी देह के नाम-रूप एवं तदनुसार जगत की Consciousness तो होती ही नहीं, साथ ही मुझे अपनी सुषुप्ति की Consciousness भी नहीं होती। In sleep I am not conscious of the non-consciouness of my name and form and I don't know that I am sleeping. जब मुझे अपनी देह के नाम-रूप की Consciousness होती है, तो मैं केवल स्वयं को नहीं पहचानता, बल्कि साथ ही साथ मैं उस समय के जगत को भी पहचानता हूँ। उस समय के पेड़-पौधों, जड़-चेतन चराचर जगत की किसी भी विधा को मैं तब पहचानता हूँ, जब पहले मैं अपनी देह को नाम-रूप में पहचानता हूँ। बाहर के जगत को पहचानने के लिए यह ज़रूरी है। जैसे ही मैं सो जाता हूँ या मूर्च्छित हो जाता हूँ अथवा मर जाता हूँ, तो मुझे अपनी देह के नाम-रूप की होश के साथ ही जगत की होश भी नहीं रहती।

मुझे यदि किसी दूसरे का ख्याल या होश है, तो मुझे ज्ञात अथवा अज्ञात रूप में अपनी होश अवश्य होगी और जब अपनी होश होगी, तो उस समय के जगत की भी होश होगी। अतः एक मेरे होश में आने से उस समय का मेरा सम्पूर्ण जगत प्रकट होता है। उस समय का मौसम, सम्बन्ध, परिवार, लेना, देना, ख्याल, ख्वाब, कल्पनाएँ, योजनाएँ, चाहतें, चहेतियाँ, मित्र-शत्रु व देह सहित जगत की समस्त विधाओं के कार्यक्रम, काल की तीनों विधाओं (भूत, भविष्य, वर्तमान) सहित मेरे साथ प्रकट होते हैं। इस सबका आधार **'मैं' ही** होता हूँ और इस समस्त जगत में एक देह के रूप में **'मैं' भी** होता हूँ। यद्यपि मैं एक देह के रूप में अकेला सोया, लेकिन इस समस्त समष्टि को अपने साथ लेकर सोता हूँ।

सोते समय जब तक मेरे जगत की विभिन्न विधाओं में से एक भी मेरे ख्याल में होती है, तब तक मैं सो नहीं सकता। प्रगाढ़ निद्रा आने से पहले आवश्यक है, कि मेरे साथ ही मेरा जगत भी सो जाए। मेरी सम्पूर्ण समष्टि में मेरी एक देह **भी** होती है, यदि देह न होती तो मेरा कोई जगत भी न होता।

सोने से पहले मैं अपनी देह के नाम-रूप और जगत दोनों के प्रति Conscious था। जिस जगत को मैं स्वयं से भिन्न मान रहा था, मेरी सुषुप्ति में वह भी मेरे साथ लीन हो जाता है। कोई एक छोटा सा ख्याल, व्यक्ति, विचार भी मेरी सुषुप्ति में बाधा बन जाता है। कोई पशु, पक्षी, व्यक्ति, स्थान, घटना आदि किसी का तनिक सा भी ध्यान जब तक रहता है, मैं सो नहीं सकता। जब मैं सो गया, तो स्वयं और जगत दोनों के प्रति Conscious नहीं रहा, लेकिन मैं अपनी सुषुप्ति की होश में भी नहीं रहा।

तथाकथित जागृति से मैं सो गया। उस जागृति में मुझे ज्ञान था, कि मैं जागा हुआ हूँ। लेकिन सो जाने पर मुझे ज्ञान नहीं था, कि मैं सोया हुआ हूँ। सुषुप्ति में स्वप्न आया और तथाकथित जागृति की तरह मैं एक देह सहित जगत की स्वप्न-सृष्टि में फिर जागा। उस स्वप्न में मेरी नाम-रूप की देह के साथ बना-बनाया जगत प्रकट हुआ। मैं सपने में एक अन्य बिल्कुल पृथक् जगत सहित देह के रूप में प्रकट होता हूँ। मैं उस स्वप्न में उत्तरकाशी गया, तो वहाँ के पहाड़, गंगा नदी आदि मेरे लिए प्रकट हुईं। लगे-लगाए फलों के वृक्ष थे, जिनके फलों को मैंने खाया। कब इन्हें बोया गया और कब इन पर फल आए, इससे मुझे कुछ लेना-देना नहीं था।

स्वप्न में मेरी उस समय की देह भी प्रकट हुई थी, उसका कौन सा जन्मदिन था, वह कब जवान हुई, कहाँ उसने शिक्षा ली? स्वप्न में मेरे साथ अन्य कई लोग थे, वे भी प्रकट हुए। उन्होंने वस्त्र, आभूषण आदि धारण किए हुए थे। वे कौन सी मिल या दुकान में बने? मेरी उस स्वप्न की नाम-रूप की देह के साथ वह समस्त स्वप्न जगत प्रकट हुआ था। साथ ही मैं सुषुप्ति में अपनी देह और जगत दोनों के प्रति बेखबर था और अपनी इस बेखबरी का भी मुझे ज्ञान नहीं था। इसलिए स्वप्न देखते समय मुझे उस स्वप्न जगत की स्वप्नवत् प्रतीति नहीं हुई, बल्कि वह वास्तविक ही लगा। जागने के बाद उस स्वप्न का कोई शेष अथवा अवशेष नहीं बचता, लेकिन स्मृति होती है। मैं न सोता, तो स्वप्न भी नहीं आता। स्वप्न देखते समय वह मुझे स्वप्न नहीं लग रहा था। उस सम्पूर्ण जगत में एक नाम-रूप की देह के रूप में **'मैं' भी** था

और उस समस्त सृष्टि का आधार स्वप्न की देह के रूप में **'मैं' ही** था। क्योंकि उस देह के स्वप्न-सृष्टि से निकलते ही वह सम्पूर्ण सृष्टि लीन हो गई, जिसकी मुझे स्मृति मात्र ही है।

किसी भी स्वप्न की प्रथम औपचारिकता है, कि मैं साकार से निराकार में गया, तब साकार स्वप्न-जगत प्रकट हुआ। साकार में मुझे जगत सहित अपनी देह के नाम-रूप की अवचेतना थी। निराकार (सुषुप्ति) में मुझे अपनी देह के नाम-रूप सहित जगत की अवचेतना नहीं थी, लेकिन मुझे अपनी सुषुप्ति का ज्ञान भी नहीं था। स्वप्न में मुझे नाम-रूप की देह और जगत की Consciousness थी, लेकिन यह नहीं मालूम था, कि यह स्वप्न है। क्योंकि मुझे अपनी सुषुप्ति का ज्ञान नहीं था। जबकि साकार नाम-रूपों में स्वप्न-जगत मेरी निराकार मानसिक स्थिति (सुषुप्ति) से ही प्रकट हुआ। वह सुषुप्ति या नाम-रूप की देह सहित जगत की अवचेतना न होना, मेरी एक सुषुप्त देह की मानसिक स्थिति थी। मैं अकेला सोया था और अकेला उठा हूँ और मुझ अकेले से ही सारा स्वप्न प्रकट हुआ। स्वप्न के लोग, प्राणी, स्थान, वस्तुएँ, काल आदि सब कुछ मेरे एक मानस से प्रकट हुए और वहीं लीन हो गए। मैंने स्वप्न देखा, लेकिन अपनी निद्रा नहीं देखी। यदि मैं अपनी निद्रा देख लेता, तो स्वप्न देखते समय मुझे ज्ञान होता, कि यह स्वप्न है और मैं उस सबका भरपूर आनन्द लेता।

स्वप्न के समस्त जगत में मेरी एक देह **भी** थी। लेकिन मैं जो सोया हुआ था, वहाँ मेरी एक देह **ही** थी। मैं अकेला सोया था। एक **ही** से अनेक नाम-रूप स्वप्न जगत में प्रकट हुए, जिनमें मेरी एक नाम-रूप की देह **भी** थी। मेरी स्वप्न वाली देह सहित समस्त जगत, एक मुझसे प्रकट हुआ और मुझमें ही लीन हो गया। **मैं** सोया, तो स्वप्न प्रकट हुआ। जब अकेला मैं निराकार में चला गया, तो मुझ सहित एक साकार जगत, स्वप्न में प्रकट हुआ। मुझे अपनी उस निराकार स्थिति (सुषुप्ति) की कोई Consciousness नहीं है। यदि होती, तो मुझे स्वप्न के चलते यह ज्ञान हो जाता, कि यह स्वप्न है।

'मैं' ही जो सोया हुआ था यदि न होता, तो स्वप्न-जगत सहित **'मैं' भी** प्रकट न होता। स्वप्न-जगत सहित मेरे **भी** प्रकट होने का आधार मैं **ही** हूँ। मैं स्वप्न में दुखी-सुखी इसलिए हुआ, क्योंकि मैंने स्वयं को जगत से पृथक् मान लिया। स्वप्न में यदि किसी ने मेरा कुछ चुरा लिया, तो वह चोर कहीं बाहर से तो नहीं आया। वह चोर भी, जो मैं ही सोया था, उसी निराकार मानस से प्रकट हुआ था। साथ ही मैं यह जानता हूँ, कि कब, क्या स्वप्न आएगा, किस प्रकार चलेगा और समाप्त होगा, यह मेरे हाथ में नहीं है। स्वप्न में जो प्रकाट्‌य होता है, उसका प्रकाट्‌य करने वाला कोई और होता है। स्वप्न का कोई शेष-अवशेष भी नहीं है और मैं एक देह के रूप में जहाँ सोया था, वहीं से उठा हूँ। मैं कहीं आया-गया नहीं। उस सारी घटना की मात्र स्मृति है। यह स्मृति भ्रमवती है, क्योंकि जगत सहित जो देह है ही नहीं, उस एक देह के सुखों-दुःखों की मानसिकता छोड़ जाती है।

सुषुप्ति के लिए हमने एक शब्द दिया था–Nothingness (कुछ नहीं)। इस **अभावमय स्थिति** (जिसमें देह सहित जगत की समस्त विधाओं का लय हो जाता है), में भी एक **सूक्ष्म भाव** रहता है। कोई व्यक्ति जिस सूक्ष्म भाव को लेकर निद्रा की अभावमयी मानसिकता में प्रविष्ट हुआ है, वह भाव यदि होता है, तो देह सहित जगत की नाम-रूप की अवचेतनामयी स्वप्न-सृष्टि बनकर प्रकट होता है। स्वप्न में हम अभावमय स्थिति के उसी विशिष्ट भाव में विचरे और उसी अभावमयी स्थिति में वह सब कुछ समाहित हो गया। समय-समय पर हम अभावमय स्थिति के विशिष्ट भाव, तदनुसार स्वभाव, तदनुसार संस्कार और तदनुसार मान्यताएँ लेकर अपनी देह सहित जगत में प्रकट होते हैं। भाव, स्वभाव, संस्कार और मान्यताएँ जो अदृश्य रूप से मन में समाहित हैं, वे रूप धारण करके उस समय प्रकट हो जाती हैं और फिर समाहित हो जाती हैं। हमारी बुद्धि उस समय के भाव के अनुसार सोचेगी। सुषुप्तावस्था में देह सहित जो जगत स्वप्न-सृष्टि बन कर नाम-रूप की अवचेतना में प्रकट होता है, उसमें हमारी देह सहित जगत की समस्त बौद्धिक विधाएँ हमारे अपने मन से ही प्रकट होती हैं। बुद्धि का व्यवहार मन

के प्रकार पर निर्भर करता है। मन का भाव ही देह सहित जगत की बौद्धिक अवचेतना बन कर प्रकट होता है। इसलिए Nothingness में भी कुछ होता है। उसे Nothing इसलिए कहा, क्योंकि जो Something (कुछ) है, वह अस्थाई, नश्वर और परिवर्तनशील है। वह उस समय प्रकट होकर Nothingness में ही समाहित हो जाता है। स्वप्न-सृष्टि का जागृति में न कुछ था, न है और न रहेगा। स्वप्न-सृष्टि के दौरान सब कुछ था, इसलिए वह Nothingness में Something था।

स्वप्न में मुझे माथे पर चोट लगी, अब जब मैं उठा हूँ, तो मेरी देह ठीक है अर्थात् मैं स्वप्न वाली देह नहीं हूँ। उस स्वप्न की स्मृति केवल मुझे ही है। स्वप्न में मेरे साथ जो लोग थे, उनका मेरे स्वप्न की उस घटना से कुछ लेना-देना नहीं है। मैंने कभी किसी स्वप्न में किसी को कुछ रुपया उधार दिया हो और जाग्रत होकर मैं उससे मांगने जाऊँ, तो वह मुझे पागल घोषित कर देगा। अर्थात् स्वप्न का समस्त जगत भी मैं ही था, इसलिए उसकी स्मृति भी केवल मुझे **ही** है। मैं एक नाम-रूप की देह में सोया और स्वप्न में एक **ही** से अनेक नाम-रूपों में प्रकट हुआ, जिसमें मेरी एक नाम-रूप की देह **भी** थी। सोने में मुझे अपनी देह के नाम-रूप की अवचेतना नहीं थी, लेकिन अपनी सुषुप्ति की होश भी नहीं थी, तभी वह स्वप्न प्रकट हुआ। मुझे स्वप्न देखते समय वह स्वप्न नहीं लगा, क्योंकि मुझे अपनी सुषुप्ति की होश नहीं थी।

मैं, स्वप्न में एक से अनेक हुआ। अनेकों में 'मैं' एक ही था और वस्तुतः मैं न एक था, न अनेक था। क्योंकि उस स्वप्न जगत का न कुछ शेष है, न अवशेष है। मैं न स्वप्न की वह देह हूँ और न जगत। फिर भी स्वप्न से तथाकथित जाग्रत होकर मैं अपनी एक स्वप्न वाली देह की मानसिकता से प्रभावित हूँ और उस समस्त परिदृश्य का एकमात्र दृष्टा भी मैं ही हूँ। यद्यपि अब मैं स्वप्न वाली देह नहीं हूँ, लेकिन फिर भी उस समस्त स्वप्न जगत की स्मृति केवल मुझे **ही** है, ऐसा क्यों है? इस तथाकथित जागृति में वह निराकार पारब्रह्म परमेश्वर सद्‌गुरु के साकार रूप में प्रकट होकर मेरे भ्रम

का निवारण करता है, कि तू अब भी स्वप्न में ही है, तेरा स्वप्न बदल गया, लेकिन सुषुप्ति अब भी वही है। स्वप्न बदलने से तेरी देह सहित जगत बदल गया, लेकिन तू अब भी सोया हुआ है। पहले स्वप्न को देखते समय तुझे अपनी सुषुप्ति का ज्ञान नहीं था, इसलिए वह स्वप्न नहीं लग रहा था। अब तुझे यह भी स्वप्न नहीं लग रहा, क्योंकि तुझे अब भी अपनी सुषुप्ति का ज्ञान नहीं है। तेरी देह सहित जगत रूपान्तरित हुआ है, लेकिन तू वही है, इसलिए तुझे पहले स्वप्न की यथावत् स्मृति है। पहले स्वप्न वाली देह के साथ जो-जो घटित हुआ, उसी मानसिकता से तू प्रभावित है। उस स्वप्न की ही भाँति अब तू दूसरे स्वप्न में जागा हुआ है। नींद का तुझे अभी भी ज्ञान नहीं है। सद्गुरु युगों-युगान्तरों से मोह अथवा अज्ञान की निद्रा में सुषुप्त जीव बने जीवात्मा से कहता है, कि यद्यपि अब तू दूसरे स्वप्न की दूसरी देह में है, लेकिन पहले स्वप्न की देह के सुख-दुःखों से प्रभावित है। तू सद्गुरु के पास बैठा है, मैं तुझे जगा दूँगा।

ईश्वर ने तुझे ऐसी मानव-देह दी है, जो समस्त प्राणी-जगत में सृष्टि शुरू होने से आज तक और आगे आने वाले समय में भी न किसी को दी थी, न दी है और न देगा। होश सम्भालने पर जो कुछ भी तू कर-करा रहा है, वह हो रहा है, (जैसे तेरी होश से पहले हो रहा था) और जो हो रहा है, वह हो चुका है। तू जो भी कर, पा, खो रहा है अथवा जो तेरे लिए हो रहा है, एक दिन वह सब कुछ छूट जाता है और तुझे छोड़ना ही पड़ता है। होश सम्भालने पर तुझे इस बात की होश आ जाए, कि जब तेरी नाम-रूप की अवचेतना का लोप (सुषुप्तावस्था, मूर्च्छावस्था, मृतकावस्था आदि) हो जाता है, तो देह सहित जगत लुप्त हो जाता है। जो भी जगत प्रकट होता है, वह लुप्त अवश्य होता है। पुनः जो प्रकट होता है, वह वो नहीं होता जो लुप्त होता है। पुनः प्रकट होने वाला देह सहित जगत पहले वाला इसलिए नहीं होता, क्योंकि पुनः नाम-रूप की अवचेतना में होते हुए भी तू वह देह नहीं होता, जो लुप्त हुई थी। यह तेरी मानव-देह का अति रहस्यमय सद् है, कि यह पल-पल परिवर्तित होती है। हर परिवर्तन स्वयं में असद् है, लेकिन

परिवर्तनशीलता तेरी देह का सद् है।

सद्गुरु बताता है, कि तेरी हर मानसिकता में नई व्यष्टि देह सहित जगत तेरे लिए प्रकट होता है। सोते समय तेरी देह व जगत जैसा होता है, सुषुप्तावस्था में देखे गए स्वप्न में बिल्कुल पृथक् होता है और सोकर उठने पर फिर बदला हुआ होता है। रात में सोते समय मंगलवार 7 जनवरी थी, बारिश हो रही थी, तो स्वप्न में देश-काल स्थिति तेरी देह सहित जगत की बिल्कुल पृथक् होती है और उठते समय बुद्धवार 8 जनवरी होगी एवं देह सहित जगत वह नहीं होगा, जो सोते समय था। तेरे भाव-विचार बदले हुए होंगे। मौसम एवं जगत की विभिन्न विधाएँ परिवर्तित होंगी। तुझसे अज्ञानवश बहुत बड़ी त्रुटि हो गई, कि तूने स्वयं को वही देह मान लिया। मैं सोया था, अब उठ गया हूँ और रात्रि में मैंने स्वप्न देखा। जगत प्रकट होता है और लुप्त होता है। तूने कुछ नहीं किया। यह प्रकाट्य और लोप तेरे हाथ में न था, न है और न हो सकता है। तेरी देह सहित जगत जो लुप्त हुआ, वह प्रकट नहीं होगा और जो प्रकट होगा वह लुप्त हो जाएगा। सद्गुरु मुझे स्वप्नवत् जगत के सद् से अवगत कराता है।

सपने में ज्ञान हो जाए, कि यह सपना है, तो **'मैं'** (जीवात्मा) देह सहित जगत की सभी विधाओं से अतीत होते हुए प्रत्येक का आनन्द लूँगा। मैं सुषुप्ति में एक ही था और निराकार था, क्योंकि मैं नाम-रूप की देह सहित जगत की अवचेतना में नहीं था। मैं साकार देह की Consciousness में न आता, तो मेरी देह सहित स्वप्न-जगत प्रकट न होता। निराकार में **मैं** (जीवात्मा) **ही** था और स्वप्न-जगत में **'मैं'** (देह) **भी** था। एक **मैं** हूँ, तो **मैं** (जीवात्मा) निराकार हूँ और अनेक **मैं** हूँ, तो **मैं** (जीव) साकार हूँ। मेरी एक साकार देह सोई, तो उस देह सहित जगत लीन हुआ और मैं स्वयं में निराकार हुआ। उस निराकार से मैं असंख्य देहों के साथ एक साकार देह सहित जगत में प्रकट हुआ। वह प्रकाट्य मेरे हाथ में नहीं था। यही **'मैं'** और मेरा जगत है। एक निराकार मानस से जगत मेरी देह सहित प्रकट होता है और उसी में लीन हो जाता है।

साकार स्वप्न जगत में मेरी देह जो भी करती है, उसका कारण व कर्ता मैं नहीं हूँ। यद्यपि स्वप्न में मैंने किया, क्योंकि मुझे अपनी सुषुप्ति का ज्ञान न होने के कारण यह ज्ञान नहीं था, कि यह स्वप्न है। लेकिन अब तथाकथित जाग्रत होकर मैं जान जाता हूँ, कि सब कुछ स्वतः हुआ। वह सब ऐसा ही होना था। सद्‌गुरु मुझे जाग्रत करते हुए कहते हैं, कि यदि तुझे यह ज्ञान होता, कि यह स्वप्न है, तो तू उन कृत्यों का कर्ता और कारण कभी नहीं बनता। तू **कर्ता** नहीं होता, इसीलिए **भरता** नहीं होता। उस जगत के सुखों-दुःखों दोनों का आनन्द लेता, कि सपना ही तो है। अब भी तू उसी तरह स्वप्न में उठा हुआ है। इसीलिए पहले अपनी नींद देख। तू आँखें बंद करके सोया था और सपना आँखें खोल कर देख रहा था। स्वप्न में तेरी आँखें इसलिए खुली थीं, क्योंकि तेरी आँखें बंद थीं और तुझे अपनी बंद आँखों का ज्ञान नहीं था। अब तू फिर आँखें बंद करके उन बंद आँखों का ज्ञान कर, लेकिन सोना नहीं। आँखें बंद करके तू उस मानसिक स्थिति को देख, उसकी अनुभूति कर, जिसमें तू अपनी देह के नाम-रूप की और तदनुसार जगत की अवचेतना में न हो। अब तू अपनी Consciousness में देख ले, कि तुझे अपनी देह सहित जगत के नाम-रूपों की Consciousness नहीं है। यही समाधि है।

योगी की निद्रा समाधि होती है। वह समाधि में सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड में विचरण करता है, हर स्थिति का आनन्द लेता है। हमारे मनीषियों ने 21 प्रकार की समाधियाँ बताई हैं—भाव समाधि, ज्ञान समाधि, प्राणायाम समाधि, ध्यान समाधि आदि-आदि। किसी भी प्रकार से और सब प्रकार से अपने सद्‌गुरु अथवा अपने इष्ट से जुड़कर अपनी सुध-बुध खो देना **'समाधि'** है। हम हर काल, स्थान, स्थिति की देह सहित जगत की सभी विधाओं से परे हो जाएँ, यही हमारी निद्रा की मानसिक स्थिति है, जो इष्ट-कृपा से समाधि में अनुभव की जा सकती है। समाधि में हम अपनी नाम-रूप की देह व जगत की Non-Consciousness के बारे में Conscious हो जाते हैं, हमें ज्ञान हो जाता है, कि हमें अपना और जगत का कोई ज्ञान नहीं है, जबकि सुषुप्ति में

हमें अपनी देह सहित जगत का कोई ज्ञान न होने का ज्ञान नहीं होता।

जब मुझे समाधि का अनुभव हो जाएगा, उसके बाद मैं आँखें खोलकर जगत को देखूँगा, जो मेरे परम पिता परमात्मा ने मेरे लिए रचा है, तो उसका न मैं कारण बनूँगा और न कर्ता। मुझे ज्ञान हो जाएगा, कि मेरी देह सहित यह जगत सपना है, क्योंकि मैंने निद्रा देख ली। To visualise your sleep is Samadhi वह स्थिति, जिसमें मैं आँखें मूँद कर अपना नाम, पद, दौलत, यश, ज्ञान, सौन्दर्य, शक्ति आदि सब कुछ भूल जाऊँ, उसे समाधि कहते हैं। समाधि के अनुभव के बाद जब मैं आँखें खोलकर जगत को देखता हूँ, तो जगत स्वप्नवत् प्रतीत होता है। **'मैं'** निराकार सत्ता से अनेक नाम-रूपों में प्रकट हुआ, जिसमें एक नाम-रूप मेरा भी था। यह प्रकाट्य मेरे हाथ में नहीं था। इसका कारण परम पिता परमात्मा था। इस प्रकाट्य में कोई पापी-पुण्यी, साधु-दुष्ट आदि उसकी इच्छा से बने। जब मुझे यह स्मृति हो जाएगी, तो इसे **'स्मृति भगवती'** कहते हैं। जब मैंने स्वयं को जगत से भिन्न मानते हुए जगत को देखा, तो **'स्मृति भ्रमवती'** थी। इस Realisation के लिए **'गुरु-कृपा'** अपेक्षित है। प्रभु की माया ही महतारी बनकर मायापति के सम्मुख कर देती है। हम अपने नाम-रूप से तद्रूप होकर अपने विशुद्ध स्वरूप से वंचित हो गए और नाम-रूप में इष्ट या सद्गुरु के साथ जुड़कर उस स्वरूप की अनुभूति कर सकते हैं।

जहाँ हम नाम-रूप में कर्ता और कारण बनेंगे, तो संसार हममें रहेगा और वह स्मृति **'भ्रमवती'** होगी। जहाँ प्रभु को कर्ता व कारण मान लेंगे, तो स्मृति **'भगवती'** होगी और हम संसार का आनन्द लेंगे।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(13 अगस्त 2007)

चेतना-अवचेतना

सारा ब्रह्माण्ड उस सच्चिदानंद का भृकुटि-विलास है। **समर्थ स्थिर होता है, क्योंकि उसे चलने की आवश्यकता नहीं है और असमर्थ भी स्थिर होता है, क्योंकि उसमें चलने की शक्ति नहीं होती।** जब हम अपनी देह के नाम-रूप की अवचेतना में होते हैं, तो भी हमारी चेतना लुप्त नहीं होती। अवचेतना का कारण चेतना है। Consciousness would only stay if there is masked or hidden awareness. इसका अर्थ यह है, कि अवचेतना (Consciousness) चेतना (Awareness) की ओर ही संकेत करती है। यदि अवचेतना, चेतना की याद दिलाती है, तो अवचेतना के माध्यम से चेतनता का आच्छादन हटा कर अनाच्छादित विशुद्ध चेतनता की अनुभूति हो सकती है।

बहुत दूर कहीं धुआँ नज़र आ रहा है, तो वहाँ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अग्नि अवश्य होगी। वहाँ लपटें प्रकट या अप्रकट रूप से हो सकती हैं, लेकिन अग्नि सुलगती हुई अवश्य होगी, बुझी हुई नहीं होगी। जब **'मैं'** (जीवात्मा) स्वयं को देह के नाम-रूप में पहचानता हूँ, तो मेरी अवचेतना भी अति संकुचित व संकीर्ण हो जाती है। वहाँ चेतना रूपी अग्नि का अवचेतना रूपी धुँआ भी सीमित हो जाता है। जब तक सृष्टि रहेगी, देह के रूप हम सब मानव प्रत्येक प्रकार से एक दूसरे से भिन्न थे, भिन्न हैं और भिन्न रहेंगे। लेकिन हम सबकी **'मैं'** एक ही है, इसमें कभी न कोई अन्तर था, न है और न रहेगा। साथ ही **'मैं'** के लिए किसी का, किसी से झगड़ा भी नहीं है।

थोड़ी देर के लिए हम चेतना को भूलकर अपनी अवचेतना पर एकाग्र

करें। क्योंकि अनादि काल से जन्मों-जन्मान्तरों से हम जीव-कोटि में ही भटक रहे हैं। भ्रमण, भटकन क्यों बन गया? **'मैं'** (जीवात्मा) जीव बनकर शाह नहीं रहा, तो शाहों की फितरत एवं रंग-ढंग तो हो ! कोई छत्रपति सम्राट किसी कारणवश राज-पाट खो बैठे, तो भी उसकी आदतें, विचार, सोच और चाहतें आदि शाही ही रहती हैं। हुकूमत जाने से फितरत नहीं जाती और हुकूमत आने से भी फितरत नहीं जाती।

जीवात्मा ईश्वर का इकलौता मानस-पुत्र है। वह ईश्वर की ही भाँति सच्चिदानंद एवं छः विभूतियों से विभूषित है। जब जीवात्मा नाम-रूप की देह की अवचेतना में आता है, तो **'मैं'** शब्द में उसका प्रकाट्य होता है। उसकी चेतना छिप एवं ढक जाती है, लेकिन लुप्त नहीं होती। यदि कहीं धुँआ दिखाई दे रहा है, तो स्पष्ट अर्थ है, कि वहाँ प्रकट अथवा अप्रकट अग्नि अवश्य होगी। धुआँ, अग्नि की सक्रियता से ही प्रकट होता है। धुआँ यदि अग्नि की तरह गर्म नहीं होता, तो भी कभी ठण्डा नहीं होता, क्योंकि उसका प्रकाट्य अग्नि से हुआ है। धुएँ का तापमान हवा के तापमान से अधिक ही होगा। आग का पहला गुण गर्मी है तथा दूसरा गुण है, कि अग्नि ऊर्ध्वगमन करती है। धुआँ भी कभी नीचे की ओर नहीं जाता, हमेशा ऊपर की ओर ही जाता है। साथ ही अग्नि की तरह धुआँ कभी स्थिर नहीं होता, वह हवा के रुख के साथ अपना रुख बदलता रहता है। अग्नि, धुएँ के मध्य अन्तर्हित है, इसलिए अग्नि के तीनों गुण उसमें भी होते हैं। चेतना के अवचेतना में उतरने की यह बहुत ही सरल व्याख्या है। इसी प्रकार **'मैं'** (जीवात्मा) के अवचेतना में उतरने पर भी उसमें चेतना (ईश्वर) के सारे गुण छिपे रहते हैं। इसलिए अवचेतना छिपी चेतना की ओर ही इंगित करती है।

अध्यात्म सकारात्मक दृष्टिकोण वालों का मार्ग है। **मैं** चेतना है और विभिन्न नाम-रूपों में हमारी देह सहित जगत अवचेतना में होता है। हम सबकी **'मैं'** एक है, लेकिन सबने अपनी देह के एक नाम-रूप के साथ **'मैं'** का प्रयोग किया और जो जगत उस देह के साथ प्रकट हुआ, उसे अपने से पृथक् मान लिया। इस प्रकार समष्टिगत **'मैं'** को एक नाम-रूप की व्यष्टि

देह तक सीमित कर दिया। यह **'मैं'** का Sharp and sudden demotion था। मैंने यह नहीं सोचा, कि मेरी अवचेतना में देह के रूप में मात्र मेरा एक नाम-रूप ही प्रकट नहीं हुआ, बल्कि उस देह सहित समस्त जगत प्रकट हुआ, तो अवचेतना में जगत मुझसे भिन्न कैसे हुआ?

'मैं' नाम-रूप की अवचेतना में कभी अकेला नहीं आता, मेरी देह के साथ एक जगत भी होता है। उदाहरणतः, मैं सो कर उठा, तो चिड़ियाँ चहचहा रही थीं, सूर्य निकलने को था, शीतल, मन्द एवं सुगन्धित हवा बह रही थी। इस प्रकार मेरे नाम-रूप की देह की अवचेतना में आते ही उस देह सहित जगत प्रकट हुआ। अपनी देह के नाम-रूप की अवचेतना में आकर ही मैं पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश की उस समय की स्थितियों एवं विधाओं, अपने सपनों, कल्पनाओं, चाहतों, चहेतियों, देश-काल, धर्म-कर्म, कर्तव्य, सम्बन्ध, मित्र-शत्रु, सुख-दुःख, आदि जो भी मेरे ख्याल में रहता है, उसके बारे में Conscious होता हूँ। उस समय के भूत और भविष्य के साथ उस भूत और भविष्य के वर्तमान, भूत और भविष्य की अवचेतना भी मेरे अपने नाम-रूप की अवचेतना के साथ ही मेरा उस समय का जगत बन कर प्रकट होती है। उस समय जो भी ख्याल मुझे आते हैं, रात के सपने यदि मुझे याद हैं, तो वे भी मेरे उस समय के जगत में रहते हैं।

आच्छादित चेतना ही नाम-रूप की अवचेतना है। मेरी अपनी एक देह के नाम-रूप की अवचेतना में दुनिया में असंख्य विभिन्न नाम-रूप धारी लोग हैं, मेरी देह सहित उन सबमें जीवात्मा का **'मैं'** शब्द रूप में प्राकट्य हुआ। **'मैं'** (जीवात्मा) ने उस देह के साथ स्वयं को पहचाना, कि मैं अमुक-अमुक हूँ। मेरे अतिरिक्त विभिन्न नाम-रूपों में अन्य लोग जो मेरी वही **'मैं'** लगाने वाले थे (जिसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं थी) उन्हें अपने से पृथक् मान लिया। दुनिया में असंख्य पृथक्-पृथक् नामधारी लोग हैं, उनमें मेरे एक नाम-रूप की देह की हैसियत ही क्या है! मैंने यह नहीं सोचा, कि सब एक ही **'मैं'** लगा रहे हैं। तो हम सब में समानता अवश्य होगी। मैंने असमानताएँ ग्रहण कर लीं और समस्त जगत अपने से पृथक् मान लिया।

मेरी **'मैं'** अनेक हैं और व्यक्तिगत देह रूप से **'मैं'** एक है। व्यक्ति के रूप में 'मैं' दूसरों से हर तरह से बिल्कुल पृथक् हूँ, लेकिन सबकी **'मैं'** एक ही है। जब **'मैं'** (जीवात्मा) ने अवचेतना में देह को पहचाना, तो मैं यह भूल गया, कि मेरी अवचेतना की वजह से ही मेरा जगत है। यह मेरी अवचेतना की विराट शक्ति है। मैने अपनी अवचेतना की शक्ति का स्वयं को सबसे अलग करने में दुरुपयोग किया।मैं अमुक-अमुक हूँ, यह मेरा घर, परिवार, देश, धर्म, आर्थिक स्तर, सामाजिक रुतबा आदि-आदि है। इस प्रकार मेरी **'मैं'** जो अवचेतना में भी सर्वव्यापी थी, एक छोटी सी सीमा में बँधी रह गई। इस विराट अवचेतना को मैं सिद्ध कर लूँ, तो चेतना की अनुभूति कर लूँगा। असद् की सिद्धि **'सद्'** की प्राप्ति है। **अवचेतना का 'सद्' चेतना है।**

सद्गुरु चेतना से पहले अवचेतना का सही उपयोग बताता है। वह कहता है, कि जब तेरी आँख खुली, तूने स्वयं को नाम-रूप से पहचाना, तो उसी अवचेतना में तेरी देह सहित जगत प्रकट हुआ। यद्यपि यह हम नहीं कहते, कि मैंने सोकर उठने पर स्वयं को नाम-रूप से पहचाना तो देखा, कि पत्नी बहुत गुस्से में है। हम यही कहते हैं, कि मैं सो कर उठा तो पत्नी गुस्से में थी, बच्चे स्कूल जा चुके थे। यह बात मेरे पल्ले नहीं पड़ी, कि मैं नाम-रूप में अवचेतना में आया हूँ और इस अवचेतना में भी **'मैं'** जगत सहित हूँ। जगत मुझसे भिन्न नहीं है। सद्गुरु कहते हैं, कि अब तू यह समझ कर अपनी अवचेतना की शक्ति का सदुपयोग कर। तेरी अपनी देह की नाम-रूप की अवचेतना में आते ही तुरन्त वहीं तेरी देह सहित जगत प्रकट हुआ। (The world has erupted, spruted and manifested.) उस वक्त जैसा तू था, वैसा तेरा जगत प्रकट हुआ। ***''जो ब्रह्माण्डे सो पिण्डे''*** Seer is the scene. एक ही जगत सबके लिए पृथक्-पृथक् होता है, (Your individuality is the direct representation of your total totality inclusive of your body's name and form).

अवचेतना वस्तुतः अवर चेतना या Deputy चेतना है। सद्गुरु शिष्य को जाग्रत करते हुए कहता है, कि तूने स्वयं को अवचेतना में एक देह मान

लिया। जबकि अवचेतना में तेरे लिए उस एक देह सहित जगत प्रकट हुआ है और उस समय जगत वैसा ही था, जैसा उस समय तू था। उस समय तेरी देह (अर्थात् नाम-रूप की अवचेतना) तेरी एक नाम-रूप की देह सहित जगत की अवचेतना का प्रतिनिधित्व करती है। तू अपनी देह देख लेता, तो बाहर के जगत का अनुमान लगा लेता, कि आज का दिन कैसा निकलना है। तेरी अवचेतना में तेरी देह सहित जगत प्रकट होता है, लेकिन प्राकट्य तेरे हाथ में नहीं है।

एक विशेष मानसिक विधा में हम जगत को देखते हैं। हम समझते हैं, कि जगत हमें प्रभावित करता है। वस्तुतः सद् यह है, कि हमारी मानसिकता द्वारा जगत प्रभावित होता है। यह अवचेतना का सदुपयोग है। हमारा अपना मूड खराब होता है, तो जगत में सब कुछ हमें गलत नज़र आता है। हम मौसम, घर, परिवार आदि सबमें कमियाँ निकालते हुए बिना बात भी तनावित होते रहते हैं। यह माया की विधाएँ हैं, जिन्हें 84 लाख योनियाँ कहते हैं। लिंग एक है, यह 84 लाख मायिक विधाएँ पहले से Recorded हैं।

यह जगत इन मायिक विधाओं का बाह्य प्राकट्य है, जो पहले से ही अंकित रहती हैं। ये सब विधाएँ अवचेतना में हैं। हमारा सद्गुरु, इष्ट हमारी चेतना है। अवचेतना में भी बहुत विस्तार है, उस समय उसका सिमरन करते हुए प्रार्थना कर ले, कि ''प्रभु मेरी देह सहित जगत के कारण आप हैं, इसे मुझे दिखाने वाले आप हैं, आप मुझे आनन्द में दिखाइए।'' इस सद् प्रार्थना से उसकी कृपा से हम अवचेतना में प्रकट प्रत्येक मायिक विधा का भरपूर आनन्द लेंगे, क्योंकि अवचेतना का आधार चेतना है।

बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(15 अगस्त 2007)

स्वाहा

शिव कालातीत, देशातीत, सम्बन्धातीत, मायातीत, लिंगातीत, धर्मातीत, कर्तव्यातीत, कर्मातीत और ब्रह्माण्डातीत है। शिव स्वयं में अतिशक्ति विरक्ति का पुंज है। शिव अपनी उस विरक्ति शक्ति से प्रकट पंच-प्राणों (प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान) की महाशक्ति से स्वयं में, स्वतः, स्वान्तः सुखाय क्रीड़ा करता है। इस क्रीड़ा में उन अदृश्य पंच-प्राणों का पंच-महाभूतों (अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल एवं आकाश) के रूप में प्राकाट्य होता है। ये पंच-महाभूत दृश्यमान हैं और स्वयं में सहज जड़ हैं। चेतन से सहज जड़ तत्त्वों का प्रकाट्य हुआ, जिन्हें न स्वयं का ज्ञान है और न ही ईश्वर का ज्ञान है। महाचमत्कार है, कि पाँचों सहज जड़ महाभूतों में सहज गति होती है और उन्हें अपने में ही होती इस गति का कोई ज्ञान नहीं है, जो उनसे करवाई जा रही है। उन्हें कर्तापन का कोई अभिमान नहीं है, क्योंकि वे सहज जड़ हैं।

पंच-महाभूतों में हो रही गतियों के पाँच प्रकार हैं और पाँच विशेषताएँ हैं। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश की गतियाँ दशानन हैं—निरन्तर, चिरन्तन, अविरल, अकाट्य, अबाध, अतिसंक्षिप्त (Precise) अतिसारगर्भित (Thematic), अतिविशिष्ट (Specific), अतिगुणात्मक (Qualitative) और महा उद्देश्यपूर्ण (Purposeful). इनमें भूकम्प, सुनामी, आँधी-तूफान, चन्द्र व सूर्य ग्रहण आदि विशिष्ट ईश्वरीय निर्देशों के अनुसार ही आते हैं। प्रकृति में सतत् होते परिवर्तनों में विशेष रहस्य होता है। उदाहरणतः पतझड़ से वसन्त ऋतु आने में पुराने पत्ते गिरेंगे, नई कोंपले व नए अंकुर फूटेंगे। पंच-महाभूतों

की गतियाँ निरन्तर, चिरन्तन, अविरल, अबाध एवं अकाट्य हैं, लेकिन पंच-महाभूतों से निर्मित मानव-देह धारण करके भी हमारी गतियाँ अस्त-व्यस्त हैं। शेष प्राणी (जलचर, थलचर, नभचर) ईश्वरीय प्रकृति के निर्देशानुसार चलते हैं। मात्र मानव ही ऐसा प्राणी है, जो प्रकृति का बाध करता है। इस सबके बावजूद ये सहज जड़ पाँचों महाभूत ईश्वरीय संकेतों एवं आज्ञानुसार सतत् दस रूपों में गतिमान हैं।

हर गति के लिए शक्ति चाहिए। इतनी विशाल पृथ्वी को जो शक्ति घुमा रही है, वह शक्ति प्रचण्डतम् होनी चाहिए। मानव होने के नाते जिज्ञासा होती है, कि इनकी गतियों के पीछे शक्ति कौन सी है? हमारे वैज्ञानिक, भूगोल विशेषज्ञों एवं खगोल वेत्ताओं ने यह जान लिया, कि इनमें विभिन्न प्रकार की गतियाँ होती हैं। पूर्णिमा को सागर में ज्वार-भाटा आता है। चन्द्रमा का समुद्र की लहरों से विशेष सम्बन्ध है। वायु में साइक्लोन आदि आते हैं। आकाश के ग्रह-नक्षत्र अपनी-अपनी कक्षाओं में घूमते हैं। ज़रा भी इधर-उधर हो जाएँ, तो पृथ्वी रसातल में चली जाए। जल की गति नीचे की ओर होती है, अग्नि ऊर्ध्वगति करती है। परन्तु ये गतियाँ कैसे और किसके द्वारा होती हैं, यह मानव अपनी बुद्धि से जान ही नहीं सका। इसलिए उसका जिक्र तक नहीं किया गया।

जो हो रहा है, वह हम देख रहे हैं, परन्तु कार्य, कारण व सम्बन्ध हम नहीं जान सकते। इन दशानन गतियों की शक्ति भी इनके समान ही अविरल, चिरन्तन, निरन्तर, अबाध एवं अकाट्य होनी चाहिए। वह शक्ति भी Specific, Precise, Purposeful, Qualitative and Thematic होनी चाहिए। जो सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड को युगों-युगान्तरों से सतत् बिना रुके चला रही है, वह शक्ति स्वयं में अति-अति शक्ति होनी चाहिए। वस्तुतः उस शक्ति का नाम **'स्वाहा'** है।

शिव-शक्ति-क्रीड़ा स्वयं में महायज्ञ है। शिव को यज्ञपुरुष कहा गया है। यज्ञ का अधिष्ठाता, यज्ञ और यज्ञ का फल शिव है। विशिष्टतम् यज्ञ का विशुद्धतम् स्वरूप (जिसमें कोई आडम्बर नहीं है) शिव-शक्ति-क्रीड़ा है।

शिव की अतिशक्ति विरक्ति से प्रस्फुटित पंच-प्राणों की महाशक्ति की स्वतः, स्वान्तःसुखाय और स्वयं होती क्रीड़ा के फलस्वरूप जो **'स्वाहा की ध्वनि'** उत्पन्न हुई, वह इन पंच-महाभूतों में हो रही दशानन, अदृश्य व आनन्दमय गतियों का कारण है। शिव-शक्ति-क्रीड़ा रूप यज्ञ में अतिशक्ति विरक्ति से पंच-प्राणों की महाशक्ति प्रकट हुई, उनमें परस्पर क्रीड़ा हुई।

यह अतिशक्ति ही प्राण-शक्ति है, जिसका नाम **'स्वाहा'** है। यह शक्ति अदृश्य है और पंच-महाभूत प्रकट होते हैं। यही सर्वोपरि है। अतः स्वयं, स्वान्तःसुखाय और स्वतः होने वाली शिव-शक्ति-क्रीड़ा के फलस्वरूप **'स्वाहा'** प्रकट हुआ। इस अतिशक्ति **'स्वाहा'** का पूर्ण अधिपत्य पंच-प्राणों की महाशक्ति के प्रकाट्य (पंच-महाभूतों) पर है, क्योंकि यही इन सहज जड़ पंच-महाभूतों की गति की शक्ति है। सहज जड़ पंच-महाभूतों में सहज होती पाँच प्रकार की (अविरल, निरन्तर, चिरन्तन, अकाट्य व अबाध) गतियाँ पाँच विशेषताओं (Specific, Precise, Purposeful, Qualitative and Thematic) से युक्त हैं। क्योंकि इन गतियों के पीछे की अदृश्य शक्ति **'स्वाहा'** में भी वही पाँच विशिष्टताएँ हैं और उसके भी वही पाँच प्रकार हैं। स्वाहा शक्ति अपनी विशिष्टताओं और प्रकारों को अपनी शक्ति द्वारा पंच-महाभूतों में प्रकट करती है।

शिव में, स्वयं में यह समस्त महायज्ञ प्रकरण स्वतः, स्वान्तःसुखाय बिना किसी रुकावट एवं हस्तक्षेप के अविरल, अबाध रूप से सतत् चलता रहता है। **पंच-महाभूतों की महासृष्टि में समस्त चमक विरक्ति की है।** पंच-महाभूतों की समस्त गतियाँ, निर्माण (पंच-महाभूतों का संगम) पालन एवं संहार विरक्ति शक्ति के कारण हैं। यह विरक्ति शक्ति **'स्वाहा'** अदृश्य भस्मी के रूप में पंच-महाभूतों के कण-कण में समाहित रहती है। अन्ततः संहार के बाद जब पंच-महाभूतों में संगमित कोई भी प्राणी पंच-महाभूतों में विलीन हो जाता है, तो वह अदृश्य भस्मी प्रकट हो जाती है।

मानव-देह में जब हम होश सम्भालते हैं, तो होश से विचार करने पर हम यह पाते हैं, कि हमारे हाथ में **'कुछ नहीं'** है। यह बुद्धि प्रभु ने मानव को

ही दी है, इससे वह जान सकता है, कि उसके हाथ में कुछ नहीं है। सद्‌गुरु-कृपा से विवेकशील मानव जान जाता है और मान जाता है, कि "प्रभु मेरे हाथ में कुछ नहीं है और मेरा कुछ नहीं है।" समष्टि रूप में और व्यष्टि (व्यक्ति) रूप में उत्कृष्टतम एवं विलक्षणतम् मानव-देह मुझे मिली। मानव-देह पाकर कोई व्यक्ति कितना भी दुःखी, त्रसित हो, उससे यदि कहा जाए, कि चलो तुम्हारे दुःखों का अन्त हो जाएगा, तुम्हें कुत्ता, घोड़ा, गधा, बैल, सूअर, नाली का कीड़ा, कोई पक्षी या समुद्री जलचर जो तुम चाहो, बना देते हैं। वह प्राण त्यागना पसन्द करेगा, लेकिन मानव-देह को छोड़कर कोई भी अन्य देह लेना पसन्द नहीं करेगा। कितना भी दुःखी व्यक्ति हो, वह आत्महत्या करना पसन्द करेगा, लेकिन समस्त प्राणी जगत में कोई भी अन्य देह नहीं लेगा।

इस मानव-देह के सम्पूर्ण जीवन के पाँच आयामों का सविस्तार वर्णन मैंने **'सो हं'** शीर्षक प्रवचन में किया है। जन्म से पहले प्रारम्भारम्भ (माँ के गर्भ में भ्रूण रूप में गर्भाधान और पंच-महाभूतों के विशिष्टतम् संगम से मानव-देह का निर्माण) और मृत्यु के बाद अन्तान्त (पंच-महाभूतों से संगमित देह का चिता पर लिटाने के बाद मुखाग्नि देने पर पंच-महाभूतों में विलय और भस्मी का प्रकाटय) पूर्णतः मात्र ईश्वर के हाथ में है। सम्पूर्ण जीवन के पाँच आयामों में से मध्य वाले आयाम में होश आने पर मैं स्पष्ट देख सकता हूँ, कि पहले दो और अन्तिम दो आयामों में मेरे हाथ में कुछ नहीं होता, क्योंकि मुझे होश ही नहीं होती। तो **बीच में होश वाला समय मुझे मात्र यही जानने और मानने के लिए मिलता है, ताकि मैं स्पष्ट देख लूँ, कि होश के दौरान भी मेरे हाथ में कुछ नहीं है।**

हर व्यक्ति को (जो थोड़ी बहुत होश में है) ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से यह ज्ञान है, कि उसे मिली मानव-देह सर्वोत्कृष्ट, अद्‌भुत एवं अति चमत्कारिक है। ऐसी देह, साधारण मानव-देह रूप में और विशिष्ट व्यक्ति रूप में समस्त प्राणी जगत में किसी की न थी, न है और न होगी। दूसरे यह देह अवधि से बँधी है। जिसका काल कालेश्वर के हाथ में है। वह जब चाहे

इसे छीन सकता है तथा तीसरे जीवन-पर्यन्त मानव कुछ करे या न करे, कुछ बने या न बने और कुछ हो, न हो उसकी देह की भस्मी अवश्य बनेगी। ईश्वर ने बीच की मायिक प्राप्तियों के विस्तार का कुछ लिया ही नहीं, क्योंकि वह तो एक दिन छूटेगा ही अथवा हम सब कुछ छोड़कर चले जाएँगे। ईश्वर ने सबको स्पष्ट दिखा दिया, कि जीवन में चाहे कोई छत्रपति सम्राट बन जाए या दर-दर का भिखारी रहे, उसके समस्त **Turnover का Overturn डेढ़ दो किलो भस्मी ही है।** यह शिव का साम्यवाद है।

मानव-देह के साथ तद्‌रूपता में जीव बना जीवात्मा प्रभु से वार्तालाप करता है, कि ''प्रभु ! मेरे हाथ में कुछ नहीं है और जीवन-पर्यन्त मेरे समस्त **Turnover का Overturn 'कुछ नहीं''** (भस्मी) ही है। यह भस्मी आपने मेरी देह के बाद प्रकट की है। मेरा **'कुछ नहीं'** है तो इसका अर्थ है, कि मेरी देह की भस्मी **'मेरी'** होनी चाहिए। प्रभु सब कुछ तेरा है, तुझे अर्पण, तू मात्र मेरा **'कुछ नहीं'** (भस्मी) मुझे दे दे। मेरा ये जो **'कुछ नहीं'** है, वह भी मुझे, तू ही दे सकता है। तूने मेरी भस्मी को मेरी देह से बाहर रखा है। हे महाबली ! हे मेरे इष्ट ! मेरे इस **'कुछ नहीं'** (भस्मी) पर भी तूने अपना पूरा हक रखा हुआ है, वह भी तेरे हाथ में है। तू अपना सब कुछ ले ले और मेरी भस्मी को मेरी देह के रहते जीवन-काल में मुझे दे दे। आज तक मैं तुमसे बहुत कुछ माँगता रहा, आज तुझसे अपना **'कुछ नहीं'** माँगता हूँ, जो मेरा है। मैं तेरे इस 'सब कुछ' (देह सहित जगत की विविध मायिक प्राप्तियों) में इसलिए फँसा हुआ हूँ, क्योंकि मेरा **'कुछ नहीं'** मेरे पास नहीं है। मैं तेरे इस सब कुछ में अन्धा हो गया। मुझे उस सब कुछ का भोग नहीं मिलता, क्योंकि मेरे पास मेरा **'कुछ नहीं'** (विरक्ति) नहीं है। यह भस्मी ही तो तुम्हारी विरक्ति शक्ति का प्राकाट्‌य है। जब मैं नहीं रहूँगा, तब मैंने अपनी खाक क्या करनी है !'' वह **'कुछ नहीं'** ही **'सब कुछ'** है। न केवल वह **'सब कुछ'** है, बल्कि सब कुछ का मूल स्रोत, वही है। सब कुछ का भोग और आनन्द वह **'कुछ नहीं'** है।

हम सब साकार हैं और जितना चराचर मायिक जगत है, वह भी साकार है। साकार का आकार है, लेकिन **'अधिकार'** निराकार है।

आजीवन हम अपने आकार को बढ़ाने में लगे रहते हैं। धन, सम्पदा, पद-प्रतिष्ठा, सौन्दर्य, ज्ञान, प्रौपर्टी, सम्बन्ध, डिग्रियाँ, नाम-यश, जन-बल और हर प्रकार से शक्तियों को बढ़ाने में ही अपने होने तथा जीवन की सार्थकता मानते हैं। हमने जीवन के अर्थ का समर्पण (अर्थार्पण) नहीं किया। हम जीव-सृष्टि में भटके और अधिकार खो बैठे। प्रभु का हमें मानव-देह देने का विशेष **'अर्थ'** था। इस अर्थ में विशिष्टतम् अर्थ यानि अर्थार्थ यह था, कि देह व जीवन की सुनिश्चित अवधि हमारे लिए अनिश्चित थी, जिसका हमें कोई ज्ञान नहीं था। यदि हम जीवन में अपने अर्थ को समर्पित (अर्थ+अर्पण=अर्थार्पण) कर दें, तो हमें अर्थाधिकार (अर्थ+अधिकार) मिल जाएगा। **अर्थाधिकार वह दैवीय दस्तावेज़ है, जिसकी प्राप्ति के बिना साकार जगत की विभिन्न विधाओं का भोग असम्भव है, यह दैवीय कानून है।** होश सम्भालने पर हमसे सबसे बड़ी भूल यह हुई, कि हमने देह व जीवन का अपना अर्थ लगाना प्रारम्भ कर दिया और हमने जीवन के भोग का अधिकार खो दिया।

सद्गुरु-कृपा से अर्थार्पण (अर्थ+अर्पण) होने पर हमारा अपना अर्थाधिकार भी स्वतः समर्पित हो जाएगा। जब हमारा अपना अर्थाधिकार समर्पित होगा, तो हमें देह सहित जगत के भोग का **'अधिकार'** मिल जाएगा। यदि अर्थार्पण नहीं करेंगे, तो अर्थ पर अधिकार (अर्थाधिकार) अवश्य कर लेंगे। जिसे अर्थाधिकार हो जाएगा उसे अहंकार हो जाएगा। अहंकार सब विकारों का मूल है। एक अर्थाधिकार से जीव अहंकार, ममकार आदि अनेक विकारों में घिर जाता है।

मानव-देह प्राप्त करने पर जो हमें स्वयं-सिद्ध-अधिकार प्राप्त हैं, वे अर्थाधिकार से खो जाते हैं। यदि हम उन्हें Reinstitute, Resume और Regain करना चाहते हैं, तो हमें **'अर्थार्पण'** करना ही होगा, इसके अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं है, कि "प्रभु ! मैं इस देह व जीवन का अर्थ नहीं जानता, इसलिए आपके अर्थार्थ (अर्थ में अर्थ) के सम्मुख मैं अपना **'अर्थ'** अर्पित करता हूँ। तुमने मुझे बहुत उत्कृष्ट मानव-देह दी है, इसमें आपका **'अर्थ'** है और अर्थ

में अर्थ यानि **अर्थार्थ** यह है, कि तुम मुझे कभी भी भस्मी बना सकते हो। मैंने अपनी तुच्छ बुद्धि से इस देह व जीवन का जो भी **'अर्थ'** लगाया है, वह मैं तेरे चरणों में समर्पित करता हूँ।''

चेतन भस्मी ही समस्त ब्रह्माण्ड सहित हमारी पंच-महाभूतों की देह की अदृश्य प्राणशक्ति **'स्वाहा'** है। पाँच सहज जड़ महाभूतों में से अतिशक्ति विरक्ति की प्रतिनिधि अदृश्य भस्मी निकाल दो, तो पृथ्वी, अग्नि, आकाश, जल एवं वायु सबकी गति रुक जाएगी। **'स्वाहा'** में आहूति दी जाती है। विरक्ति ('कुछ नहीं' अथवा भस्मी) की आहूति दी, तो **'स्वाहा'** प्रकट हुआ। **'स्वाहा'**, **'कुछ नहीं'** (भस्मी) का जीवन्त रूप है। यज्ञाग्नि में मन्त्रों की शक्ति **'स्वाहा'** की वजह से है। यज्ञ की गतियाँ और यज्ञ का फल **'स्वाहा'** के कारण है। **'कुछ नहीं'** की इच्छातीत इच्छा रखने से ही व्यक्ति **'शाह'** बन जाता है, क्योंकि तब हमारे स्वयं सिद्ध अधिकार का प्रकाट्य हो जाता है। इस अधिकार में समस्त **'आकार'** छिपे हैं। मानव-देह में हमारा हर श्वास, हृदय की एक-एक धड़कन **'स्वाहा'** हो जाए, तो हमारा जीवन यज्ञ रूप हो जाएगा। हर कृत्य, हर प्राप्ति, हर खोना, हर होना **'स्वाहा'** हो जाए। चेतन भस्मी विरक्ति है :—

''चाह गई चिन्ता गई मनुआ बेपरवाह,
जिसको 'कुछ नहीं' चाहिए वह शाहों का शाह।''

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(28 अगस्त, 2007)

सो हम्

देह का काल, अकाल से बँधा है, इसलिए मानव-देह पाकर होश में आते ही मुझे स्वयं को अकाल पुरुष (कालेश्वर) से जोड़ना होगा, नहीं तो **'मैं'** (जीवात्मा) देह पर देह लेता हुआ, मानव-देह के **'अर्थ'** से निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ में पतित होकर जन्म-दर-जन्म भटकता ही रहूँगा। हर देह परदा बनकर मेरे विशुद्ध जीवात्मा स्वरूप को और अधिक आच्छादित ही करेगी।

हमने अज्ञानवश, देहाध्यासवश देह के काल को अपने समय से बाँध लिया। काल-कवलित देह वस्तुतः स्वतः ही अकाल से बँधी है। वह मेरे अपने कार्यक्रमों के काल से बँध ही नहीं सकती। इसलिए देह की हर योजना, परियोजना, आकांक्षा, महत्त्वाकांक्षा, कल्पना, मान्यता, धारणा, चाहत, सुख-दुःख, लाभ-हानि, यश-अपयश, जन्म-मृत्यु को अकाल से जोड़ना अति आवश्यक है। इसके बिना हम उत्कृष्ट एवं गुणात्मक तो क्या मानव-जीवन की भी कल्पना नहीं कर सकते। We will be arrested, prosicuted and punished by divinity.

प्रभु अकाल हैं और मानव-देह काल-कवलित है। मानव-देह स्वयं में माया है। माया वस्तुतः मायापति की है। जन्मों-जन्मान्तरों में जो अति उत्कृष्ट एवं परम विलक्षण व रहस्यमय मानव-देह प्रभु ने हमें दी, उसमें हम पतित हुए हैं, क्योंकि हमने देह का अर्थ जानना ही नहीं चाहा। मैंने इष्ट-कृपा से आत्मानुभूति के आधार पर प्रारम्भारम्भ से लेकर अन्तान्त तक इस मानव-देह के काल को पाँच विभागों में बाँटा है। हम बुद्धिजीवी अपनी सुविधानुसार मानव-देह का आरम्भ जन्म से और अन्त मृत्यु में मानते हैं।

हमने जन्म से पहले गर्भावास के नौ महीनों के काल को और मृत्योपरान्त देह के क्रियाकर्म एवं अग्नि में विसर्जन के बाद पंच-महाभूतों में विलय के काल को उपेक्षित कर दिया। क्योंकि मानवीय बुद्धि विशेषकर इन आयामों में निरुत्तर एवं मूक हो जाती है।

अपनी सीमित बुद्धि की जड़ता के कारण हम इतने अहंपूरित हैं, कि मानव-देह का जिस काल में माँ के गर्भ में पंच-महाभूतों के अद्वितीय संगम से निर्माण हुआ, हमने उस काल को जीवन-काल की गणना में रखना भी उचित नहीं समझा। मैंने इष्ट-कृपा से इस काल को **प्रारम्भारम्भ** की संज्ञा दी है। इस काल में मानव-देह के निर्माण में मेरी अथवा मेरे किसी सगे सम्बन्धी की कोई दखलन्दाजी (हस्तक्षेप) नहीं थी। उस पूरे प्रकरण का कर्ता, कारण, संरक्षक, पालक, प्रतिपादक, संचालक, सम्पादक मात्र ईश्वर ही था। मैं उत्कृष्टतम् बुद्धि से इस देह का एक बाल, एक नाखून तक नहीं बना सकता। इसी प्रकार मृत्योपरान्त अग्नि-दहन के लिए चिता अथवा कब्र में लिटाने के बाद भस्मी या मिट्टी बनने के आयाम में किसी भी मानवीय या दानवीय बुद्धि का कोई हस्तक्षेप हो ही नहीं सकता। प्रारम्भारम्भ (जन्म से पहले) और अन्तान्त (मृत्यु के बाद) पहला और पाँचवा ये दो विभाग ऐसे हैं, जिनका कर्ता और कारण ईश्वर ही है तथा इस सम्पूर्ण प्रकरण का संचालन, प्रतिपादन, संरक्षण और संपादन मात्र ईश्वर के ही हाथ में है।

दूसरा विभाग है—जन्म से लेकर मेरे होश सम्भालने तक, जिसमें मेरा लालन-पालन हुआ। बीमारियों से सुरक्षा, सुख-सुविधा की निगरानी, तथाकथित शिक्षा-दीक्षा, निवास, आवास, परिवेश, वस्त्रादि का मौसम के अनुसार परिवर्तन व देख-भाल, लाड-प्यार, डांट-फटकार आदि सब कुछ मेरे लिए हुआ। इसमें मेरा अपना कोई हस्तक्षेप नहीं था, लेकिन मेरे तथाकथित सगे सम्बन्धियों का परस्पर विरोध, अनुरोध, प्रतिरोध, शोध, गतिरोध, अवरोध और न जाने क्या-क्या था ! इस प्रकरण ने मुझे होश सम्भालने तक पहुँचा दिया, जब मैं स्वयं परामर्श देने, निर्णय लेने और कार्य करने के योग्य हो गया। दूसरे विभाग में सारा कार्य मेरे लिए ईश्वर द्वारा ही

करवाया गया और जन्म से पहले गर्भ में मेरी देह का निर्माण ईश्वर ने ही किया।

तीसरा विभाग—मेरे होश में आने से लेकर होश के गुम हो जाने तक का है, जिसका वर्णन मैं बाद में करूँगा। चौथा विभाग वह है—जब मेरी होश गुम हो जाएगी, क्योंकि जो होश आई है, वह एक दिन अवश्य जाएगी। कइयों की किसी कारणवश जीवन-काल में चली जाती है अन्यथा मृत्यु के बाद तो अवश्य जाती है। तो चौथा विभाग—मेरी होश गुम होने से मुझे चिता अथवा कब्र में डालने तक का है। इस क्रियाकर्म के कार्यक्रम में दूसरे विभाग की भाँति मेरे सगे-सम्बन्धियों के परस्पर अनुरोध, प्रतिरोध, विरोध, गतिरोध, अवरोध, शोध और न जाने क्या-क्या होंगे, जिसमें मेरा कोई हस्तक्षेप नहीं होगा। यह समस्त प्रकरण ईश्वर द्वारा ही करवाया जाएगा। पाँचवें विभाग में मेरी पंच-महाभूतों की देह पंच-महाभूतों में विलीन हो जाएगी, इस प्रकरण को ईश्वर द्वारा ही किया जाएगा।

उपर्युक्त पाँच विभागों में जो मध्य का तीसरा विभाग है, जिसमें मुझे होश आ गई और मैं स्वयं तथाकथित परामर्श देने, निर्णय लेने और कार्य करने योग्य हो गया, उसमें मेरा पूरा हस्तक्षेप हुआ। मैं मध्य में **'मदान्ध'** हो गया। मैं भूल गया, कि मैं शून्य से प्रारम्भ हुआ था और सब कुछ यहीं छोड़ कर जाना है। पहले मैं माँ के गर्भ में था। उस विभाग में मैंने बनती हुई देह पर अधिपत्य नहीं किया। देह जैसी भी बनी, उसमें मेरा तथा मेरे सगे-सम्बन्धियों का कोई हस्तक्षेप नहीं था। फिर जन्म के बाद शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था के दौरान भी मेरा अपनी देह पर कोई अधिपत्य और अध्यास नहीं था। **जब होश सम्भाली (मध्य के तीसरे विभाग में) तो मैंने अपनी देह पर अधिपत्य किया, कि यह देह मेरी है।** मुझे साथ ही देहाध्यास भी हो गया, कि मैं यह देह (देह का नाम-रूप) हूँ। अमुक भूमि या मकान मेरा है, दुकान मेरी है, धन, पत्नी, सन्तान आदि सब कुछ मेरा है। इस भाव को अधिपत्य कहते हैं। इसी प्रकार मुझे देह पर भी अधिपत्य हो गया, कि देह मेरी है।

देहाधिपत्य के साथ जब मुझे देहाध्यास हो गया, कि मैं देह हूँ, वहाँ से दैवीय दृष्टि से हम अपराधी हो गए। जिन चीज़ों पर हमें **अधिपत्य** होता है, उन पर **अध्यास** नहीं होता। यानि जगत में जिन वस्तुओं, प्राणियों अथवा इनसे सम्बन्धित किसी भी विधा को हम अपना कहते हैं, उन्हें अपना स्वरूप नहीं मानते। उदाहरणतः यह घर मेरा है, कोई नहीं कहता, कि मैं घर हूँ। यह घोड़ा, गधा या कुत्ता मेरा है। कोई नहीं कहता, कि मैं घोड़ा हूँ, आदि-आदि। यह गाड़ी मेरी है, कोई नहीं कहता, कि मैं गाड़ी हूँ। लेकिन दुर्भाग्यवश, स्वभाववश, अज्ञानवश, जाने-अनजाने हम सबसे देह के विषय में यह बहुत बड़ी गलती हो गई। होश सम्भालते ही देह पर अधिपत्य के साथ देह को 'मैं' (जीवात्मा) ने अपना स्वरूप ही मान लिया यह सबसे बड़ा अपराध था, जिसे मैंने अपनी परिपक्व होश मान लिया और मैं मध्य के इस विभाग में पकड़ा गया—I was arrested, prosecuted and punished by divinity.

'मैं' (जीवात्मा) ने देह के साथ तद्‌रूपता कर ली। मैं देह हूँ (देहाध्यास) और देह मेरी है (देहाधिपत्य)।**'मैं'** विशुद्ध जीवात्मा ईश्वर की भाँति सच्चिदानंद, जब नाम-रूप की देह के साथ स्वयं को पहचानने लगा, तो मेरे दुःखों, रोगों, आधि-व्याधि-उपाधि, मल-विक्षेप एवं आवरण की श्रंखला शुरू हो गई। ईर्ष्या, वैर, वैमनस्य, राग-द्वेष जितने भी मेरे दुःखों के कारण हुए, वे मध्य के विभाग में ही हुए। यहाँ मैं बुद्धि के अहंवश स्वयं कर्ता व कारण बन गया। यह कर्ता व कारण भाव दैवीय अदालत में बक्शा नहीं जाता। जाने-अनजाने जो भी हमारे निहित भाव होते हैं, वे सब रिकार्ड में आ जाते हैं। हमारी प्राप्तियाँ, जो हमें स्वतः प्राप्त थीं अथवा जो हमने प्राप्त कीं, उन सबके भोग का अधिकार हमसे छीन लिया जाता है। क्योंकि सब कुछ कर-करा ईश्वर रहा है और मैं मूर्ख-अज्ञानी बेधड़क होकर स्वयं करने का दावा कर लेता हूँ। इस तीसरे विभाग में देहाध्यास हृष्ट, पुष्ट और तुष्ट होता रहता है और ईश्वर के साथ-साथ हमारी अपनी देह ही हमसे रुष्ट हो जाती है। लेकिन देह मेरी है और मैं देह हूँ, कहने की आदत हमें जन्मों-जन्मान्तरों से पड़ी हुई है। देहाधिपत्य व देहाध्यास की पुष्टि की तद्‌रूपता

जन्मों-जन्मान्तरों में परिपुष्ट (पुष्ट पर पुष्ट) हो कर देह धारणा बन जाती है। अतः देह ही हमारी धारणा बनी हुई है। आदत बदलनी मुश्किल ही नहीं, बल्कि असम्भवप्रायः है।

जीवन के तीसरे विभाग में यह विशिष्टतम् होश केवल मानव को ही मिलती है। पशुओं और मानवेतर अन्य प्राणियों को नहीं मिलती। होश इसलिए मिली, कि **'मैं'** (जीवात्मा) देह के रूप में स्पष्ट देख लूँ, कि होश सम्भालने से पहले दो विभागों में ईश्वर ने ही मेरी देह का निर्माण किया और ईश्वर ने ही मेरे होश में आने तक इसका पालन-पोषण और समस्त व्यवस्था की। जो होश मुझे आई है, वह मध्य में ही है और एक दिन गुम भी अवश्य होगी, क्योंकि सबकी होती है, तो मेरी क्यों नहीं होगी? अतः होश गुम हो जाने पर मेरी देह के चिता तक पहुँचने तक का सारा कार्यक्रम या क्रियाकर्म का कार्यक्रम ईश्वर द्वारा ही करवाया जाएगा और चिता पर मेरी देह लिटाने पर उसका पंच-तत्त्वों में विलय ईश्वर ही करेगा। इस मध्य वाले विभाग में जो भी हो रहा है, वह हो चुका है, ईश्वर द्वारा उसकी पूर्ण रूपरेखा पहले ही बन चुकी है। उसके अनुसार मैं संसार रूपी नाट्यशाला के रंगमंच पर सारे दृश्य देखता रहूँ, ईश्वर ने जो मुझसे करवाना होगा, वह करवा लेगा। जैसेकि मेरे जन्म के बाद होश सम्भालने और होश गुम हो जाने के बाद, चिता तक ले जाने के दूसरे और चौथे विभागों में मेरे लिए तथाकथित सम्बन्धियों द्वारा करवाया गया और करवाया जाएगा।

मानव-देह पूरे जीवन-काल में सदा काल की तीन विधाओं से बँधी है—स्थान, स्थिति व समय। मैं कौन सी देह हूँ? मेरी हर अवस्था की देह के साथ ये तीनों विधाएँ रहती हैं। मेरी स्थिति, स्थान और जैसा समय मेरे ऊपर उस समय चल रहा था, उसके अनुसार समय-समय पर मेरी देह में विभिन्न परिवर्तन आते हैं। ये तीनों निरन्तर, चिरन्तन, अबाध, अविरल, अकाट्य रूप से परिवर्तनशील हैं, इसलिए मेरी देह सतत् परिवर्तित होती रहती है।

मेरी मानव-देह पंच-महाभूतों के संगम से बनी है। ये पंच-महाभूत स्वयं में सहज जड़ हैं। इन्हें न स्वयं का ज्ञान है, न ही ईश्वर का ज्ञान है। पाँच

तत्त्वों (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश) का संगम शिव के वैराग की प्रतिनिधि अदृश्य भस्मी से हुआ। इसी से प्रेरित, संचालित ये पाँचों सहज जड़ तत्त्व अविरल, निरन्तर, चिरन्तन, अबाध एवं अकाट्य रूप से गतिमान हैं। इनकी गतियाँ Highly Precise, (अति संक्षिप्त) Thematic (अति सारगर्भित) Qualitative (गुणात्मक), Purposeful (सोद्देश्य) and Specific (अति विशिष्ट) हैं। एक पत्थर यदि लुढ़का दिया जाए, तो उसकी गति का कोई विशिष्ट अर्थ तो नहीं होगा और वह लुढ़कता हुआ कहीं भी गिर कर स्थिर हो जाएगा। लेकिन ये सहज जड़ पंच-महाभूत तो युगों-युगान्तरों से निरन्तर, चिरन्तन, अविरल, अबाध, अकाट्य रूप से गतिमान हैं और इनकी गतियों का विशिष्ट अर्थ एवं लक्ष्य है। हमने अपनी उत्कृष्ट बुद्धि से इस विषय में चिन्तन ही नहीं किया, कि सहज जड़ पंच-महाभूतों का संगम कैसे हुआ और इनकी गतियों का कारण कौन है तथा इनकी गतियों के नेपथ्य में शक्ति कौन सी है?

पंच-महाभूतों की समस्त सृष्टि का संघनित रूप मुझे दी गई मानव-देह में शिव का वैराग, अदृश्य भस्मी के रूप में कण-कण में समानतया समाहित है। वही मेरा प्राण और शक्ति है। समस्त जीवन में मानव-देह के पाँचों विभागों में पहले और पाँचवे विभाग में ईश्वर ने ही मेरे लिए सब कुछ किया। दूसरे और चौथे विभाग में ईश्वर ने ही सब कुछ करवाया। इन चारों विभागों में ईश्वर ने मुझ से यह भी आशा नहीं की, कि मैं उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करूँ, क्योंकि मेरी होश परिपक्व नहीं थी। उन विभागों में मेरे लिए पाप-पुण्य, उन्नति-अवनति, यश-अपयश, लाभ-हानि, मान-अपमान, आधि-व्याधि-उपाधि, मल-विक्षेप-आवरण भी नहीं थे। मैं वहाँ बिल्कुल कर्ता नहीं था। इसलिए प्रारब्धानुसार मेरे लिए सब कुछ होता रहा। मध्य के विभाग में जो विशेष होश प्रभु द्वारा मुझे दी गई, वह इसलिए दी गई, कि होश में अपनी विशिष्टतम, चेतनामयी और समस्त प्राणी जगत में पृथक् बुद्धि से यह जान लूँ और तहे-दिल से मान लूँ, कि करन-करावनहार प्रभु ही है। मानव में यह होश न होती, तो मानव और पशुओं में अन्तर ही कुछ नहीं था। जिस मानव

को मध्य में मदान्ध होकर इस होश की होश नहीं आती, वह मानव देहधारी होते हुए भी मानव-जीवन जीने का अधिकारी नहीं होता। पशुओं का तो अपराध ही कुछ नहीं होता, क्योंकि उन्हें यह होश ही नहीं दी गई। लेकिन मानव के ऊपर प्रारब्ध का केस चलता है और दैवीय शक्तियों द्वारा विभिन्न सज़ाएँ दी जाती हैं।

मध्य के भाग में जैसे ही मैंने देह पर अध्यास एवं अधिपत्य किया, तो देह की प्रत्येक अवस्था, गर्भावस्था (जब **'मैं'** माँ के गर्भ में था) शैशवावस्था (**'मैं'** शिशु था तो खिलौनों से खेलता था) युवावस्था (**'मैं'** जवान हुआ) वृद्धावस्था एवं अतिवृद्धावस्था (**'मैं'** बूढ़ा हो चला हूँ) के साथ **'मैं'** शब्द को लगाया। देह की प्रत्येक अवस्था स्थान, समय और स्थितियों से बँधी थी, लेकिन **'मैं'** एक थी। समय, स्थान और सभी स्थितियाँ परिवर्तनशील थीं। शाश्वत् व चेतन **'मैं'** (जीवात्मा) नश्वर देह के साथ तद्‌रूपता में अवचेतन हो गया। **'मैं'** स्वयं में देह की किसी भी स्थिति, स्थान एवं समय से बँधा नहीं था। **'मैं'** ईश्वर का मानस-पुत्र था' ***'सच्चिदानंदो हम् शिवो हम् शिवो हम्''*** संस्कृत में मैं को अहम् कहते हैं। **'मैं'** वास्तव में सो हम् था।

'देह' और **'मैं'** का जो बेमेल-मेल हुआ, इसमें **'मैं'** demote हो गया और **'देह'** मेरे विरुद्ध हो गई। **'मैं' (जीवात्मा) कर्ता नहीं है, दृष्टा है। 'मैं'** की देह के साथ तद्‌रूपता इस सीमा तक हो गई, कि देहाधिपत्य (देह मेरी है) के साथ देहाध्यास (मैं देह हूँ) जीवात्मा (**'मैं'**) का स्वभाव बन गया। देह ईश्वर द्वारा निर्मित, पालित, संचालित, प्रतिपादित, सम्पादित थी, उस पर कब्ज़ा करके **'मैं'** चेतन से अवचेतन हो गया। मुझे अहं हो गया, कि मैं देह हूँ, देह मेरी है।

मृतकावस्था, सुषुप्तावस्था, मूर्च्छावस्था में देह के साथ **'मैं'** नहीं लगती। दो अवस्थाओं में देह **'मैं'** नहीं लगाती, एक तो **निद्रा, मृत्यु, मूर्च्छा** आदि **जड़ अवस्थाओं** में और दूसरे **समाधि** अथवा **चेतनावस्था** में। योगी देह द्वारा देह व जगत से परे होकर समाधिस्थ होता है। यह उसकी चेतनावस्था है। इसी प्रकार निद्रा, मृत्यु व मूर्च्छा आदि अवस्थाओं में भी जीव

को देहाध्यास व देहाधिपत्य नहीं होता, लेकिन यह उसकी जड़ता है। इसमें उसे नाम-रूप की देह सहित जगत की अवचेतना के साथ अपने विशुद्ध स्वरूप की चेतना भी नहीं होती। यहाँ सद्‌गुरु भी कुछ नहीं कर सकता। निद्रा में हम जानबूझ कर देह को उपेक्षित करते हैं और समाधि में योगी देह का सदुपयोग, देह से परे होने के लिए करता है। योगी दिव्य देह में विचरता है।

अवचेतना में हमें देहाध्यास व देहाधिपत्य होने पर **'मैं'** (जीवात्मा) की अधोगति होने लगती है। सद्‌गुरु देहाध्यास नहीं छुड़ाता, बल्कि अवचेतना के प्रति चेतन कर देता है। वह सद्‌शिष्य को स्वप्नवत् संसार की अवचेतन विधाओं के प्रति जाग्रत करता है, कि तू कौन सी देह है तू अपनी देह की हर अवस्था के साथ **'मैं'** लगा रहा है। एक **'मैं'** इतनी सारी देह कैसे हो सकता है? तेरी **'मैं'** शाश्वत् और अपरिवर्तनीय है। अपरिवर्तनीय **'मैं'** ने हर पल परिवर्तनशील देह को अपना स्वरूप मान लिया। देह, तीनों विधाओं (समय, स्थिति, स्थान) से बँधी हुई अपने में सतत् परिवर्तनशील है। यह देह स्वयं में एक ऐसा उपकरण है, जो हर पल किसी न किसी समय, स्थान एवं स्थिति से बँधा है। अवचेतना में जीवात्मा देह की प्रत्येक अवस्था में तीन विधाओं (समय, स्थान और स्थिति) में बँधा रहता है। किसी भी क्षण हम इन तीनों से परे नहीं होते। ये तीनों हर पल परिवर्तनशील हैं। इसलिए देह सतत्, अविरल, निरन्तर, चिरन्तन, अबाध, अकाट्य रूप से बदलती रहती है।

अवचेतना में जीवात्मा देह के साथ स्वयं को पहचानता है, जड़ता व चेतनता में नहीं। जीवात्मा (**'मैं'**) स्वयं में किसी स्थिति, स्थान व समय से बँधा नहीं है, लेकिन अवचेतना में देह के साथ वह भी इन तीनों स्थितियों से जुड़ जाता है, इसे **अहंकार** और **ममकार** कहा गया है। जहाँ से हम फँसे हैं, वहीं से निकलेंगे। अवचेतना में हम फँसे हैं, क्योंकि मैं देह हूँ और देह मेरी है, यह वक्तव्य हम अवचेतना में ही देते हैं। जड़ता, (सुषुप्ति, मृत्यु, मूर्च्छा) और चेतना (समाधि स्थिति) में न देहाधिपत्य होता है, न देहाध्यास होता है। **'मैं'** हमारा सबका Common तत्त्व है। **'मैं'** देह की हर अवस्था, हर स्थिति, हर समय एवं हर स्थान में प्रत्येक के साथ जुड़ी रहती है। **'मैं'** के प्रकाट्य के

लिए मेरा अपनी देह के विषय में Conscious होना परमावश्यक है। मैं Body Consciousness में ही फँसा, चाहे देह किसी भी स्थिति, समय अथवा स्थान में हो।

सद्गुरु दिशा-निर्देश देता है, कि तू अवचेतना में ही देह की ऐसी देहातीत अवस्था की अवधारणा कर, जो निश्चित, परिलक्षित एवं दर्शित तो है, लेकिन स्थान, समय और स्थिति से बँधी नहीं है। तू उसे जीवन-काल में देख भी नहीं सकता। सद्गुरु बताता है, कि देह की सुषुप्ति, मूर्च्छा, मृत्यु एवं विस्मृति आदि अवस्थाएँ भी स्थिति, स्थान एवं समय से वंचित नहीं हैं। एक ही निश्चित, परिलक्षित व दर्शित अवस्था है, जो देह की है, लेकिन इन तीनों विधाओं से मुक्त है। वह है–**'देह की भस्मी'।** वह **अवस्था** देह की नहीं है। वे सब अवस्थाएँ देह की होंगी, जो स्थान, समय और स्थिति से बँधी होंगी। मात्र देह की भस्मी ही ऐसी अवस्था है, कि उसमें उतरने के बाद तू देह का नहीं होगा। वह अवस्था प्रकट तब होती है, जब तेरी देह नहीं होगी।

'मैं' का प्राकट्य तब हुआ, जब देह थी और स्थान, समय, स्थिति की विधाओं में बँधी अवचेतन थी। भस्मी का प्राकट्य तब होगा, जब चेतन या अवचेतन कोई भी देह नहीं होगी। **'मैं'** की तरह **भस्मी'** भी हम सबका Common तत्त्व है। **भस्मी** तब प्रकट होती है, जब समय, स्थान, स्थिति की विधाओं में बँधी हुई देह नहीं रहती। इस प्रकार **'मैं'** और **भस्मी** का प्राकट्य देह की बिल्कुल विपरीत अवस्थाओं में होता है। सबकी भस्मी एक ही है। **'भस्मी'** से कोई पहचान नहीं सकता, कि वह किसकी है। चेतन या अवचेतन कोई भी देह होगी, तो **'भस्मी'** अवश्य होगी। देह की भस्मी होगी, लेकिन भस्मी देह की नहीं होगी। भस्मी ही मेरी देह की एक ऐसी अवस्था है, जो सुनिश्चित है। शेष अवस्थाएँ सुनिश्चित नहीं हैं।

भस्मी एक देह की एक अवस्था है, लेकिन वह अवस्था प्रत्येक की है–जो आज तक हो चुके हैं, जो हैं और जो भविष्य में होंगे। कितनी अद्भुत, चमत्कारिक और परम रहस्यमय मेरी एक देह की वह एक अवस्था है, जो अनेक की है। वह एक देह की ऐसी अवस्था है, जो प्रत्येक की है। उस भस्मी

से कोई पूछे, कि तुम किसकी हो? भस्मी यदि बोल सकती हो तो यही कहेगी, कि आज तक जितने लोगों की देह काल-कवलित हो चुकी है, मैं उन सबका **वर्तमान** हूँ। आज जो जीवित हैं और कभी भी काल-कवलित हो सकते हैं, उनका मैं **भविष्य** हूँ। आज के बाद जो जन्म लेंगे, उनका मैं **अतीत** हूँ। जितने भी राजा-महाराजा, भूमिपति, धनाड्य, पीर-फकीर, सिद्ध, निर्धन, भिखारी जो भी हैं, हुए थे और होंगे, मेरी एक देह की वह एक अवस्था (जो **'कुछ नहीं है'**) **'सब कुछ'** होने का दावा कर सकती है। देह की सभी अवस्थाओं पर **'मैं'** अधिपत्य करता हूँ और उन्हें अपना स्वरूप मानकर अध्यास करता हूँ, तो देह की उस निश्चित, परिलक्षित व दर्शित अवस्था **'भस्मी'** पर अधिपत्य व अध्यास क्यों नहीं कर सकता? भस्मी **मेरी** है और **मैं** भस्मी हूँ। यह **अहंकार** मेरे देहाध्यास को भस्माध्यास में रूपान्तरित कर देगा।

मानव-देह स्वयं में काल-कवलित है और प्रभु अकाल हैं। देह काल-कवलित होते हुए भी हर पल हर अवस्था में अकाल द्वारा प्रेरित, निर्देशित, संचालित, पालित, सम्पादित और संहारित होती है। अतः होश सम्भालने पर मैं काल-कवलित देह में उस अवस्था की अवधारणा करूँ, जो काल-कवलित नहीं है। मैंने तद्‌रूपता भी देह की काल-कवलित अवस्थाओं के साथ की, कि यह मैं हूँ। इसे मैंने हर अवस्था में अपने हिसाब से चलाने की असफल कोशिश की। मेरी देह अकाल से बँधी होने के कारण स्वयं में सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड के भूत, वर्तमान और भविष्य को समाहित किए हुए है। इसकी सब अवस्थाएँ अनिश्चित एवं कल्पित हैं। वे सब मेरी मान्यता की मोहताज हैं। इसकी मृतकावस्था और भस्मावस्था ही एक ऐसी अवस्था है, जो मेरे द्वारा कल्पित या मानी हुई नहीं है। उस निश्चित स्थिति की अवधारणा करके मैं अपनी एक देह की उस एक स्थिति में कुछ देर विचरण करूँ, तो मेरी देह जो जन्म-मृत्यु के काल में असंख्य स्थितियों, स्थानों और समयों में बँधी हुई है, छूट जाएगी। मेरी देह इन समस्त स्थितियों, स्थानों और समयों से इसलिए बँधी, क्योंकि मैंने देहाध्यास किया। अब यह **'भस्माध्यास'** कि मैं भस्मी बन गया हूँ, मैं भस्मी हूँ और भस्मी मेरी है, मुझे

और मेरी देह को उन सबसे मुक्त कर देगा।

'मैं' के प्रकाट्य के लिए अवचेतन देह का होना आवश्यक है। होश के दौरान अवचेतना में ही हमें देखना होगा, कि देह के रूप में कुछ भी बन जाएँ, पा लें, खो लें, देह की भस्मी अवश्य बनेगी और तब देह और देह से सम्बन्धित सभी विधाओं का लय हो जाएगा। होश के दौरान मेरा यही कर्म है, कि मेरी बुद्धि द्वारा अपनी बुद्धि का समर्पण हो जाए। अहं मेरा स्वभाव है, तो मैं प्रभु से जीवन-काल में अपने **'कुछ नहीं'** (भस्मी) की चाह करूँ। मैं हूँ, लेकिन मेरा कुछ नहीं है। इसलिए हे प्रभु ! मेरे **'कुछ नहीं' (भस्मी)** से मुझे कुछ तो दे दो :–

''चाह गई चिन्ता गई, मनुआ बेपरवाह, जिसको
'कुछ नहीं' चाहिए, वह शाहों का शाह।''

देह के काल के दौरान मेरा वह अकाल तत्त्व भस्मी (जो देश-काल और स्थिति से परे है) मुझे दिखा दो। जब जीवन-काल में अपने उस परिलक्षित को पाने का लक्ष्य बना लें, उस दर्शित के दर्शन की सद् इच्छा रखें और उस निश्चित को सुनिश्चित करना चाहें, तो प्रभु इसकी इच्छा रखने मात्र से हमें **'शाह'** बना देंगे।

'मैं देह हूँ और देह मेरी है' का तोड़ है–***'मैं भस्मी हूँ और भस्मी मेरी है।'*** क्योंकि वह भी तो देह की अवस्था है। जब अति सद्गुरु-कृपा से अपने भस्मी स्वरूप की निमिष मात्र के लिए भी झलक मिल जाए, तो देहध्यासवश जो **'अहं'** हुआ था, वह **सो हम्** में रूपान्तरित हो जाएगा।

यह सो हम् पुनः अहं में कभी नहीं बदलेगा। दूध से दही बनने के बाद दही को पुनः दूध में बदला नहीं जा सकता। जो विरक्त होते हैं, वे दाता होते हैं। वे बाँटते हैं, उनका अपना कुछ नहीं होता। उनके पास उनके 'कुछ नहीं' (भस्मी) में से कुछ होता है, जिसके आधार पर वे बाँटते रहते हैं। लोग उनके पास उनके आशीर्वाद के लिए जाते हैं, जिससे उन्हें सब कुछ मिलता रहता है।

जीवात्मा का स्वरूप है–चुटकी भर भस्मी के आधार पर टिमटिमाती

हुई पंच-प्राणों की लौ। इसलिए नित्य कुछ क्षणों में इस **'कुछ नहीं'** का जामन अपने **'सब कुछ'** रूपी दूध में अवश्य लगाना है। यह अवधारणा करनी है, कि एक दिन मेरी देह की भस्मी अवश्य बनेगी। तब मेरी पत्नी, बच्चे, सम्बन्धी, मकान, दुकान, घर, नाम-यश कुछ नहीं रहेगा और मैं भी मुट्ठी भर राख की ढेरी में रूपान्तरित हो जाऊँगा। उस भस्मी को मैं नित्य कुछ देर के लिए अवधारणा कर लूँ, कि मैं भस्मी बन गया हूँ। यह ध्यान करके बस छोड़ देना है। इसका थोड़ा सा जामन नित्य अपने देहाध्यास के **अहं** को लगाना है। देह मेरी है, मैं देह हूँ, यह अहं था, जहाँ कहा, कि मैं भस्मी हूँ और भस्मी मेरी है, यह भस्माध्यास और भस्माधिपत्य, **अहं** नहीं होगा, यह **सो हम्** में रूपान्तरित हो जाएगा।

इस प्रकार देह ही हमें देहातीत क्षेत्र में ले जाएगी। ''मैं भस्मी बन गया हूँ,'' की नित्य कुछ क्षणों के लिए अवधारणा का स्पर्श भी हमें असंख्य मान्यताओं और अवधारणाओं से बाहर ले जाएगा। यह कृपा-साध्य है। तब हमारा जीवन सुरभित, सुगन्धित, आनन्दित एवं विकृत से विरक्त, विस्तृत और विशुद्ध हो जाएगा। हमारी देह जो हमेशा हमारे विरुद्ध रही, हमारी अपनी होनी प्रारम्भ हो जाएगी। हमसे प्रेम करेगी और देह ही हमें शास्त्रों, वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों, श्रुतियों का ज्ञान कराएगी और आत्म-चिन्तन कराते हुए ईश्वर के रहस्यों को हमारे सम्मुख अनावृत कर देगी।

बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(7 से 10 अक्टूबर 2007)

अकाल-काल

आज का शिवमय विषय **'अकाल-काल'** परम दुर्लभ है। शिव-शक्ति-क्रीड़ा स्वयं में वह अदृश्य प्रकरण है, जो शिव स्वयं के साथ स्वतः एवं स्वान्तःसुखाय करता है। शिव वैराग की **'अतिशक्ति'** का संघनित पुंज है। इससे प्रस्फुटित हुई पंच-प्राणों (प्राण, अपान, उदान, समान एवं व्यान) की महाशक्ति की अतिशक्ति (वैराग) से ही स्वयं में होने वाली स्वतः और स्वान्तःसुखाय, अदृश्य क्रीड़ा को शिव-शक्ति-क्रीड़ा कहा जाता है। उस महाचेतन की इस अदृश्य क्रीड़ा के आनन्द का प्रकटीकरण सहज जड़ पंच-महाभूतों (अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल एवं आकाश) के रूप में होता है। इन् पंच-महाभूतों को अपने गुणों-अवगुणों, शक्तियों, गतियों, प्रभावों और यहाँ तक कि ईश्वर का भी कोई ज्ञान नहीं है। इसलिए इन्हें सहज जड़ कहा गया है और इसीलिए पंच-महाभूतों की समस्त सृष्टि स्वयं में प्रपंच है, ईश्वर की माया है।

यह महा चमत्कारिक तथ्य है, कि महाचेतन ईश्वर के अपने प्रकाट्य के प्रतिनिधि पाँचों तत्त्व स्वयं में सहज जड़ हैं। इससे भी बड़ा चमत्कार यह है, कि सहज जड़ होते हुए भी ये पाँचों तत्त्व सर्वदा, सतत् गतिशील हैं। इनकी गतियाँ युगों-युगान्तरों से अविरल, अबाध, अकाट्य, निरन्तर एवं चिरन्तन हैं तथा इनकी गतियों का लक्ष्य अति संक्षिप्त (Precise), अति सारगर्भित (Thematic), अति विशिष्ट (Specific), गुणात्मक (Qualitative) और महा उद्देश्यपूर्ण (Purposeful) है। इस प्रकार इनकी गतियाँ दस रूपों

में दशानन हैं, साथ ही गतियाँ अदृश्य हैं। इन दशानन गतियों की अदृश्यता में ईश्वरीय रहस्य छिपे हैं।

वैज्ञानिकों, भूगोलशास्त्रियों, खगोलवेत्ताओं ने इनकी गतियों और गतियों के प्रभावों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। पृथ्वी अपनी धुरी पर चौबीस घण्टे में एक चक्कर पूरा करती है, जिससे दिन-रात बनते हैं। अपनी धुरी पर निरन्तर घूमते हुए पृथ्वी सूर्य के चारों ओर एक वर्ष में चक्कर पूरा करती है, जिससे ऋतुओं में परिवर्तन होता है। आकाश के सभी नक्षत्र अपनी-अपनी कक्षाओं में ईश्वरीय नियमानुसार भ्रमण करते हैं। चन्द्र-ग्रहण व सूर्य-ग्रहण के कारण और उनके विभिन्न स्थानों पर विभिन्न रूपों में प्रकट होने की जानकारी खगोलवेत्ताओं द्वारा मिलती है। समुद्र में ज्वार-भाटे का परिचय हमें मिलता है। वायु, जल एवं अग्नि की विभिन्न गतियों तथा उनके प्रभावों का वैज्ञानिकों ने वर्णन किया है। लेकिन वैज्ञानिक यह नहीं जान सके, कि इन सहज जड़ पंच-तत्त्वों से गति कौन करवा रहा है तथा इनकी गतियों के पीछे शक्ति क्या है?

सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण पृथ्वी को जो युगों-युगान्तरों से लगातार घुमा रही है, उस गति की शक्ति के बारे में आज तक किसी वैज्ञानिक ने विचार ही नहीं किया। पृथ्वी, जल, वायु एवं आकाश की विशिष्टतम गतियों द्वारा भूकम्प, सुनामी, बवण्डर, आँधी, तूफान आदि लाने वाली शक्ति को उत्कृष्टतम् वैज्ञानिक बुद्धि ने जाने-अनजाने पूर्णतः उपेक्षित कर दिया। क्योंकि इन सहज जड़ पंच-तत्त्वों की गति की शक्ति मानवीय बुद्धि से परे थी। मैं स्वयं विज्ञान का विद्यार्थी रहा हूँ, वैज्ञानिकों का विरोधी नहीं हूँ। वैज्ञानिकों ने अनेकों चमत्कारिक अनुसंधान किए हैं, लेकिन आज हम विशिष्ट सद्गुरु-कृपा से चमत्कारों के चमत्कार की चर्चा करेंगे।

उत्तरकाशी के सन्तों, महात्माओं, हिमालय की शिलाओं और गंगा मैया की कृपा से हुई आत्मानुभूति के आधार पर इस शिवमय विषय को मैं आज विश्व में प्रथम बार आप समस्त विशिष्टतम जिज्ञासुओं के सम्मुख रख रहा हूँ। गंगा मैया साधारण नदी नहीं है, तरल प्रवाहित चेतना है और हिमालय

की चट्टानें साधारण पत्थर नहीं, चेतना का ठोस प्रतिरूप हैं। हम सब परम सौभाग्यशाली हैं, जो भारत-भूमि में पैदा हुए हैं। कोई कथानक, सद्गुरु के श्रीमुख से निःसृत शब्द, सद् ग्रन्थों में लिखा गया कोई सूत्र, जब हमारे पल्ले पड़ता है अर्थात् हमारी अनुभूति में आता है, तो उसके तीन सोपान हैं—जानना, मानना और अनुभूतिगम्य होना। जानना, बुद्धि से होता है और मानना, मन से होता है तथा अनुभूति केवल सद्गुरु-कृपा से होती है।

भूत, भविष्य और वर्तमान, काल की इन तीनों विधाओं के अनुसार हमारी जान्यताएँ और मान्यताएँ बदलती रहती हैं। आज हमने जो जाना है और माना है, कल बदल सकता है। हम देखते हैं, कि पहले जो कुछ जाना-माना हुआ था, आज वैसा नहीं रहा। जान्यताओं और मान्यताओं को जब आधार मिल जाता है, फिर वे नहीं बदलतीं। बिना नींव के किसी भी भवन का कोई आधार नहीं होता। सद् ग्रन्थ और सद् वाणी से निःसृत प्रत्येक शब्द आधार युक्त और आडम्बर मुक्त होता है। वह **'शब्द ब्रह्म'** है। वह स्वयं में शास्त्र है। जिस पर अन्वेषण व अनुसंधान होता है, क्योंकि वह आत्मा से निकला है। जो शब्द आधार रहित होता है, वह **'शब्द भ्रम'** है। दोनों में अन्तर क्या है? सद्गुरु के श्रीमुख से जो शब्द निकले हैं, जो उसने सोचा और सुचवाया है, जो प्रकरण उसने करे या करवाए हैं, जो उसने सुनवाया है, वह **'शब्द ब्रह्म'** होता है, क्योंकि वह आधार युक्त होता है। **'शब्द ब्रह्म'** हर स्थान, हर स्थिति और हर समय एक ही रहता है। 'भ्रम' हमेशा भ्रम ही रहता है। वह समय, स्थान और स्थिति के अनुसार बदलता रहता है। **'सद्'** का आधार आत्मा है। जब कोई एक शब्द, कृत्य अथवा प्रकरण आत्मसात् हो जाता है, तो समस्त शब्द कृत्य व प्रकरण Realise हो जाते हैं। जो वाणी 'सद्' को धारण कर लेती है' सद्' उस वाणी को धारण कर लेता है। यह दैवीय अधिनियम है। मानव-देह काल से बँधी है तथा काल, अकाल के अधीन है।

हम बहुत कुछ जानते हैं और मानते भी बहुत कुछ हैं। कभी कुछ मानते हैं, कभी कुछ मानते हैं, लेकिन हर जान्यता और हर मान्यता हमारी रूह का

अंग नहीं बनती। सद्गुरु-कृपा से किसी एक शब्द ब्रह्म की जान्यता और मान्यता जब रूह में आत्मसात् हो जाती है, तो सब कुछ पल्ले पड़ जाता है। जानना और मानना भी यद्यपि कृपा साध्य है, लेकिन अनुभूति में लाना बिल्कुल भी हमारे हाथ में नहीं है। वह मात्र सद्गुरु-कृपा पर आश्रित है। कृपा, श्रद्धा साध्य है और श्रद्धा, समर्पण साध्य है। मानव को बुद्धि मात्र यह जानने के लिए मिली, कि मैं कुछ नहीं जानता।

सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड में निर्माण, पालन एवं संहार के लिए गतिशीलता परमावश्यक है। प्रवचन के प्रारम्भ में मैंने बताया, कि शिव की अतिशक्ति (विरक्ति) से प्रकट पंच-प्राणों की महाशक्ति में अदृश्य रूप में हुई परस्पर क्रीड़ा को शिव-शक्ति-क्रीड़ा कहा जाता है। प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान प्राण, जो अदृश्य एवं सहज चेतन हैं, वे क्रमशः अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल एवं आकाश के सहज जड़ पंच-तत्त्वों के रूप में दृश्यमान हुए। लेकिन अतिशक्ति (विरक्ति) से क्या प्रकट हुआ? वस्तुतः उस विरक्ति से वह शक्ति प्रकट हुई, जो इन सहज जड़ पंच-महाभूतों को चला रही है। वह विरक्ति शक्ति दृश्यमान नहीं होती, इसे हमने अदृश्य भस्मी की संज्ञा दी। शिव के वैराग की प्रतिनिधि इस अदृश्य भस्मी की शक्ति से ही पंच-महाभूतों के सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड में युगों-युगान्तरों से अविरल, निरन्तर, चिरन्तन, अबाध, अकाट्य, अति सारगर्भित, अति विशिष्ट, गुणात्मक, महा उद्देश्यपूर्ण एवं अति संक्षिप्त गतियाँ हो रही हैं तथा होती रहेंगी।

पंच-महाभूतों की समस्त सृष्टि में सर्वोत्कृष्ट परम विलक्षण एवं अति चमत्कारिक संरचना मानव-देह है, जो प्रभु की अति कृपावश हमें मिली है। पंच-महाभूतों का अति अद्भुत संगम, मानव-देह समस्त प्राणी जगत एवं चराचर सृष्टि में ईश्वर की सर्वोत्तम संरचना है। उत्कृष्टतम् वैज्ञानिक बुद्धि भी पंच-महाभूतों के संगम के इस चमत्कारिक रहस्य को नहीं समझ सकती। हम मानव, ईश्वर प्रदत्त सर्वोत्कृष्ट बुद्धि से जान सकते हैं, कि पंच-महाभूतों की गतियों एवं संगम का यह रहस्य हमारी अपनी बुद्धि से परे का विषय है। शिव की विरक्ति शक्ति ही अदृश्य भस्मी के रूप में

पंच-महाभूतों के संगम एवं गतियों का कारण है। उसी शक्ति से समस्त निर्माण, पालन एवं संहार होता है और अन्ततः जब देह, पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है तो शिव की विरक्ति शक्ति का प्रतिरूप वह अदृश्य भस्मी प्रकट हो जाती है।

सहज जड़ पंच-महाभूत जो अविरल, निरन्तर, चिरन्तन, अबाध, अकाट्य, अति संक्षिप्त, अति विशिष्ट, सोद्देश्य, अति सारगर्भित एवं गुणात्मक रूपों में गतिमान हैं, उनके अद्भुत संगम से मानव-देह बनी। जब तक व्यक्ति जीवित रहता है, मानव-देह की भीतरी समस्त कार्य-प्रणालियाँ पंच-महाभूतों की गतियों के समान ही दस रूपों में होती रहती हैं। शरीर का एक-एक रोम, कोशिका, सैल एवं अवयव चाहे हम किसी भी स्थान, स्थिति एवं समय में हों, सुचारू रूप से अपना कार्य करते रहते हैं। ये गतियाँ अदृश्य हैं। पंच-महाभूतों की मानव-देह की आन्तरिक गतियाँ विशिष्टतम, अति संक्षिप्त, गुणात्मक, सोद्देश्य, सारगर्भित एवं सतत् गतिमान हैं। इनमें हमारी बुद्धि का कोई हस्तक्षेप नहीं है। लेकिन हमारी बाह्य गतियाँ हमारी अपनी बुद्धि के हस्तक्षेप के कारण निकृष्ट, अति विस्तारपूर्ण, मात्रात्मक, निरुद्देश्य, निस्सार एवं अति अस्त-व्यस्त हो जाती हैं।

हमने अपने पिछले प्रवचनों में मानव-देह के समस्त काल को पाँच मुख्य खण्डों में विभाजित किया था। हम सब अपने जीवन का आरम्भ देह के जन्म और अन्त मृत्यु में मानते हैं। मैंने इष्ट-कृपा से जीवन के दोनों छोरों को जन्म से पहले, प्रारम्भारम्भ (प्रारम्भ का प्रारम्भ) और मृत्यु के बाद अन्तान्त (अन्त का अन्त) की दिशा में थोड़ा बढ़ाया है, जो कि वास्तविकता है। जब मेरी देह के लिए माँ के गर्भ में भ्रूण रूप में (जिसे Zygote कहते हैं) गर्भाधान हुआ, उससे लेकर जन्म तक के समय को मैंने प्रारम्भारम्भ की संज्ञा दी थी। लगभग नौ महीने का यह समय मानवीय बुद्धि की सीमाओं से परे है। निश्चित रूप से वह भ्रूण या Zygote कब माँ के गर्भ में स्थापित हुआ, उस समय की गणना नहीं की सकती। गेहूँ की फसल कब तक पकेगी? इसके समय की गणना हम गेहूँ की बुआई से

करते हैं। लेकिन अपनी देह के बीजारोपण की गणना हम नहीं करते, क्योंकि मानवीय बुद्धि की सोच से परे है। वह विशिष्ट समय हमारी घड़ी के समय की सीमाओं से परे था। आज बड़े-बड़े वैज्ञानिक और चिकित्सा विज्ञान के पारंगत भी गर्भाधान के उस समय का पता नहीं लगा सके हैं। वह काल हमारे समय की गणना से परे है। उस अकाल पुरुष के इस चमत्कार के रहस्य को हम अपनी मानवीय बुद्धि से नहीं जान सकते। इस तथ्य को हम तहे-दिल, मन एवं रूह से जान लें और मान लें। जब तक इसे जानेंगे और मानेंगे नहीं, तब तक हम इसकी अनुभूति नहीं कर सकते। गर्भाधान का समय, स्थान और स्थिति अकाल (कालेश्वर) के हाथों में है। इसे हमने आत्मानुभूति के आधार पर इष्ट-कृपा से **अकाल-काल** की संज्ञा दी है।

उस कालेश्वर की इच्छा एवं प्रेरणा से मैं माँ के गर्भ में एक निश्चित समय पर आया। वह समय हम सब मानवों के लिए अनिश्चित है। हमारा प्रारम्भारम्भ अकाल-काल में हुआ। मृत्योपरान्त जिस समय मेरी देह को चिता में डाल कर मुखाग्नि दी जाएगी, उस समय से देह के पंच-महाभूतों में विलय और भस्मी बनने के समय की गणना भी मानवीय बुद्धि की काल-गणना की सीमाओं से परे है। इसलिए अन्तान्त भी अकाल-काल में होगा। इस प्रकार मानव-देह के प्रथम (प्रारम्भारम्भ) और पंचम (अन्तान्त) दोनों खण्ड अकाल-काल में मात्र कालेश्वर के द्वारा ही सम्पादित होते हैं। इन दोनों खण्डों का भी काल है, लेकिन वह अकाल-काल है, क्योंकि हमारी घड़ी के समय की गणना से परे है। मानव-जीवन का चमत्कार और सौन्दर्य यह है, कि यह अकाल-काल से शुरू होता है और अकाल-काल में समाप्त होता है। हमने अपनी बुद्धि के अहंवश, जाने-अनजाने इन दोनों खण्डों को उपेक्षित कर दिया और जीवन का प्रारम्भ जन्म से और अन्त मृत्यु में मान लिया। जिस देह को लेकर **'मैं'** (जीवात्मा) अवचेतना में 'मैं अमुक-अमुक हूँ' मानता हुआ देह की हर स्थिति, स्थान एवं समय की अवस्थाओं पर अधिपत्य कर लेता हूँ, उसका मेरे लिए वास्तव में प्रकाट्य हुआ है। उस

गणनातीत, चमत्कारिक एवं रहस्यमय भाग के विषय में उत्कृष्टतम् मानव-बुद्धि ने सोचना ही आवश्यक नहीं समझा। यह हमारी बुद्धि के अहं की सीमा है।

हमने अपनी होश का पूर्णतः दुरुपयोग किया। मानव देहधारी और ईश्वरीय चेतना युक्त बुद्धि से सम्पन्न होते हुए भी यह जानने का प्रयत्न ही नहीं किया, कि मेरी इस होश का अर्थ क्या है? सब कुछ प्रभु कर रहे थे और करवा रहे थे। अज्ञानवश, देहाध्यासवश हमने जीवन के मध्य के भाग में ईश्वरीय कृत्यों में हस्तक्षेप करते हुए स्वयं करना और करवाना शुरू कर दिया। हमने अपनी होश का अर्थ तो जाना ही नहीं, बल्कि स्वयं को कर्ता-धर्ता मान लिया। यहाँ हम फँस गए। इस मध्य के भाग में भी पहले और पाँचवें तथा दूसरे और चौथे भाग की भाँति प्रभु ही कर रहे हैं एवं प्रभु ही करवा रहे हैं। जो कुछ जगत में हम देख, सुन, चख, सूँघ और स्पर्श कर रहे हैं, यह हमारे लिए चौरासी लाख मायिक विधाओं में पहले से Recorded आन्तरिक मानस का विभिन्न स्थितियों में विभिन्न रूपों में बाह्य प्रकाट्य है। परन्तु हम बाह्य प्रकाट्य में परिवर्तन, संशोधन, सम्वर्द्धन, विकास और ह्रास में संघर्षरत हैं। देहाध्यासवश देह के साथ नाम-रूप में तद्‌रूपता के कारण '**मैं**' (जीवात्मा) जीवन के तीसरे भाग में होश में आकर अपने दृष्टा पद से अपदस्थ होकर जीव बन गया।

महा दुर्भाग्यवश जीवन के तीसरे मध्य भाग में मानव होश में आते ही होश खो बैठा। मध्य में मदान्ध हो गया। ये मेरी ज़िन्दगी है, मुझे कुछ बनना है, मैं सब कुछ करके दिखा दूँगा, मैं इतने वर्षों में अपनी योजना कार्यान्वित कर दूँगा आदि-आदि। मुझे दी गई देह जो स्वतः ही अकाल-काल से बँधी थी, उसे मैंने अपने काल से बाँधने का असफल प्रयत्न किया। इसीलिए कालेश्वर की 1008 धाराओं के अन्तर्गत सज़ाएँ भुगतता हुआ, जन्म दर जन्म प्रारब्ध के अन्तर्गत भटकता रहा। मानव-देह का समस्त काल वस्तुतः अकाल से बँधा है। यह मेरी घड़ी से न बँधा था, न बँधा है और न बँधेगा। देह मेरे लिए दी गई है, पर मेरी नहीं है।

विवेकशील, प्रज्ञावान, मेधावी मानव होश सम्भालने पर अति होश में आकर सद्गुरु से पूछता है, कि जब सब कुछ प्रभु कर-करवा रहे हैं, तो मैं क्या करूँ? सद्गुरु कहता है, कि तू इस परम **'सद्'** की सद्गुरु-कृपा से अनुभूति कर ले। आध्यात्मिक जगत में **'सद्'** का ही अस्तित्व है। सच और झूठ की धारणाएँ मात्र भौतिक जगत में होती हैं। **'सद्'** को **सत्** भी कहते हैं। झूठ और सच दोनों असद् में आते हैं। सद् चेतन आनन्द (सच्चिदानंद) अकाट्य एवं सदासद् है। हमारी देह सहित जगत की समस्त विधाएँ भूत, भविष्य एवं वर्तमान सहित सतत्, अविरल, अबाध एवं निरन्तर परिवर्तनशील हैं। उनमें झूठ-सच का ताना-बाना चलता रहता है। **'सद्'** परम हितकारी है। लाभ-हानि भौतिक जगत में देखी जाती है।

जीवन का भौतिक समय **'काल'** का एक अंग है। काल, अकाल से बँधा है। समय, स्थान व स्थिति काल में तीन विधाएँ हैं। जिस प्रकार हमारी घड़ी की घण्टा, मिनट एवं सैकेण्ड की तीन सुइयाँ हैं। उसी प्रकार काल की घड़ी की स्थिति, स्थान एवं समय तीन सुइयाँ हैं। हमने किसी व्यक्ति को अपनी घड़ी से **समय** दिया, कि मुझे इतने बजे, अमुक **स्थान** पर मिलना। हम अमुक-अमुक **स्थिति** के विषय में चर्चा करेंगे। जो समय हमने दिया है उस समय हम स्वयं और वह व्यक्ति उस स्थान पर होगा, यह आवश्यक नहीं है। पहले तो समय हमारे हाथ में नहीं है, दूसरे वह स्थान जो हमने निश्चित किया है, वो हमारे हाथ में बिल्कुल नहीं है, तीसरे किसी स्थिति या विषय के बारे में विचार हो भी पाएगा या नहीं, यह तो बिल्कुल भी हमारे हाथ में नहीं है। उस समय मैं स्वयं किस स्थान पर होऊँगा और उस व्यक्ति के लिए कौन सा स्थान निर्धारित है तथा दोनों की स्थिति क्या होगी, यह सब कालेश्वर के हाथ में है। स्थिति में, दैहिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक व पारिवारिक सभी विधाएँ आ जाती हैं। इन सभी विधाओं से हम प्रभावित होते हैं।

जीवन में कोई समय, स्थान एवं स्थिति हमारे हाथ में नहीं है। इस सद् को जान लेना, मान लेना और अनुभूति में ले आना ही मानवीय कर्म है।

काल से हमारे जीवन का घटना-क्रम संचालित होता है और इसका प्रेरक व नियन्त्रक **'अकाल'** है। अकाल घटना-क्रम में लिप्त नहीं है। जिस पर घटना घट रही है, उससे भी सम्बद्ध नहीं है। उसके लिए सब खेल व तमाशा हैं। जन्मों-जन्मान्तरों में ईश्वर-विमुखता में देहाध्यास व देहाधिपत्य के कारण अवचेतना में हुए कृत्यों का अहं ही काल-चक्र के घटना-क्रम का कारण है। उस घटना-क्रम के संयोजन पर अकाल की स्वीकृति होती है। इसमें हम स्वयं उलझे रहते हैं और आजीवन अपने जीवन-काल को अपनी घड़ी के समय से बाँधने का असफल प्रयास करते रहते हैं। इसके कारण अकाल में होने वाली घटनाएँ काल-चक्र का हिस्सा बन जाती हैं। हम जीवन-काल में अपनी कलाई की घड़ी के समय से बँधे रहते हैं। जबकि काल की तीनों विधाओं (स्थिति, समय, स्थान) में हमारी घड़ी का समय एक अंग मात्र है। यह काल स्वयं अकाल से बँधा है। हिमालय की कन्दराओं से प्राप्त अध्यात्म का यह मात्र श्रुतिगम्य रहस्य आध्यात्मिक इतिहास में प्रथम बार मैं इष्ट-कृपा से आप समस्त जिज्ञासुओं के सम्मुख उद्घोषित कर रहा हूँ। इस विषय के परम श्रद्धायुक्त एकाग्रतापूर्ण श्रवण मात्र से आप सब स्वतः ही उस **'कालेश्वर'** को नमन करते हुए उसके शरणागत हो जाएँगे।

जीवन में समस्त घटना-क्रम काल की घड़ी के अनुसार चलता है। यह किसी भी मानव-बुद्धि के हाथ में नहीं है। कल्पना करने को हम जो भी कल्पना कर लें, लेकिन जब जो होगा और देह सहित जगत में जिससे जो-जो करवाया जाएगा और जहाँ-जहाँ ले जाया जाएगा, यह न कभी किसी के हाथ में था, न है और न कभी होगा। काल स्वयं अकाल से बँधा है। हमारा जीवन उस अकाल-काल की घड़ी से बँधा हुआ है। अकाल स्वतन्त्र है और काल में घटना-क्रम चलता है।

हमारी घड़ी में घण्टे, मिनट और सैकेण्ड की तीन सुइयाँ होती हैं, तीनों विशिष्ट गति से परस्पर सम्बद्ध रहती हुई समय का संकेत करती हैं। तीनों की गतियाँ एक विशिष्ट अनुपात में होती हैं। जिसके अनुसार समय की गणना होती है। काल की घड़ी में स्थान, स्थिति और समय की सुइयाँ

क्रमशः हमारी घड़ी की घण्टे, मिनट और सैकेण्ड की सुइयों के समान गति करती हैं। हमारे जीवन-काल में जो स्थान बदलते हैं, वे एकाएक नहीं बदलते, लेकिन वे गतियाँ दिखाई नहीं देतीं। स्थिति का बदलाव मिनट की सुई के समान एकाग्रतापूर्वक अन्तर्मुखी होकर देखा जा सकता है और समय का बदलाव सैकेण्ड की सुई समान प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। होश सम्भालने पर जीवन-काल के मध्य के विभाग में हमने काल को अपने **'समय'** में बाँधना चाहा। जबकि समय काल की घड़ी की तीन विधाओं में सैकेण्ड की सुई की भाँति सबसे कम महत्त्वपूर्ण अंग है। हमारी स्थिति बनती है और विशिष्ट स्थान पर विशिष्ट समय में हमें पहुँचा दिया जाता है तथा घटनाएँ घटती हैं:–

''तुलसी जसि भवितव्यता तैसी मिलै सहाय,
आप न जावै ताहि पै ताहि तहाँ ले जाए।''

जहाँ वह काल हमें ले जाता है, हम वहाँ पहुँच जाते हैं। हम जाना कहीं और चाहते हैं, लेकिन पहुँच कहीं और जाते हैं। हम मिलना किसी को चाहते हैं, मिल कोई और जाता है। करना कुछ चाहते हैं, हो कुछ जाता है। यह सब उस काल के अधीन है, जो स्वयं अकाल (कालेश्वर) के अधीन है। अतः समय और काल को एक समझने की भूल हम न करें। जीवन-काल के घटना-क्रम में कोई भी घटना हमारे कुछ करने, परामर्श एवं निर्णय से नहीं घटती। वे सब स्थान, स्थिति व समय के निर्देशन में घटित होती हैं। जब तीनों का समन्वय होता है, तो घटना घटती है और वह ईश्वर द्वारा निर्धारित होती है। उसे कोई टाल नहीं सकता तथा हस्तक्षेप भी नहीं कर सकता। हमारा मानस आकाश की तरह पल-पल रंग बदलता है। आकाश में कभी बादल गहरा जाते हैं, कभी छितरे बादल होते हैं, कभी धूप निकलती है। इसी प्रकार हमारी मानसिक स्थिति कब, क्या, क्यों और कैसी होगी, यह हमारे हाथ में नहीं है। हमारी स्थिति हर क्षण बदलती रहती है।

जीवन-काल के पाँच खण्डों में तीसरे खण्ड में हम अपने केन्द्र से विमुख हो जाते हैं। काल-चक्र की परिधि भी घड़ी की भाँति असंख्य बिन्दुओं

में होती है। परिधि में असंख्य व गणनातीत बिन्दु हैं और केन्द्र भी एक बिन्दु है। परिधि के हर बिन्दु का स्थान, स्थिति और समय पृथक् है। अक्ल, शक्ल, व्यवहार, प्रतिभा आदि सभी दृष्टियों से प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से अलग होता है। उसी प्रकार काल-चक्र की परिधि के समस्त बिन्दु एक से होते हुए भी पृथक्-पृथक् स्थान, समय और स्थिति में होते हैं, लेकिन उन सबका केन्द्र-बिन्दु एक ही है। परिधि के बिन्दु काल-चक्र **में** हैं और केन्द्र-बिन्दु चक्र **का** है। घड़ी की परिधि के समान काल-चक्र में सभी बिन्दु समय, स्थान और स्थिति के सूचक हैं। सभी की अपनी स्थिति, स्थान एवं समय है, लेकिन सबका अस्तित्व एक केन्द्र-बिन्दु से है। कोई बिन्दु किसी भी स्थान, समय या स्थिति में हो, केन्द्र-बिन्दु से समान दूरी पर होता है। केन्द्र-बिन्दु स्वयं में समय, स्थान और स्थिति से परे होता है, इसलिए सभी का एक ही है। केन्द्र-बिन्दु ही काल-चक्र का अस्तित्व है। उस चक्र में जो भी गणना, मूल्यांकन अथवा अवमूल्यन होगा, वह सब केन्द्र-बिन्दु के आधार पर होगा। घड़ी की तीनों सुइयाँ केन्द्र-बिन्दु के आधार पर गति करती हैं। केन्द्र-बिन्दु स्थिर है और काल-चक्र में सभी बिन्दु अस्थिर हैं, क्योंकि तीनों सुइयों की स्थिति, समय व स्थान पृथक्-पृथक् बताते हैं। घड़ी के केन्द्र-बिन्दु को देखकर हम समय नहीं बता सकते, क्योंकि वह समय, स्थान व स्थिति से बँधे सभी बिन्दुओं का एक ही है और स्वयं में इन तीनों विधाओं से परे है।

मैं पुनः वर्णन करूँगा कृपया एकाग्र करें। केन्द्र-बिन्दु, काल-चक्र **का** है, शेष सब बिन्दु काल-चक्र **में** हैं। काल का काल, अकाल से बँधा है। उसकी स्थिति किसी भी समय और स्थान से नहीं बँधी। इसलिए वह अकाल है तथा काल की तीनों विधाओं से परे है। वह भी है और काल की तीनों विधाएँ भी हैं, लेकिन वह टस से मस नहीं होता– ***'न कित आएबो, न कित जाएबो।'*** परिधि के किसी भी बिन्दु को केन्द्र-बिन्दु से मिला दें, तो वह अर्धव्यास हो जाएगा, चाहे वह बिन्दु किसी भी समय, स्थान अथवा स्थिति में हो। काल-चक्र का प्रत्येक बिन्दु, केन्द्र-बिन्दु से समान दूरी पर है और केन्द्र

को मिल कर उसे छूते ही अर्धव्यास हो जाता है। यदि वह और आगे बढ़ कर परिधि के विपरीत बिन्दु को छू ले, तो वह **व्यास** बन जाता है। व्यास सद्‌गुरु को कहते हैं। काल-चक्र के विपरीत बिन्दु हैं—सुख-दुःख, लाभ-हानि, जन्म-मृत्यु, मिलना-बिछुड़ना, पाप-पुण्य, रात-दिन आदि-आदि। इस प्रकार परिधि के दो पूर्णतः विपरीत बिन्दु यदि केन्द्र से होते हुए परस्पर मिलें, तो वह रेखा **व्यास** कहलाती है। यदि केन्द्र से होते हुए नहीं मिले तो **बकवास** होंगे। केन्द्र से गुजरने के कारण वे बिन्दु व्यास से मिल गए और वे दोनों बिन्दु भी केन्द्र-बिन्दु की भाँति समय, स्थान और स्थिति से परे हो गए। इस प्रकार उन दोनों की चमक और मूल्य बढ़ जाता है। सद्‌गुरु एक तो केन्द्र-बिन्दु का स्वामी है और काल-चक्र की परिधि के दोनों विपरीत बिन्दुओं का स्वामी भी है। सद्‌गुरु का स्पर्श, दृष्टि, प्रसाद, श्रवण, दर्शन, उसकी डाँट-फटकार, प्रेम सब कुछ हितकारी होता है।

केन्द्र-बिन्दु काल-चक्र का है और काल-चक्र से बाहर है। किसी भी समय काल की तीन विधाओं (समय, स्थान, स्थिति) से बँधा काल-चक्र का कोई भी बिन्दु यदि केन्द्र से मिल जाए, तो वह समय, स्थान और स्थिति से परे हो जाएगा। वह भी एक समय होगा, उस समय को **अकाल-काल** कहा गया है। अकाल-काल, काल में वह समय है जिसमें हम स्थान, स्थिति और समय से परे होते हैं। जब काल में बँधा हुआ कोई बिन्दु सद्‌गुरु-कृपा से किसी समय में केन्द्र से मिलता है, तो वह बिन्दु अकाल-काल स्थिति में आ जाता है। वह न केवल समय से परे होगा, बल्कि स्थान और स्थिति से भी परे हो जाएगा। वास्तव में यह काल के समय में विशिष्टतम समय है, जिसमें वह बिन्दु स्थित्यातीत, स्थानातीत (देशातीत) और समयातीत (कालातीत) हो जाएगा।

केन्द्र-बिन्दु से ही परिधि के समस्त बिन्दु निर्देशित व संचालित होते हैं। काल-चक्र के समस्त बिन्दु स्वयं में पृथक्-पृथक् समय, स्थान और स्थिति, तीनों विधाओं से बँधे हैं। घड़ी की तीन सुइयों (घण्टा, मिनट, सैकेण्ड) का स्थान और स्थिति देखकर हम समय बताते हैं। केन्द्र-बिन्दु जो

समय, स्थान और स्थिति तीनों सुइयों को संचालित कर रहा है, स्वयं में तीनों से परे है। जीवन के काल-चक्र की समय, स्थान और स्थिति की तीनों सुइयाँ वास्तव में अकाल (केन्द्र) द्वारा संचालित होती हैं। काल-चक्र में भ्रमित होकर भ्रमण करते हुए हमें किसी भी समय, किसी भी स्थान पर अथवा किसी भी स्थिति में अपने सद्‌गुरु का ध्यान अथवा **ध्यान सा** आ जाए, चिन्तन अथवा चिन्तन सा हो जाए, हम उससे जुड़ जाएँ, तो वह भी एक स्थिति होगी जो स्थित्यातीत स्थिति होगी। एक स्थान होगा जो स्थानातीत या देशातीत होगा और वह भी एक समय होगा जो कालातीत अकाल-काल होगा। जिस समय में हम उस असमय बिन्दु से जुड़ गए, तो उसी क्षण दैवीय कानून के अनुसार जहाँ भी, जैसे भी हों स्थित्यातीत, कालातीत और देशातीत हो जाएँगे। यह समाधि है। यह हमारी Nothingness की अवचेतना है। इसके लिए Nothingness शब्द का प्रयोग किया है। Because it is beyond, deprived and devoyed of time, place and situation. लेकिन वही सब कुछ है और सब कुछ का स्वामी है। वह **'सब कुछ'** का स्वामी इसलिए है, क्योंकि वह **'कुछ नहीं'** है। इन 21 प्रकार की समाधियों में 7 समय की हैं, 7 स्थान की है और 7 स्थिति की हैं। Samadhi is to be conscious about your nothingness. That nothingness is regulater of our everything. यही 'कुछ नहीं' शिव की अतिशक्ति विरक्ति है।

देह के नाम-रूप की अवचेतना में हमने संसार निर्मित कर लिया। देह के नाम-रूप के विषय में Conscious होते ही देह सहित जगत प्रकट होता है। जैसे ही उस Consciousness में हम ईश्वर या सद्‌गुरु से जुड़ जाते हैं, तो हम नाम-रूप की देह सहित जगत की अवचेतना से परे हो जाते हैं। देह सहित जगत तीनों कालों (वर्तमान, भूत, भविष्य) में वस्तुतः है नहीं, मात्र नाम-रूप की अवचेतना में आने पर प्रकट होता है। सुषुप्ति में यद्यपि हम देह सहित जगत से परे होते हैं, लेकिन उस अवस्था में हम स्वयं अपने से भी विमुख होते हैं। इसलिए निद्रा जड़ता है। In sleep we are not conscious

about the name and form of our body and the world, but in Samadhi we are conscious about our ownself, not our body. In that self consciousness we are conscious about Nothing. That is awareness. जितनी अनुभूतियाँ हैं, वे Awareness में होती हैं।

अनुभूतियों का वर्णन अकाल-काल में होता है। अनुभूति शब्दरहित नाद है। उस 'कुछ नहीं' का वर्णन शब्दों द्वारा होगा। उन शब्दों का श्रवण, चिन्तन-मनन, स्वाध्याय, नित्याध्यासन जब होगा तो उस अवस्था में हमारी स्थिति अकाल-काल में होगी। अकाल-काल की स्थिति ही हमारा **'जीवन'** है, अन्यथा मृत्यु है। जीवन की मैंने परिभाषा दी थी, जीव + न = जीवन अर्थात् मैं जीव नहीं, विशुद्ध जीवात्मा हूँ। हम जीव तब बनते हैं, जब नाम-रूप की अवचेतना में आते हैं। तब देह सहित जगत प्रकट होता है। उसी अवचेतना में किसी भी समय, स्थान और स्थिति में जब हम सद्गुरु या इष्ट से जुड़ जाते हैं, तो वह हमारी Nothingness की Consciousness है। इस Nothingness की Consciousness में हमारी पंच-महाभूतों की देह में समानतया समाहित शिव की अतिशक्ति वैराग की प्रतिनिधि अदृश्य भस्मी चेतन हो जाती है।

समस्त वक्तव्य का सार है, कि काल पूर्णतः अकाल के अधीन है। होश सम्भालने पर जब मानव अपने समय को भूल कर सम्पूर्ण जीवन की समस्त गतिविधियों, क्रियाओं एवं सद्गुरु के निर्देश में कराये गए समस्त प्रकरणों (प्रक्रियाएँ) के माध्यम से उस **'कालेश्वर'** को समर्पित हो जाता है, तो अकाल उससे बँध जाता है। **अकाल उसके हर समय, स्थान और स्थिति में उसके साथ होगा। यही जीवन-दर्शन, सद्गुरु-दर्शन, इष्ट-दर्शन है, यही उसका सार है।** आर्थिक, मानसिक, बौद्धिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, शारीरिक और अन्यथा किसी भी स्थिति-परिस्थिति, समय और स्थान में जब हम, सब कुछ मात्र ईश्वर की लीला के रूप में ही देखते हैं, गुरु की कृपा के रूप में ही देखते हैं, तो वहाँ काल का बन्धन नहीं रहता।

सहज जड़ पंच-महाभूत—पृथ्वी, जल, आकाश, वायु एवं अग्नि स्वतः ही अकाल से बँधे हैं। समय, समय से, स्थिति, स्थिति से और स्थान, स्थान से बँधा है। किस समय, किस स्थान और किस स्थिति में क्या-क्या होना है, वह पहले ही हो चुका है। हमसे जो करवाया जाना है, करवा लिया जाता है। निर्वाण स्थिति वह है, जब हम होश सम्भालने पर परिपक्व होश में यह Realise कर लें, कि हमारा जीवन-काल, अकाल के अधीन है। मात्र जानना और मानना पर्याप्त नहीं है। इसका रूह में आत्मसात् होना परमावश्यक है।

नाम-रूप की अवचेतना की विकृत मानसिकता में जब हम अपनी देह को व्यष्टि मानकर तद्रूप हो जाते हैं, कि मैं अमुक-अमुक (देह का नाम-रूप) हूँ, तो देह के काल को अपनी घड़ी के समय से बाँधने का असफल प्रयास करते हैं। मैं एक नाम-रूप की देह हूँ और जगत मुझसे पृथक् है, यह अवचेतना में भी विकृत एवं निकृष्टतम मानसिक स्थिति है। I am one out of all. विकृत अवचेतना में मानव हमेशा चिन्तित, भयभीत, शोकाकुल ही रहता है और रहेगा। भूत के शोक और भविष्य की चिन्ताओं के बोझों तले दबा उसका वर्तमान आच्छादित ही रहता है।

इससे ऊपर अवचेतना में ही एक दूसरी विकसित मानसिकता है, कि **'मैं'** (जीवात्मा) यदि देह के नाम-रूप की अवचेतना में हूँ, तो ही जगत है। मैं देह के रूप में हूँ, तो जगत है। यह अवचेतना का विकसित रूप है। I am one in all. तीसरी विस्तृत मानसिकता की अनुभूति समाधि एवं सद्गुरु-कृपा द्वारा होती है, कि जब मेरी देह और जगत नहीं है तब भी **'मैं'** तो हूँ। उस स्थिति में जब विचरण होगा तो वह अवचेतना की उच्चतम स्थिति है। उस स्थिति में हमारी अवचेतना, चेतना में रूपान्तरित होनी प्रारम्भ हो जाती है। मैं न देह हूँ, न जगत हूँ, इस भाव में भी हमारी देह होती है। वहाँ पर वही दिव्य देह होनी शुरू हो जाती है, जो संकर्षण युक्त और सुरभित होती है।

I am none in all. जब यह विशिष्ट मानसिक स्थिति किसी भी प्रकार से हो जाती है, उस समाधि अवस्था में जीवात्मा **'देह सहित जगत रहित'**

होता है। उस स्थिति से अवचेतना में आने पर उसे ज्ञात होता है, कि उस समय वह **'देह सहित जगत रहित'** था। Consciousness of Non-Consciousness is awareness I am none in all because of all in all इस स्थिति में हम सीधे परमात्मा के सम्मुख होते हैं। 'तू' 'तू' है, 'मैं' 'मैं' हूँ। 'तू' है तो 'मैं' हूँ। यह अनिर्वचनीय विश्राम की स्थिति है। हमें अनुभूति हो जाती है, कि कर-करवा परमात्मा ही रहा है। इस स्थिति की प्राप्ति परम विशिष्ट सद्गुरु-कृपा से ही सम्भव है। जिस प्रकार अविरल, निरन्तर गति करते हुए भी पंच-महाभूतों को यह ज्ञान नहीं है, कि वे कुछ कर रहे हैं इसी प्रकार युग पुरुष स्वयं नहीं चलते, वे चलाए जाते हैं, उनकी हर चाल-ढाल, विचार और भावों का संसार अनुसरण करता है। प्रवचन के प्रारम्भ में मैंने शिव-शक्ति-क्रीड़ा से प्रकट पंच-महाभूतों की दशानन गतियों का वर्णन किया था। निराकार का साकार में जब पंच-महाभूतों की व्यस्तता के समान दशानन प्राकट्य होता है, तो हमें आकार पर अधिकार हो जाता है। **अधिकार में आकार छिपा है, लेकिन आकार में अधिकार नहीं है।**

I am none in all. इस मानसिक स्थिति में भी एक काल होता है, जिसे अकाल-काल कहते हैं। जीवन के काल में उसकी गिनती नहीं होती। इस स्थिति की प्राप्ति के लिए विशिष्ट सद्गुरु-कृपा से हमें जीवन **में** भविष्यों के स्थान पर जीवन **का** निश्चित, परिलक्षित व दर्शित भविष्य चिन्तन में लाना होगा। जीवन में असंख्य और गणनातीत चाहतों के स्थान पर एक चाहत रखनी होगी, कि मैं सम्पूर्ण जीवन से क्या चाहता हूँ? जीवन में चाहतें पूरी होती रहती हैं, लेकिन चाहतें समाप्त नहीं होतीं और जीवन कभी भी समाप्त हो सकता है। जीवन की अवधि निश्चित होते हुए भी मेरे लिए पूर्णतः अनिश्चित है।

जीवन-काल में प्रभु ने भस्मी को अदृश्य रखा। जब हमारी भस्मी प्रकट हुई, तो जीवन ही नहीं रहा। भस्मी का क्षेत्र देहातीत है, इसलिए देह सहित जगत का वहाँ हमेशा के लिए बाध हो जाता है। आनन्द देहातीत है और देह की भस्मी भी देहातीत है। देह समाप्त होने के बाद अपनी भस्मी किसी ने

नहीं देखी। सबको ज्ञान है, कि देह की भस्मी अवश्य बनेगी, लेकिन देखी किसी ने नहीं। यह महा विचारणीय विषय है, कि ईश्वर ने यह इतना बड़ा परम गोपनीय रहस्य क्यों रखा? भस्मी को देह व जीवन से बाहर रखते हुए प्रभु ने स्पष्ट दिखा दिया, कि मानव होने के नाते तू जान ले, कि कभी भी तू भस्मी बन सकता है। यह तेरा निश्चित, परिलक्षित व दर्शित भविष्य है। देह सहित जगत के प्रपंच से बाहर आने का एक यही रास्ता है। साकार देह सहित जगत का निराकार शिव की अतिशक्ति विरक्ति की प्रतिरूप अदृश्य भस्मी है। यदि वह जीवन्त हो तो उसमें ईश्वर के समस्त गुण हैं।

सद्‌गुरु कहता है, कि तेरी देह की भस्मी देशातीत, कालातीत, लिंगातीत, धर्मातीत, कर्मातीत, कर्तव्यातीत, त्रिगुणातीत एवं मायातीत होगी। जीवन में तेरे सब कुछ का निश्चित अन्तान्त भस्मी रूप में 'कुछ नहीं' है। जब तेरा वह 'कुछ नहीं' बनेगा, तो तू नहीं रहेगा। इसलिए तू जीवन-काल में प्रभु से अपना वह **'कुछ नहीं'** माँग। तू जन्मों-जन्मान्तरों से पंच-महाभूतों की देह सहित जगत के प्रपंच में फंसा हुआ है। इसलिए अपनी देह की धारणा पर जीवन-काल में ही भस्मी की अवधारणा कर, कि तू भस्मी बन गया है। इस अवधारणा के लिए देह का होना परमावश्यक है। यह एक अवधारणा भी तू अवचेतन देह होने पर कर सकता है, लेकिन यह अवधारणा तुझे चेतना में ले जाएगी। अवचेतना से चेतना में आने का एकमात्र यही मार्ग है। तभी तू सृष्टि के प्रपंच (पंच-महाभूतों पर आधारित) का आनन्द ले सकता है। अतः प्रपंच से ही प्रपंच को निर्मूल कर। अवचेतना में देह की धारणा पर भस्मी की अवधारणा कर। साकार में निराकार की अवधारणा से तेरी पंच-महाभूतों की देह में अदृश्य रूप से समाहित भस्मी जीवन्त हो जाएगी। उसी समय तेरी देह का काल, ईश्वरीय-काल (अकाल-काल) में परिवर्तित हो जाएगा। यह अवधारणा तेरी अवचेतना को निगल जाएगी। अवचेतना में देह की धारणा हो गई और अवधारणा में तुझे चेतना मिल जाएगीः–

नाम-रूप की अवचेतना	–	देह-धारणा
भस्मी की अवधारणा	–	चेतना

भस्मी की अवधारणा होने के बाद जो देह दिखाई देगी, वह पहले वाली देह नहीं होगी और तद्नुसार जगत भी परिवर्तित हो जाएगा। धीरे-धीरे देह-धारणा में भस्मी की अवधारणा का जामन रंग लाएगा और अवचेतना में हुई देह-धारणा चेतना में रूपान्तरित हो जाएगी। फिर देह धारणा समाप्त हो जाएगी, अवधारणा परिपुष्ट हो जाएगी। जन्मों-जन्मान्तरों में परिपुष्ट हो चुकी देह धारणा अवधारणा द्वारा वैराग रूपी भस्मी में परिपुष्ट हो जाएगी। फिर देह धारणा हमेशा के लिए रुष्ट हो जाएगी और भस्मी की अवधारणा हृष्ट-पुष्ट और तुष्ट होकर अकाल-काल में ईश्वरीय लीला का रसास्वादन करेगी। मानव-देह धारण करके एक मात्र यही कर्म है, जो करम (कृपा) साध्य है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(28 अक्टूबर से 17 नवम्बर, 2007)

लय-प्रलय

मानव समस्त प्राणी-जगत में विशिष्टतम् ईश्वरीय चेतना युक्त बुद्धि से नवाज़ा गया है। लेकिन सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड में सबसे दुःखी, त्रसित, भयभीत और अनेकानेक, असंख्य एवं अगणित रोगों-दोषों से ग्रसित भी मानव ही है। इसका एकमात्र कारण यह है, कि होश सम्भालते ही जीवात्मा **(मैं)** को मानव-देह के साथ तद्रूपता हो गई, कि **''मैं यह देह (देह का नाम-रूप) हूँ और देह मेरी है।''** यह भाव आते ही यह चेतन से अवचेतन हो गया क्योंकि नाम-रूप की नश्वर और सतत् परिवर्तनशील देह को इसने (जीवात्मा ने) अपना स्वरूप समझ लिया।

देह बदलती रही। एक ही जन्म में कई रूप बदले। लेकिन देह की प्रत्येक स्थिति, अवस्था, विधा एवं परिवर्तन के साथ तद्रूपता के कारण जीवात्मा ने जन्मों-जन्मान्तरों में अपने जन्म से पहले व अपने मरने के बाद की देहों की भी कल्पना करके उस तद्रूपता की पुष्टि पर पुष्टि (परिपुष्टि) कर ली। मैं पूर्वजन्म में किए पापों का फल भुगत रहा हूँ। अब मैं बहुत परोपकार व पुण्य करता हूँ, ताकि आगामी जन्मों में सुख भोग सकूँ। मेरे बाद मेरा बेटा इस प्रकार कार्य करे, जिससे मेरा व्यापार देश-विदेश के कोने-कोने में फैल जाए। मेरा पोता और नाती सुख से रहें। मेरे कार्यों को मेरे बाद आगे बढ़ाया जाए। मैं मरने से पहले सबकी व्यवस्था कर दूँ। इन्हीं शोक और चिन्ताओं में आजीवन तथाकथित व्यस्त और वास्तव में अस्त-व्यस्त रहते हुए, इसने अमूल्य मानव-जीवन का अर्थ से निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ कर दिया।

हमारा सम्पूर्ण जीवन होश सम्भालने से लेकर होश के दौरान और होश गुम होने तक करना, पाना, खोना और होना—इन चार आयामों में चलता है। हमारे हर करने के पीछे दो **'होने'** होते हैं। एक तो किसी तथाकथित पदार्थ, प्राणी, धन-सम्पदा, पद-प्रतिष्ठा, डिग्रियाँ, नाम-यश, ज्ञान-ध्यान और इनसे सम्बन्धित किसी भी विधा की उपलब्धि होना अथवा खोना और दूसरे इनकी प्राप्ति अथवा खोने के बाद हमारी मानसिक स्थिति। आध्यात्मिक जगत में हम सकारात्मक दृष्टि रखते हैं, वस्तु की प्राप्ति **'पाना-पाना'** है और उसकी प्राप्ति न होना **'खोना-पाना'** है। हमारे किसी भी कृत्य का लक्ष्य एक तो यह होना है, दूसरे उसके बाद जो हमारी मानसिक स्थिति होती है, वह सबसे महत्त्वपूर्ण **होना** है।

उदाहरणतः, अमुक वस्तु प्राप्त हो गई, तो फिर मज़ा आ जाएगा अथवा नहीं प्राप्त हुई, तो मैं बरबाद हो जाऊँगा। अमुक वस्तु से पीछा छूट जाए, तो फिर मज़ा आ जाएगा अथवा यदि इस वस्तु से पीछा नहीं छूटा तो मैं कहीं का नहीं रहूँगा। किसी प्राप्ति के लिए साधन जुटाते हुए कोई कृत्य जिस प्रकार हम करते हैं या करवाते हैं, यदि वह प्राप्ति हो जाती है, तो इसे हम अपनी विचारशीलता, दूरदर्शिता या निर्णय क्षमता का परिणाम मान लेते हैं। वस्तु प्राप्त हो जाए और उसके बाद हमारी इच्छित मानसिक स्थिति भी बन जाए, तभी हम सफल अनुभव करते हैं। प्राप्ति हो जाए और मानसिक स्थिति वैसी न बने, तो हमारे हृदय में असफलता का अवसाद सा रहता है।

प्राप्ति होने तथा हमारी आकांक्षाओं के अनुरूप मानसिक स्थिति के होने में बहुत बाधाएँ हैं। कुछ भी प्राप्ति के उद्देश्य से यदि हम कर्ता भाव में आते हैं, उसमें हमारे मानस से क्रोध, लोभ, मोह, अहं, भय, विक्षेप, त्रास, चिन्ता, तनाव, ईर्ष्या, वैर-वैमनस्य आदि भावों का प्रस्फुटन होना प्रारम्भ हो जाता है। विचारों में विभिन्न प्रकार के काल्पनिक प्रतिरोध आने प्रारम्भ हो जाते हैं, अमुक व्यक्ति मेरी सहायता करेगा या नहीं, अर्थ प्रबन्धन होगा या नहीं, स्थान उपलब्ध होगा या नहीं, आदि-आदि। इस प्रकार कार्य की पूर्ति

होने तथा कुछ प्राप्ति (खोना या पाना) होने के मध्य इस प्रकार के मिले-जुले विरोध, अनुरोध, अवरोध, प्रतिरोध, गतिरोध आदि खड़े हो जाते हैं। अपनी कल्पनाओं को यथार्थ में प्रकट देखने के लिए हम, उपर्युक्त सभी नकारात्मक भावों एवं विचारों से युक्त हुए कर्ता भाव में कर्म करते हैं। कार्य के दौरान यदि वे समस्याएँ सुलझ भी जाती हैं, तो ज्ञात एवं अज्ञात अन्य ऐसी समस्याएँ खड़ी होती रहती हैं, जिनके बारे में हमने सोचा भी नहीं होता। कुछ सहायक एवं प्रशंसक मिलते हैं और कुछ विरोधी-प्रतिरोधी एवं गतिरोधी भी मिलते हैं।

वस्तु प्राप्त होना हमारे हाथ में नहीं है और प्राप्त होने पर उसके बाद मानसिक स्थिति क्या होगी? वह बिल्कुल भी हमारे हाथ में नहीं है। हो सकता है हमें लगने लगे, कि मैं इसके बिना बहुत सुखी था। कभी-कभी प्राप्ति का रख-रखाव एवं सुरक्षा की चिन्ता हमारी रातों की नींद उड़ा देती है। कृत्य के दौरान इस **होने** की कल्पना हम कर ही नहीं सकते। हर पाने-खोने के बाद हमारी यह मानसिक स्थिति ही अक्सर हमें सबसे अधिक विक्षिप्त एवं चिन्तित करती है।

हमें इच्छित वस्तु प्राप्त हो जाती है, तो प्राप्ति के साथ कृत्य तो समाप्त हो जाता है, लेकिन कार्य के दौरान जो मानसिक भाव एवं विचार थे, कृत्य की समाप्ति के बाद वे सब उस प्राप्ति के साथ लग जाते हैं। हमारे लिए उस वस्तु का महात्म्य (भाव) बहुत बढ़ जाता है। जिसका भाव बढ़ गया, उसका भोग हम कर ही नहीं सकते। परिवार के सभी लोग भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएँ करते हैं। कृत्य के दौरान स्वार्थवश लगे झूठे-सच्चे सहयोगी अपना हिस्सा या लाभ माँगने आ जाते हैं। **जब हम कर्ता बनेंगे, हमें भोक्ता भी बनना पड़ेगा।**

हमने प्राप्ति की कल्पना की और उसके बाद ऐसा हो जाएगा, इसकी कल्पना की। कार्य के दौरान कर्ता भाव में ईश्वर-विमुख रहे, कई सच्चे-झूठे आश्वासन लोगों को देकर अपने कार्य में सहयोगी बनाया। फिर प्राप्ति हो गई, तो उसका अभिमान हो गया और उसके बाद कुछ प्रशंसा मिली, तो

उसका अहंकार हो गया। प्राप्ति की सुरक्षा एवं रख-रखाव का भय एवं चिन्तायुक्त विक्षिप्तता बनी रही। साथ ही जो प्रशंसा और वाह-वाही मिली, उस मान-सम्मान को बनाए रखने का तनाव भी हुआ। प्राप्ति नहीं हुई तो असफलता के अवसाद के साथ-साथ लोगों के ताने भी सहने पड़े। हर कदम पर हम जकड़े और पकड़े गए।

एक **'होना'** ऐसा है, जो समस्त जीवन में जो कुछ होगा उसका अन्ततः यही होना है। वह है—हमारी देहातीत स्थिति, हमारी देह की भस्मी। यह **'भस्मी'** हम सबका निश्चित, परिलक्षित और दर्शित भविष्य है। और कुछ हो न हो, वह होगा **ही**। उसमें कोई कल्पना, परिकल्पना, मान्यता, योजना, परियोजना, लक्ष्य आदि बनाने की आवश्यकता नहीं है। जीवन-काल **में** किसी प्राप्ति का **होना** और उसके बाद जो हमने सोचा था, उस मानसिक स्थिति का **होना**—दोनों कल्पनाएँ हैं और जीव भाव की निरर्थक मान्यताएँ हैं। अन्ततः जीवन **का** जो कुछ होना है वह अवधारणा है, वह कल्पना नहीं है। हमें सुनिश्चित अवधि में बँधी देह मिली है, लेकिन उसकी अवधि हमारे लिए अनिश्चित है। कार्य प्रारम्भ करने और पूर्ति होने की भी हमारी अपनी काल्पनिक समय अवधि होती है, कि मैं लक्ष्य की प्राप्ति इतने समय में कर-करा लूँगा। लेकिन जीवन के इस भविष्य की अवधि हम निश्चित ही नहीं कर सकते। कोई भी श्वास, अन्तिम श्वास हो सकती है। इसका हमारी योजनाओं, परियोजनाओं, महत्त्वाकांक्षाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है और इसके लिए हमें कुछ जुटाना नहीं पड़ता। जीवन में मैं कुछ समेट सकूँ न समेट सकूँ, जो कुछ **समेटा** है, उसका **मलियामेट** अवश्य होना है, यही जीवन का **Ultimate** है। यह होगा ही।

जीवन में विभिन्न भविष्य हमारी कल्पनाएँ एवं मान्यताएँ हैं। मृत्यु जीवन का निश्चित व दर्शित भविष्य है, लेकिन परिलक्षित नहीं है। क्योंकि मृत्योपरान्त देह की भस्मी बनती है। भस्मी हमारा निश्चित, दर्शित व परिलक्षित भविष्य है। **जीवन-काल में जीवन के इस अन्तिम भविष्य की अवधारणा को भस्मीयोग या लययोग कहते हैं।** लय-योग का प्रतिफल ही

प्रलय है। लय का अर्थ है, विध्वंस या मलियामेट। हमारे **बाद** सब कुछ का **बाध** हो जाता है। हम अक्सर जीवन-काल में सोचते हैं, कि मेरे बाद क्या होगा? वस्तुतः मेरे बाद सब कुछ लय हो जाएगा, इसलिए मेरे लिए **प्रलय** हो जाएगी। एक व्यक्ति का **'लय'** उसके लिए **प्रलय** है। वहाँ युग-युगान्तर समाप्त हो जाते हैं। मृत्युयोग और लययोग में अन्तर है और इसके प्रतिफल में भी बहुत अन्तर होता है। यदि इष्ट-कृपा व सद्‌गुरु-कृपा से हमारा **लययोग** में ध्यान एकाग्र हो जाए, तो इसका प्रतिफल प्रलय है। उस समय हम **'प्रलय'** की मानसिकता में होते हैं, जहाँ पंच-महाभूतों की देह का समस्त प्रपंच लीन हो जाता है।

जीवात्मा एक ही है। यदि हम आत्म-चिन्तन करना चाहते हैं, तो स्वयं को एक व्यक्ति के रूप में लेकर चलें। उस एक **'मैं'** में समस्त समष्टि समाहित है और उसी पर सारी सृष्टि आधारित है। जब देह-रूप में **'मैं'** नहीं होता, तो साकार सृष्टि नहीं होती और जब मैं देह रूप में नहीं रहूँगा, तो सृष्टि भी समाप्त हो जाएगी। इसलिए मेरे बाद सब कुछ का **बाध** हो जाएगा। इष्ट-कृपा से जीते जी भस्मी की अवधारणा से इसका अनुभव पहले हो जाता है। अतः लययोग का प्रतिफल प्रलय है।

जीवात्मा, नाम-रूप की देह के साथ तद्‌रूपता में जन्मों-जन्मान्तरों में परिपुष्ट देह धारणा के कारण जीव-सृष्टि में पतित हो जाता है। जीव बनकर जब वह यह सोचने लगता है, कि मेरे बाद ऐसा होना चाहिए अथवा ऐसा नहीं होना चाहिए तो इस प्रकार की चिन्ताओं से ग्रसित वह अपनी ही बनाई जीव-सृष्टि में घूमने लगता है, क्योंकि वह मान लेता है कि मेरे बाद भी कुछ होगा। यही जन्म-जन्मान्तरों का काल-चक्र है, जिसका कोई अन्त नहीं है। पंच-महाभूतों की समस्त सृष्टि प्रपंच है। इस समस्त सृष्टि में जीवात्मा को दी गई एक देह **भी** है और समस्त सृष्टि का आधार वह एक देह **ही** है। देह है तो सृष्टि है, देह नहीं है तो सृष्टि भी नहीं है। देह सहित जगत की एक साथ प्रस्तुति होती है, जिसका मूल वह एक देह ही है। पंच-महाभूतों का सब कुछ प्रपंच है और लय-योग अथवा भस्मी-योग का प्रतिफल प्रलय है। बस

एक **'तू'** (ईश्वर) और एक **'मैं'** (जीवात्मा) अनादि काल से **थे, हैं** और **रहेंगे।** यह **'थे', 'हैं'** और **'होंगे'** त्रिकाल (भूत, वर्तमान, भविष्य) का भी देह-भाव के कारण विभाजन होता है। प्रलय में काल रहता ही नहीं। आध्यात्मिक जगत में प्रलय **'लय'** शब्द का द्योतक है।

जब जीवात्मा ने नाम-रूप की एक देह के साथ स्वयं को पहचाना, कि मैं अमुक-अमुक नाम-रूपधारी हूँ, तो वह उस देह के साथ देश, काल, धर्म, कर्म, कर्तव्य, सम्बन्ध, लिंग और माया के तीनों गुणों (सतोगुण, रजोगुण व तमोगुण) में **बँध** गया। खुदा की सन्तान जीवात्मा अपने पद से अपदस्थ होकर **बन्दा** (जीव) बन गया। वह महाचेतना ही महा अवचेतना में रूपान्तरित हो गई और जीव बना हुआ जीवात्मा स्वनिर्मित जीव-सृष्टि में घूमने लगा। इस जीव-सृष्टि के दो पहलू थे—**देह रूप में मैं और उस समय की मानसिकता पर आधारित जगत।** देह और जगत साथ-साथ प्रकट और लीन होते हैं तथा समय-समय पर विभिन्न मानसिकताओं के अनुसार बदलते रहते हैं।

जीवन में यह मात्र हमारी मानसिकता ही होती है, कि मेरे बाद यह कार्य कोई पूरा करे। इस प्रकार की कोई भी मानसिकता लेकर जब जीवात्मा देह छोड़ता है, तो वह जीव-सृष्टि में रहता है। कल मुझे ऐसा करना है अथवा कल मैंने यह किया था, यह मैं वर्तमान में ही कहता हूँ। कार्य जब भी होता है वर्तमान में ही होता है। भूत का कल भी उस समय वर्तमान था और भविष्य का कल भी उस समय का वर्तमान होगा। रात्रि की निद्रा में हम अपने निराकार स्वरूप में होते हैं, जहाँ कोई भूत, भविष्य, वर्तमान नहीं होता। हम अकाल स्थिति में होते हैं। उसके बाद जो स्वरूप लेते हैं, वह स्वरूप वह नहीं होता जो पिछले दिन निद्रा आने से पूर्व था। रात्रि को निद्रा में सब कुछ लय हो जाता है। पुनः पंच-महाभूतों में नई सृष्टि बनती है, जो जीवात्मा के लिए उसकी नई प्रपंचमय देह सहित प्रकट होती है। यह नई सृष्टि कैसी होगी, यह सृष्टिकर्ता ही जानता है। निद्रा एक Silent Gap है, जहाँ सब कुछ लय हो जाता है। हमारी यह वृत्ति कि कल मैंने ऐसा किया

था और कल मैं यह सारा काम समाप्त कर दूँगा, हमें निद्रा से उठा कर उसी कार्य में संलग्न कर देती है। जीव भाव में आते ही जीवात्मा में अधूरापन आ जाता है, यद्यपि इस अधूरेपन में भी यह पूर्ण ही होता है:–

''ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते,
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।''

हम सोचते हैं, कि मैंने अपने पिता, दादा, परदादा की गद्दी सम्भाली है। मेरे बाद मेरा बेटा, पोता सम्भालेगा। पिता, दादा, परदादा, बेटा, पोता की **'मैं'** (जीवात्मा) एक ही है और जीव-भाव में यह सब उसी की जीव-सृष्टि है। हमारी कल्पनाएँ हमारी अवधारणा बन गईं, जो अवधारणा होनी चाहिए थी वह हुई नहीं। हमारे विभिन्न भाव एवं स्वभाव साकार बने और उन्हीं के तहत हम वहीं-वहीं पुनः पुनः, कालचक्र में भटक रहे हैं। सुनी-सुनाई बातों का हम भूत (इतिहास) बना लेते हैं, कि मेरे बाप, दादा ने ऐसा किया था। यह हमारी परंपरा है और भविष्य खड़ा कर देते हैं, कि मैं चाहता हूँ, कि मेरे बाद मेरे बेटे और पोते भी इसी प्रकार धर्मनिष्ठ होकर कार्य करते हुए जीवन में उन्नति करते रहें। देह धारणा में यह समस्त नाम-रूप की सृष्टि मात्र हमारी धारणा एवं दृष्टिकोण है।

मानव को कभी यह चिन्ता हो जाए, कि मेरे बाद मेरा क्या होगा? मैं सम्पूर्ण जीवन से क्या चाहता हूँ? मैं क्या व किसलिए कर रहा हूँ और कब तक करूँगा तथा करने-कराने के बाद जो चाहता हूँ वह मिल भी जाए तो क्या हो जाएगा? ये चिन्तन भौतिक जगत से अध्यात्म में प्रविष्टि की दस्तक बन जाएगा। जीवन में मानव ने विभिन्न चिन्ताओं के साथ यह भी सोचा, कि मेरे बाद मेरे सगे सम्बन्धियों का क्या होगा, यह नहीं सोचा कि सगे सम्बन्धी तो तभी होंगे जब मेरी देह होगी। यदि यह चिन्ता हो जाती, कि मेरे बाद मेरा क्या होगा, तो वहाँ से इसकी देहाध्यास व देहाधिपत्य में हृष्ट-पुष्ट और तुष्ट हुई देह-धारणा रुष्ट या समाप्त होनी आरम्भ हो जाती। मेरे बाद मैं भस्मी हो जाऊँगा। मेरी भस्मी मेरी देह की ऐसी देहातीत स्थिति और ऐसा निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य है, जिसका कोई भूत, भविष्य

एवं वर्तमान नहीं है। भस्मी एक देह से बनती है, लेकिन भस्मी होकर वह किसी एक देह की नहीं रहती।

किसी विशिष्ट जन्म में विशेष सद्गुरु-कृपा से जीवन-काल में मानव में यह विचार चिन्ता बनकर कौंधने लगता है, कि मेरे बाद मेरा क्या होगा? तब यह देह धारणा के दौरान देह के निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य की अवधारणा करता है, कि मैं भस्मी हूँ और भस्मी मेरी है। देह की जो भस्मी बनेगी ही, उस अवधारणा को **'मैं'** (जीवात्मा) देह की धारणा पर जीते जी आरोपित करता हूँ। जन्मों-जन्मान्तरों में देह के साथ तद्रूपता में मेरी देह-धारणा पुष्ट पर पुष्ट (परिपुष्ट) हो चुकी है। उस पर मैं अपनी देह की भस्मी की अवधारणा को परिपुष्ट करता हूँ। **भस्मी की अवधारणा को परिपुष्ट करने के लिए देह-धारणा का आधार होना आवश्यक है।** मेरी मृत्यु के बाद यद्यपि मेरी देह धारणा बनी रहती है, लेकिन मैं उस भस्मी का कोई भी लाभ नहीं उठा पाऊँगा। जीवन-काल में देह के रहते देह-धारणा में, मैं जानता हूँ, कि देह की भस्मी बनेगी। जब वह भौतिक भस्मी प्रकट होगी, तो देह नहीं होगी। यद्यपि भस्मी देह की ही होगी और देह-धारणा में मुझे आदत पड़ी हुई है, कि मैं देह हूँ और देह मेरी है। जब मैं भस्मी होऊँगा, तब यह नहीं कह सकूँगा, कि मैं भस्मी हूँ और भस्मी मेरी है। यदि उस समय मुझे चेतना हो तो मैं यह नहीं कहूँगा, कि मैं अमुक-अमुक की भस्मी हूँ, क्योंकि भस्मी देह की होगी, लेकिन भस्मी बनने पर वह किसी भी एक देह की नहीं होगी। भस्मी के लिए किसी का भी नाम लिया जा सकता है। वह भस्मी यदि बोल सकती हो, तो यही कहेगी, कि **''आज तक युगों-युगान्तरों में जो मर चुके हैं, उनका मैं वर्तमान हूँ, आज जो जीवित हैं, उनका भविष्य हूँ और आज के बाद जो पैदा होंगे, उनका अतीत हूँ।''**

पंच-तत्त्वों की देह जब पंच-तत्त्वों में पूर्णतः विलीन हो जाएगी, तो भस्मी प्रकट होगी। लेकिन देह धारणा मुझे दूसरी देह व जगत धारण करवा देगी। जीवन-काल में मुझे यह होश, देह धारणा पुष्ट करने के लिए नहीं दी गई। बल्कि परम विशिष्ट सद्गुरु-कृपा से होश के दौरान मैं जब देह धारणा

के आधार पर देह के निश्चित, परिलक्षित, दर्शित देहातीत भविष्य **'भस्मी'** की अवधारणा परिपुष्ट करता हूँ और इसी को जीवन का लक्ष्य बना लेता हूँ, तो मेरी देह-धारणा और प्रारब्ध दोनों समाप्त हो जाते हैं। इसलिए कदाचित् प्रभु ने मुझे मानव-देह दी है।

प्रारब्ध, देह की धारणा **में** और देह की धारणा **से** ही बना तथा देह के दौरान भुगतना पड़ता है। यह आध्यात्मिक विज्ञान है। प्रारब्ध की जड़-चेतन की ग्रन्थि में अंकित लेखे-जोखे के अनुसार मुझे मानव-देह सब प्रकार से सुसज्जित मिली है। देह का निर्माण प्रभु ने ही किया और मेरे होश सम्भालने तक देह के लिए प्रभु ने ही करवाया। मुझे होश आई है, एक दिन गुम भी अवश्य होगी और उसके बाद सब कुछ प्रभु ही करेंगे। अतः देह की धारणा के दौरान मैं अवधारणा कर लूँ, कि मैं भस्मी हूँ और भस्मी मेरी है तो मैं देह हूँ और देह मेरी है, की धारणा हटनी शुरू हो जाएगी। तब भस्मी की अवधारणा मेरी धारणा बन जाएगी और मैं अपने विशुद्ध जीवात्मा स्वरूप का रसास्वादन करते हुए जीवनामृत का पान कर सकता हूँ।

मृत्युयोग और भस्मीयोग वह आनंदमयी मानसिक भूमि है, जिसमें वैराग का बीज पल्लवित व पोषित होता है। सत्संग की खाद और सद्गुरु की कृपा की सतत् सिंचाई होती रहे, तो वहाँ प्रपंच के **'लय'** से प्रलय उत्पन्न हो जाता है। फिर वहाँ भूत, भविष्य, वर्तमान कुछ नहीं रहते। भूत-भविष्य का आधार हमारा वर्तमान है। इसकी कड़ी टूटने पर सम्पूर्ण काल का बाध हो जाएगा और अकाल काल में प्रविष्टि हो जाएगी। मृत्यु का ध्यान किया, तो जीवात्मा अमरत्व को प्राप्त हो जाएगा और विशिष्ट सद्गुरु-कृपा से भस्मीयोग में ध्यानस्थ हुआ, तो अपने **'शिव'** पद को पा लेगा।

देवाधिदेव महादेव शिव सदा **'लय'** में रहते हैं, इसलिए इन्हें प्रलयंकर कहते हैं। प्रलय आडम्बरशून्य, सृष्टिशून्य, देहातीत व आनन्दमय स्थिति है। सद्गुरु-कृपा से जीवात्मा **'लययोग'** द्वारा देह में रहते हुए उस स्थिति की अनुभूति कर लेता है। यह जो **बाद** की धारणा है, कि कल मैं ऐसा करूँगा

अथवा मेरे बाद ऐसा होना चाहिए। ये जो चाहतों के व्यर्थ के बन्धन हैं, इनका जीते जी बाध हो जाए। सद्गुरु-कृपा से जब जीवन-काल में हम किसी प्रकार से यह अनुभव कर लें, कि जो कुछ तथाकथित मैं (देह के रूप में) या मेरा (देह पर आधारित जगत) है, वह **'कुछ नहीं'** है। हमारे **बाद** कुछ रहता ही नहीं। सब कुछ का **बाध** हो जाता है। भस्मी योग द्वारा उस बाध अथवा देहातीत स्थिति की अनुभूति देह काल में ही हो जाती है।

जीवन-काल में बाद का बाध होना ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। यह तभी सम्भव होगा, जब **जीवन-काल** में हम देह के **'निश्चित'** भविष्य भस्मी को अवधारणा द्वारा **'सुनिश्चित'** कर लें, उस परिलक्षित को **'लक्ष्य'** बनाकर, दर्शित को **'दृश्यमान'** कर लें। इस प्रकार हमारे जीवन-काल में जब अकाल (भस्मी) का जामन लगेगा तो काल (भूत, भविष्य, वर्तमान) अकाल बन जाएगा। उस अकाल स्थिति की काल में अनुभूति होने पर **बाद** का **बाध** (प्रलय) हो जाएगा। वहाँ हमारा भूत, भविष्य ही नहीं देह-रूप में वर्तमान भी नहीं रहेगा। इस अकाल-काल स्थिति में प्रलय की अनुभूति होती है और जीवात्मा और परमात्मा एक दूसरे के सम्मुख होते हैं। लय योग का प्रतिफल प्रलय है, उसके बाद देह की धारणा ही नहीं रहती। देह के बाद का क्षेत्र देहातीत **'भस्मी'** है। देहातीत अर्थात् जहाँ देह सहित जगत अतीत की वस्तु हो जाए। भस्मी के सारे गुण जीवात्मा के स्वरूप से मिलते हैं। ***'निराकार रूपं शिवो हम् शिवो हम्।''***

कुछ नहीं (भस्मी) को सब कुछ के रहते जब हम अवधारणा द्वारा अनुभव कर लेते हैं, तो जीव-सृष्टि समाप्त हो जाती है। जीवात्मा हर दिन 'नित नूतन देह सहित जगत' की ईश-सृष्टि का आनंद लेता है। जो हैं नहीं, **'भस्मी'** उनका **वर्तमान** है, जो रहेंगे नहीं, उनका **भविष्य** है और जो अभी पैदा ही नहीं हुए, उनका **भूत** है। अभी जो हैं, उनका भविष्य यह भस्मी तभी होगा जब वे रहेंगे नहीं। अब जो है नहीं उनका वर्तमान है तथा उनका भूत है, जो अभी हुए ही नहीं। **'लय-योग'** का यह प्रकरण मात्र कृपा-साध्य है। **'लय-योग'** नाम-रूप की सृष्टि का संहार है।

प्रवचन के प्रारम्भ में मैंने जीवन-काल में दो काल्पनिक **'होनों'** के कारण हुए कर्ता भाव और उसके दुष्परिणामों की चर्चा की थी। जब हम कर्ता बनते हैं, तो हमारे मानस का आनन्द और बुद्धि की चेतना आच्छादित हो जाती है। कृत्य, प्राप्ति और उसके बाद जो कुछ भी होगा, वह सब असद् ही होगा। सम्पूर्ण जीवन 'सब कुछ' समेटने में, हम ईर्ष्यालू, घड़ियालू (घड़ियाल के आँसू बहाना), घड़ीयालू (घड़ी से बँधे हुए), झगड़ालू और कभी-कभी आडम्बर में दयालु भी बने रहते हैं। उस सबका Ultimate यह मलियामेट (भस्मी) ही है। जो तब होगा, जब मैं उसे देखने के लिए नहीं रहूँगा। उसकी यदि जीवन-काल में ही नित्य कुछ क्षणों में हम अवधारणा करें, कि मैं भस्मी बन गया हूँ, तो अपने सामने समस्त समेट को मलियामेट होता अनुभव करेंगे, क्योंकि हमारे लिए हमारा 'सब कुछ' एक ही हमारी अपनी देह की अवचेतना (कि मैं अमुक-अमुक हूँ) की असद् मान्यता पर खड़ा हुआ रेत का महल है।

लय योग के दौरान हम ईश्वर से जुड़ जाते हैं। हमारे और ईश्वर के बीच में हमारे कृत्यों के दौरान उठे वैचारिक प्रदूषण और मानसिक विकृतियाँ ही सबसे बड़ी बाधा बनती हैं। हमारे समस्त जीवन में भस्मी ही ऐसी प्राप्ति है, जो होगी ही। इसकी अवधारणा के मध्य तीनों कालों (भूत, भविष्य, वर्तमान) की देह सहित समस्त जगत अर्थात् हमारा सम्पूर्ण समेट (कि मेरे बाद मेरे दुकान, मकान, धन-सम्पदा आदि का क्या होगा) बाधा बनकर खड़ा हो जाता है। जो भाव और विचार अन्य कार्यों के बीच नहीं आते, वे भस्मी की अवधारणा में अवश्य आते हैं। जो होना ही है, उसकी अवधारणा के मध्य हमारा सब कुछ बाधा बनने लगता है। हमारा चिन्तन इस दिशा में भी चलने लगता है, कि मैं अपना मकान, धन-सम्पदा, व्यापार-कारोबार आदि की वसीयत कर दूँ। अपने किसी बेटे-पोते के नाम Will कर के उसके उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाऊँ। हमारी संस्कृति में Will या वसीयत नाम की वस्तु है ही नहीं। हमारे यहाँ **'उत्तरदायित्व'** दिया जाता है, जो परम सद् की प्राप्ति के लिए जीते जी किसी सुयोग्य सुपात्र को देने की बात है। वहाँ

मरने के बाद का भाव ही नहीं है। जीवन में भविष्यों की चिन्ता में ये सब भाव एवं विचार आड़े आएँ या न आएँ, लेकिन यह जो भविष्य होगा ही, उसकी अवधारणा और चिन्तन में ये अवश्य आड़े आते हैं। जब वे आने बन्द हो जाएँ, तभी लययोग में स्थिति हो पाती है। **यह जीवन की परम उपलब्धि है, कि अपने सामने हम सारे समेट को मलियामेट कर दें।** हमारे लयसिद्ध महापुरुषों ने आत्मानुभूति से प्रलय का वर्णन किया है।

जब ध्यान में परम सद्गुरु-कृपा से अपनी देह को पंच-महाभूतों में विलीन होता हुआ देखते हैं, तो हमें पाँचों (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश) प्रलयों का ज्ञान हो जाता है। मैंने अपनी देह का पंच-महाभूतों के संगम से निर्माण होता हुआ नहीं देखा और पंच-महाभूतों में विलय होकर भस्मी होते हुए भी मैं नहीं देख पाऊँगा। जीते जी ध्यान में भस्मी की अवधारणा करने पर मेरा योग उस भस्मी के साथ होता है, जो मेरी देह सहित जगत की पंच-महाभूतों की समस्त सृष्टि के विलीन होने के बाद प्रकट होगी। विलीन से विलय हुआ और विलय से पाँचों प्रलयों का दिग्दर्शन हो जाएगा। लययोग में प्रलय **'असद्'** की होती है, **'सद्'** रहता ही है।

जब मेरी भस्मी की अवधारणा परिपुष्ट हो कर धारणा बन जाएगी, तो देह मेरे पास उस समय भी होगी। लेकिन वह देह मेरे विशुद्ध देशातीत, कालातीत, सम्बन्धातीत, कर्मातीत, धर्मातीत, कर्तव्यातीत, त्रिगुणातीत, मायातीत एवं ब्रह्माण्डातीत स्वरूप को स्वयं में समेटे हुए होगी। वह सद् दिव्य देह होगी। मेरी भस्मी समस्त दिव्य विभूतियों से विभूषित है, इसलिए मेरी देह भी ऐसी ही होगी। वह देह, देहाध्यास व देहाधिपत्य वाली देह न होकर भस्माध्यास व भस्माधिपत्य वाली देह होगी। वह **'विरक्त देह'** होगी। वह देह हर्ष, उल्लास, अभय, आरोग्यता सर्वसम्पन्नता, भक्ति, मस्ती, उत्साह, कृपा एवं आनन्द से ओत-प्रोत होगी। वह भस्मी धारणा वाली देह मुझसे आत्म-चिन्तन कराएगी। उस वैरागमयी वीतराग देह में स्वतः ईश्वर-भक्ति जाग्रत होगी। मेरे जीवन का **'अर्थ'** जब इस वैराग रूपी **'धर्म'**

की धारणा होगा, तो मुझे ईश्वर की **कामना** होगी। वैराग के बिना भक्ति मात्र छलावा एवं आडम्बर है। वैराग सिद्ध होने पर मात्र ईश्वर की ही कामना रहती है।

पहले मेरी भस्मी की अवधारणा इस चाहत से चली, कि देह से मैं क्या चाहता हूँ? मेरे बाद मेरा क्या होगा? भस्मी की अवधारणा परिपुष्ट होने पर देह-धारणा समाप्त हो जाएगी। देह होगी लेकिन वह विरक्ति युक्त और ईश्वर की कामना और भक्ति से सुरभित होगी। अन्ततः मैं मात्र ईश्वर को चाहता हूँ। उसके बाद परम इष्ट-कृपा से एक न एक दिन मुझे ईश्वर का अनुराग (मोक्ष) मिल जाता है। परिपूर्ण की चाहत भी स्वयं में पूर्ण होती है। जब परिपूर्ण ईश्वर मुझे चाहेगा तो वह मेरे लिए ईश्वर का अनुराग या मोक्ष है। पुरुषार्थ में अर्थ (राग) धर्म (वैराग) काम (भक्ति) मोक्ष (अनुराग) के ये बहुत ही स्पष्ट सोपान हैं।

समस्त वक्तव्य का सारांश है, कि देह धारणा में मुझे देह पर देह मिलती रहती है और प्रारब्ध का अंतहीन सिलसिला चलता रहता है। देह धारणा के दौरान अनेकानेक चिन्ताओं में से इस चिंता ने, कि मेरे मरने के बाद मेरा क्या होगा, मुझे देह की चिन्ताओं से हट कर देह-चिन्तन की ओर प्रेरित किया। परम सद्गुरु-कृपा से मैंने देह धारणा के दौरान देहातीत प्रकट होने वाली अपनी भस्मी की अवधारणा को आरोपित किया, तो देह-धारणा और प्रारब्ध समाप्त हो गए। मेरी अवधारणा मेरी धारणा बन गई। वहाँ वह देह मुझसे आत्म-चिन्तन करवाती है। पहली देह मुझसे देह-चिंतन करवा रही थी, जिससे मुझे अपनी वास्तविक देह की अनुभूति हुई। देहानुभूति से युक्त इस देह ने भस्मी की अवधारणा, देह धारणा पर आरोपित करवाई। अवधारणा की धारणा बनने पर जो देह रही, वह आत्म-चिंतन द्वारा आत्मानुभूति करवाती है। देहानुभूति होने पर जिज्ञासा उठी थी, कि मैं कौन हूँ? आत्मानुभूति होने पर जिज्ञासा उठेगी, कि **'तू'** (ईश्वर) कौन है? तब ब्रह्मचिन्तन और ब्रह्मानुभूति होगी।

जब तक देह-धारणा के दौरान भस्मी की अवधारणा नहीं थी, तब तक **'मैं'**

(जीवात्मा) देह की चिन्ताओं और मल-विक्षेप, आधि-व्याधि-उपाधि आदि सब विकृतियों से आवृत्त और आच्छादित था। देह धारणा पर मैंने भस्मी की अवधारणा की, तो अवधारणा रूपी दही का जामन देह-धारणा रूपी दूध को लगा और परम सद्गुरु-कृपा से देह-धारणा रूपी दूध धीरे-धीरे भस्मी की अवधारणा रूपी दही बन गया। यह प्रक्रिया देह-चिन्तन कहलाती है, वहाँ चिन्ताओं वाली देह रहती ही नहीं। एक बार जामन लगने पर दूध चाहे दही न बने, लेकिन वह दूध नहीं रहता। भस्मी की अवधारणा परिपक्व होने तक देह-चिन्तन चलता रहता है, यह देह क्या और क्यों है? इस पर आधारित जगत क्यों बदलता रहता है, ये पाप-पुण्य क्या हैं? जीवन-मृत्यु क्या है? भस्मी की अवधारणा सिद्ध होने पर जब देह, भस्मी धारणा वाली देह हो जाएगी, तो उस पर मेरे स्वरूप का अधिपत्य हो जाता है। पहले देह-चिन्तन के दौरान मुझ (देह पर) देह के स्वरूप का अधिपत्य था, अब मेरे जीवात्मा स्वरूप का अधिपत्य देह पर हो जाएगा। मैं भस्मी हूँ और भस्मी मेरी है की अवधारणा वाली समस्त ईश्वरीय गुणों से विभूषित मेरी वह विरक्त देह मुझसे आत्म-चिन्तन कराएगी। उसमें भक्ति का प्रस्फुटन और जागरण होगा और अन्ततः इष्ट ब्रह्म-चिन्तन करवाएगा। **ब्रह्मानुभूति ही मोक्ष है।**

पंच-महाभूतों की देह को चलाने वाला, दिशा देने वाला तत्त्व वस्तुतः यह तत्त्वातीत एवं देहातीत तत्त्व **भस्मी** ही है। यह भस्मी देह काल के दौरान अदृश्य रहती है। उसे भूलकर अथवा उपेक्षित करके मानव, देह-धारणा या जीव-भाव में ही रहता है। 'मैं देह हूँ और देह मेरी है' के भाव में जन्मों-जन्मान्तरों से भटकता-भटकता, देह पर देह धारण करके देह-धारणा को पुष्ट ही करता रहता है। किसी जन्म में परम सद्गुरु-कृपा से देह-धारणा पर अपनी भस्मी की अवधारणा को आरोपित करता है, तब इसकी देह से नाम-रूप की देह की तद्रूपता का अवचेतन भाव हटने लगता है। इसकी देह, चिन्ताओं से मुक्त होकर देह-चिन्तन करवाती है। भस्मी की अवधारणा के धारणा बनने पर, कि मैं भस्मी हूँ और भस्मी मेरी है' वही देह वीतराग एवं विरक्त दिव्य देह हो जाती है, जो आत्म-चिन्तन एवं आत्मानुभूति कराती है।

फिर आत्म-चिन्तन ही होता है। इसके बाद यदि देह-चिन्ता या देह-चिन्तन होता भी है, तो आत्म-चिन्तन को पुष्ट करने के लिए होता है। देह-चिन्तन के दौरान भी आत्म-चिन्तन होता है और आत्म-चिन्तन के दौरान भी देह-चिन्तन होता है। देह की कोई विधा आत्म-चिन्तन में बाधा न बने, इसके लिए जीवात्मा प्रभु से प्रार्थना भी करता है, कि प्रभु ! मेरा स्वास्थ्य, मेरी देह ठीक रहे, ताकि मैं आपका ध्यान, मनन, स्वाध्याय आदि कर सकूँ। तब जीवन **में** जो भी इच्छाएँ एवं चाहतें होती हैं, वे आत्म-चिन्तन को पुष्ट करने के लिए ही होती हैं। वह देह भाव में आना ही नहीं चाहता। देह व देह सम्बन्धी जगत की विविध विधाओं का महत्त्व उसके दिल-दिमाग में रहता ही नहीं। जीवन में कोई वस्तु प्राप्त होने पर वह यही सोचता है, कि इसकी प्राप्ति कहीं उसके आत्म-चिन्तन में बाधा तो नहीं डाल रही। यदि वह ऐसा पाता है, तो उसे हटा देता है और प्रभु की समस्त शक्तियाँ उसकी सहायक होती हैं।

देह का स्वरूप एवं प्रकार इस प्रकार सतत् परिवर्तित होता रहता है। एक घर है, जिसमें शराबी एवं जुआरी रहता है। दूसरा घर है, जिसमें कोई देव पुरुष, सिद्ध योगी रहता है। घर का स्वामी जैसा होगा, उस घर में आने-जाने वाले वैसे ही रहेंगे। इसी प्रकार हमारी देह रूपी घर का स्वामी वह मानस है, जिसके द्वारा यह निर्देशित व संचालित होती है। मानस जैसा होता है, उसके अनुसार देह का परिदृश्य बदलता रहता है। जीवात्मा के लिए वह मानस एक ही है, जहाँ से उसकी देह सहित जगत विभिन्न मानसिक स्थितियों में समय-समय पर प्रकट और लीन होता रहता है। यह देह सहित जगत शिव-शक्ति-क्रीड़ा के आनन्द का बाह्य प्रकाट्य होता है। जिसका दृष्टा जीवात्मा उस क्रीड़ा का रहस्य हृदयंगम् करते हुए अपनी इच्छा से माया की विविध चौरासी लाख विधाओं का रसास्वादन करता है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(27 जून, 10 जुलाई एवं 29 नवम्बर, 2007)

कुछ नहीं

प्रभु ने हमें **सब कुछ** दिया है। यह **सब कुछ** इसलिए दिया है, कि **'मैं'** (जीवात्मा) अपना **कुछ नहीं** Realise कर लूँ। पंच-महाभूतों से सुसज्जित और इनके चमत्कारिक संगम द्वारा निर्मित, पालित एवं संहारित संसार महानाट्यशाला में अपनी सर्वोत्कृष्ट संरचना मानव-देह देकर मुझे देह सहित जगत का दृष्टा बनाया। नभचर, जलचर, थलचर, असंख्य जीव-जन्तु, प्राणी, धन-सम्पदा, ऐश्वर्य, विभिन्न प्रकार के भोग-पदार्थ, मानविक भाव, नृत्य, संगीत, गायन, लेखन, चित्रकला आदि विभिन्न कलाएँ और न जाने क्या-क्या मेरे लिए इसलिए बनाया गया, कि मैं अपने अभावमय (Nothingness) स्वरूप की अनुभूति कर लूँ। **मैं** देह हूँ और देह मेरी है के स्थान पर **मैं** हूँ और मेरा **कुछ नहीं** है तथा **तू** है और तेरा **सब कुछ** है एवं **तू** है तो **मैं** हूँ; यह मेरी अनुभूति में आ जाए। क्योंकि दैवीय अधिनियमानुसार जब तक मैं अपना **कुछ नहीं** Realise न कर लूँ तब तक मैं **सब कुछ** का आनन्दपूर्वक भोग कर ही नहीं सकता।

जन्मों-जन्मान्तरों में हम अनेकानेक इच्छाओं की पूर्ति करने की होड़ में आसक्त ही मरते रहे हैं। सद्गुरु इच्छा का रूपान्तरण करता है। वह एक ऐसी इच्छा निर्मित कर देता है, जो जीवन में हमारी समस्त चाहतों को सदा-सदा के लिए लील जाती है। यह Nothingness की इच्छा है। महादुर्भाग्यवश मेरे पास मेरा अपना **'कुछ नहीं'** नहीं है। **कुछ नहीं** ईश्वर का नहीं है, ईश्वर का तो **'सब कुछ'** है। मैं जो कुछ भी तथाकथित प्राप्त करता हूँ अथवा जो मुझे प्राप्त होता है, वह ईश्वर का ही होता है। **'सब कुछ'** ईश्वर

की पूर्णता है और **'कुछ नहीं'** मेरी (जीवात्मा की) परिपूर्णता है। हम जानते हैं कि सब मानव नंगे-भूखे पैदा होते हैं और वैसे ही चिता पर लिटा दिए जाते हैं। किसी छत्रपति सम्राट के घर राजकुमार भी नंगा-भूखा ही पैदा होता है और एक भिखारी के घर बच्चा भी नंगा-भूखा पैदा होता है। देह के रूप में हमारा जन्म **'कुछ नहीं'** के साथ ही होता है और मरने के बाद वह देह भी पंच-महाभूतों में विलीन होकर खाक बन जाती है। मध्य में जो कुछ भी है, वह मेरा नहीं है। मध्य में **'सब कुछ'** के साथ ही मुझे अपने **'कुछ नहीं'** की अनुभूति भी हो सकती है।

हम परमात्मा से आजीवन कुछ न कुछ, कभी कुछ-कभी कुछ, थोड़ा कुछ अथवा बहुत कुछ माँगते रहते हैं। हमें बहुत कुछ मिलता है, लेकिन सन्तुष्टि नहीं मिलती। इसलिए ज़रा-ज़रा (थोड़ा-थोड़ा) करते-करते जरा (बुढ़ापा) आ जाती है। अन्त में पदार्थ, व्यक्ति अथवा इनसे सम्बन्धित समस्त विधाएँ यहीं छोड़कर हम संसार से चले जाते हैं अथवा ये वस्तुएँ हमें छोड़ देती हैं और शेष **'कुछ नहीं**' (भस्मी) रह जाता है। फिर जन्म होता है और फिर मृत्यु होती है। यह सिलसिला युगों-युगान्तरों से चलता आया है, चल रहा है और चलता रहेगा।

जहाँ कोई चाहत है, वह कमी की द्योतक है। जीवन कमी से प्रारम्भ होकर कमी में चलता है और कमी में अन्त हो जाता है। इस कमी की पूर्ति होनी आवश्यक है। क्योंकि यह कमी हमें कमीना व तुच्छ बना देती है। पहले हम अपनी समष्टि से विमुख होते हैं और अन्ततः हमारी अपनी देह ही हमसे घृणा करने लगती है। आजीवन हम अतृप्त व असंतुष्ट रहते हैं। हमारी प्राप्तियाँ, सम्बन्ध, धन-सम्पदा, नाम-यश, शक्तियाँ डिग्रियाँ आदि बढ़ती रहती हैं, लेकिन उतनी ही तेजी से हमारी असन्तुष्टि भी बढ़ती रहती है। मृत्यु के समय सब प्रकार की असन्तुष्टियाँ **एक आसक्ति** में रूपान्तरित हो जाती हैं। यह दैवीय रूपान्तरण है, जिसका हमने आत्मानुभूति से दिग्दर्शन किया है। हम आसक्ति में अशक्त होकर मजबूरी में मर जाते हैं। इसे अकाल-मृत्यु कहा गया है। हम जानते हैं, कि कुछ भी प्राप्त करने पर भी हम

अन्ततः असन्तुष्ट ही रहते हैं। लेकिन फिर भी और-और पाना चाहते हैं। परमात्मा की तरह जीवात्मा भी असीम है। मायिक जगत की क्षण भंगुर विधाओं का असीम विकास भी इसके लिए सीमित एवं अपर्याप्त ही रहता है। **विरक्ति से रहित** मानस **विकृत** होता है। उसके द्वारा जो भी प्रकाट्य होता है, वह विकार युक्त होता है। विरक्ति विमुख मन का **सौन्दर्य** काम, **शक्ति** क्रोध, **ऐश्वर्य** लोभ, **ख्याति** मोह और **ज्ञान** अंहकार बन जाता है क्योंकि विरक्ति स्वयं में आसक्ति बन जाती है।

होश सम्भालते ही जब हम जन्म (जो हमने स्वयं अपना देखा भी नहीं है) को मान्यता देते हैं, तो उसी समय उससे दुगने उत्साह से हमें मृत्यु को भी मान्यता देनी होगी। जन्म और मृत्यु दोनों ही मान्यताएँ हैं। अपना जन्म हमने देखा नहीं, लेकिन मान लिया। अतः मृत्यु **आ सकती** है का, ज्ञात अथवा अज्ञात, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष भाव, जाने-अनजाने में हमारे आन्तरिक मानस में युगों-युगान्तरों में पुष्ट हो चुका है। इसलिए होश सम्भालते ही हम देह सहित जगत में आकार की वृद्धि और जल्दी से जल्दी अपनी इच्छाओं की पूर्ति चाहते हैं। हर समय घड़ी देखना हमारा स्वभाव बन गया है। We watch the watch for the sake of watching or for the sake of being watched. बच्चे की शैशवावस्था में ही उसे जल्दी-जल्दी बड़े होने के आशीर्वाद दिए जाते हैं। विचार करके देखें, कि क्या जल्दी है? मानों हम बच्चे द्वारा अपनी आशाओं की पूर्ति अपने मरने से पहले चाहते हैं। क्योंकि हमारे मानस में अन्तर्निहित एक भाव अति पुष्ट है, कि मृत्यु कभी भी आ सकती है। यद्यपि अपने जन्म की भाँति मृत्यु भी मैंने नहीं देखनी, लेकिन जिस समय मृत्यु आने वाली होती है, उस समय मृत्यु **'आएगी'** का भाव लुप्त होकर मृत्यु **'आ सकती'** है का भाव बन जाता है और जीवन-पर्यन्त रहने वाली समस्त असन्तुष्टियाँ एक आसक्ति (आ सकती) में रूपान्तरित हो जाती हैं। जिस मोड़ पर **'आसक्ति'** का प्रकाट्य होता है, वहाँ बुद्धि चेतना छोड़ देती है और लुप्त हो जाती है। प्रकट-अप्रकट, ज्ञात-अज्ञात रूप से हम सब जीवधारियों के साथ यही घटना युगों-युगान्तरों से घट रही है।

होश सम्भालते ही हम सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य एवं ख्याति की वृद्धि में लग जाते हैं और विरक्ति को भूल जाते हैं। एक विरक्ति से विमुख होने में हमारे समस्त सद्‌गुण एवं विभूतियाँ विकार बन जाते हैं। मानव-मन में जो महाविकार या विकृति है, वह **विरक्ति** विमुखता है। मानव-जीवन में हमने दो भविष्य बताए थे—जीवन **में** भविष्य और जीवन **का** भविष्य। जीवन **में** असंख्य भविष्य हैं, जो हमें निरन्तर असंतुष्टि एवं अन्ततः आसक्ति में ले जाते हैं। जीवन **का** भविष्य एक ही है वह है **'भस्मी'**। यह आसक्ति इसलिए हुई क्योंकि अज्ञात रूप से हमने अपने जन्म के साथ मृत्यु को मान्यता दे दी, कि मृत्यु अवश्य आएगी और कभी भी **आ सकती है।** अपनी सारी मान्यताओं को हम स्वरूप देते हैं। पहले स्वयं मानते हैं, मनाते हैं और सबसे मनवाते हैं तथा जो नहीं मानता उससे खीजते हैं।

जन्म की भाँति मृत्यु भी मैंने देखनी नहीं है, लेकिन मेरे जीवन का बहुत महत्त्वपूर्ण छोर है, जिसका दिग्दर्शन मैं नहीं कर पाऊँगा और उसको मान्यता अन्य लोग देंगे। जब मैं अपने जन्म को स्वयं मान्यता देता हूँ, मनाता हूँ, मनवाता हूँ, यदि मैं अपनी मृत्यु को भी मानकर स्वयं ही मना लूँ, तो मेरे आन्तरिक मानस में हृष्ट-पुष्ट हुआ-हुआ 'मृत्यु आ सकती है' का जो भाव कुष्ठ की भाँति चिपका हुआ है, वह निर्मूल होने लगेगा। मृत्यु **आ सकती है** का भाव, **आ गई** बन कर अवचेतना को अनाच्छादित करते हुए मेरी अपनी स्वरूपगत चेतना में प्रविष्टि दिला देगा साथ ही ईश्वर के सारे रहस्यों को भी अनावृत कर देगा। मृत्यु की हृष्ट-पुष्ट मान्यता को मनाने में शिवत्व का समस्त रहस्य अन्तर्हित है।

सद् जीवन उसके बाद प्रारम्भ होता है। किसी जन्म में कोई सद्‌पुरुष मिलता है, जो जीव को झकझोरता है। वह उसे पहले आश्वस्त करता है, कि सब कुछ प्रभु का है और तेरा यहाँ कुछ नहीं है। तो यह उन्मादित होकर, अति उत्साह से प्रभु से अपने **'कुछ नहीं'** की माँग करता है, कि ''मुझे मेरा **कुछ नहीं** चाहिए। मेरा **'कुछ नहीं'** मेरे पास नहीं है। मैं अपना **'कुछ नहीं'** खो चुका हूँ, कृपया वह मुझे लौटा दिया जाए। अगर मेरे पास मेरा **'कुछ**

नहीं' होता, तो मैं तुझसे कुछ नहीं माँगता। जब तुम मुझे कुछ भी देते हो, तो उसमें मेरा **'कुछ नहीं'** नज़र नहीं आता। फिर मैं कुछ और माँगता हूँ, तुम वह भी दे देते हो और उसमें भी मेरा **'कुछ नहीं'** मुझे नहीं मिलता। जब तुम मुझे **सब कुछ** भी देते हो, उसमें भी मेरा **'कुछ नहीं'** मुझे नहीं मिलता। मुझे सन्तुष्टि नहीं मिलती। प्रभु मैं अपने को खोज रहा हूँ। तेरे पास सब कुछ है और मेरा **'कुछ नहीं'** भी तेरे पास ही है।''

''इक तू न मिला, सारी दुनिया मिले भी तो क्या है ?''

जीव बना जीवात्मा आर्तनाद करता है, ''कृपा करके मेरे **कुछ नहीं** में से कुछ तो मुझे दे दिया जाए, ताकि मुझे संतोष मिल जाए। मैं जानता हूँ और मैं मानता हूँ, कि मेरा 'कुछ नहीं' है। मैं नंगा-भूखा पैदा हुआ था और इसी तरह खाली हाथ यहाँ से चला जाऊँगा। मेरे पदार्थ, मेरे व्यक्ति, कुछ भी मेरे साथ नहीं जाएँगे लेकिन यह सद् मेरी अनुभूति में नहीं आता। क्योंकि फिर भी मैं कुछ न कुछ माँगता रहता हूँ और उसको मैं अपना मान लेता हूँ। फिर मेरा सब कुछ मुझे छोड़ देता है, क्योंकि वह मेरा नहीं होता। मेरा हो तो मेरे साथ चलेगा। मेरा अपना **कुछ नहीं** मेरे पास कभी नहीं होता। जब मैं नहीं होता, तो मेरा **'कुछ नहीं'** प्रकट होता है, उसका मुझे लाभ नहीं होता। जब अपनी वस्तु खो गई है, तो **सब कुछ** मैंने क्या करना है? सब कुछ मिलता है जो मुझे Distruction, Deviation, Depression में छोड़ जाता है। हे प्रभु ! तुम्हारे **'सब कुछ'** और मेरे **कुछ नहीं** के बीच कई देहें और कई जगत आ गए, इसलिए अब मुझे मेरा **'कुछ नहीं'** ही चाहिए।''

इस माँग पर मुझसे पूछा जाता है, कि ''तेरा कौन है?'' मैं उत्तर देता हूँ, कि ''प्रभु मेरा तेरे सिवा कोई नहीं है। यह देह भी तेरी है।'' सदेह मुझे **'कुछ नहीं'** नहीं दिया जाएगा क्योंकि **'कुछ नहीं'** की माँग अवैध हो जाएगी। **'कुछ नहीं'** की माँग देह से परे होकर करनी होगी। जब तहेमन व रूह से **'मैं'** जीवन-काल में यह अनुभूति कर लूँ, कि मेरा **'कुछ नहीं'** है और प्रभु के अतिरिक्त मेरा कोई नहीं है, तो जिस देह को मैं अपनी कहता हूँ, वह भी मेरी नहीं रहती। जब **'मैं'** (जीवात्मा) देह को अपनी कहता हूँ, तो सारा

संसार मेरे गले पड़ा रहता है। 'देह मेरी है' यह **देहाधिपत्य** है और 'मैं देह हूँ' यह **देहाध्यास** है। यह अधिपत्य और अध्यास मेरा स्वभाव या आदत बन जाती है तथा जन्मों-जन्मान्तरों में मैं इससे बाहर नहीं निकल पाता।

मानव-देह, पंच-महाभूतों के संगम से निर्मित है। यह संगम शिव की विरक्ति शक्ति की प्रतीक अदृश्य भस्मी से हुआ है। विरक्ति वीरता है और आसक्ति अशक्ति है। पंच-महाभूतों की सृष्टि में सर्वोत्कृष्ट परम विलक्षण एवं अति रहस्यमय संरचना मानव-देह है, जो प्रभु-कृपा से मुझे मिली है। यह देह मुझे क्यों मिली है, कब तक रहेगी, क्यों और कैसे जाएगी यह मैं नहीं जानता। मुझे देह की किसी भी स्थिति, समय और स्थान का कोई ज्ञान नहीं है। स्थान, स्थिति और समय, काल की तीन विधाएँ हैं, जिनसे हमारी देह बँधी हुई है। इन तीनों पर हमारा कोई अधिकार नहीं है, तो देह जो इन तीनों से बँधी हुई है, उस पर हमारा अधिकार कैसे हो सकता है? **जब समय और स्थान को हम बाँधते हैं या बाँधने का प्रयास भी करते हैं, तो स्थिति हमारे प्रतिकूल हो जाती है। सद्गुरु-कृपा से जब स्थिति हमारे अनुकूल होगी, तो समय और स्थान हमारे अनुकूल होंगे ही।**

देह का काल, अकाल से बँधा है। अकाल, कालेश्वर है, वह काल का स्वामी है। हमारी देह **'काल'** के अधीन है और **काल, अकाल** के अधीन है। अतः काल जिसके अधीन है, देह भी उसी के अधीन हुई। काल की तीनों विधाओं (स्थान, समय और स्थिति) पर जो अधिकार कर सकता है, वही देह पर अधिकार कर सकता है, जो हमारे लिए असम्भव है। लेकिन फिर भी हमने देह पर अध्यास कर लिया। हमें अध्यास की आदत ही पड़ गई, जिसे कोई भी नहीं छुड़ा सकता। देह की हर स्थिति, हर स्थान और हर समय जहाँ यह जैसी भी थी, उससे हमने स्वयं को पहचाना। यह आदत जन्मों-जन्मान्तरों में गहरी होती रही और परिपुष्ट होकर देह-धारणा बन गई।

'मैं' (जीवात्मा) स्वयं में भ्रमित हूँ, कि हर स्थान, हर स्थिति और हर समय की असंख्य देहों से एक **'मैं'** स्वयं को पहचानता हूँ। यह दो साल का बच्चा भी मैं हूँ, तीस साल का युवक भी **मैं'** हूँ, साठ साल का बूढ़ा भी **'मैं'** हूँ।

मैं लन्दन पैदा हुआ फिर भारत आ गया, फिर उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका गया। मैं पिछले वर्ष आस्ट्रेलिया में व्यापार के लिए गया। मैंने बहुत धन कमाया, अब मैं दुनिया का सबसे अमीर आदमी बनना चाहता हूँ। इस प्रकार जीवन-काल के मध्य में होश सम्भालने पर मैं मदान्ध हो जाता हूँ और भूल जाता हूँ, कि जो होश आई है वह एक न एक दिन जाएगी भी। मृत्यु किसी भी क्षण आ सकती है और फिर मेरी देह सहित समस्त जगत की विधाएँ मेरे लिए डेढ़-दो किलो भस्मी बन जाएँगी। जिसे देखने के लिए मैं नहीं रहूँगा। सद्गुरु इस आदत का रूपान्तरण करता है।

सद्गुरु जीवन-काल में देह के रहते हुए देह की ही एक निश्चित, परिलक्षित व दर्शित अवस्था (भस्मावस्था) की अवधारणा का सद् आशीष देता है। वह अवस्था देहातीत है और इसलिए जन्म-मृत्यु के काल से बँधी देह की तीनों (समय, स्थान व स्थिति) विधाओं से भी परे हैं। सद्गुरु कहता है, कि "देह की उस निश्चित अवस्था को सुनिश्चित कर ले। वह परिलक्षित है, उसे अपना लक्ष्य बना ले और वह दर्शित है, उसका दर्शन कर ले, जो तूने आज तक नहीं किया। मानव-देह धारण करके इससे बड़ा कर्म कोई नहीं है। बेटा ! तू देह है, यह अध्यास मत छोड़। यदि तू देह है और देह तेरी है, तो देह की भस्मी भी तो बनेगी। इसलिए अब उसकी तू अवधारणा कर और कह, कि मैं भस्मी हूँ और भस्मी मेरी है। यह तेरी देह की कालातीत, स्थानातीत और स्थित्यातीत अवस्था है। जब तेरी Call (बुलावा) आएगी, तो काल (मृत्यु) आ जाएगा और तेरी देह की भस्मी बन जाएगी। यह अवश्य होगा। तू अवधारणा कर, ध्यान कर, कि तू भस्मी बन गया है और भस्मी रूप में चेतन है। तेरी भस्मी तेरे नाम-रूप को नहीं पहचानेगी; न तेरी भस्मी को Call (बुलावा) आएगी, न काल (मृत्यु) आएगा। भस्मी न किसी स्थान से बँधी है, न समय से बँधी है, न किसी स्थिति से बँधी है। तेरी भस्मी में समस्त ईश्वरीय गुण हैं—यह देशातीत, कालातीत, सम्बन्धातीत, लिंगातीत, कर्तव्यातीत, कर्मातीत, धर्मातीत है। तेरी देह की निश्चित अवस्था है, जो देह के सभी बन्धनों व विधाओं से मुक्त है।" सद्गुरु कहता है, कि "यदि तू कुछ

कर्म करना चाहता है, तो इष्ट के **'करम'** से यह कर्म कर।''

''देह की कोई भी अवस्था निश्चित नहीं है, सब तेरी कल्पनाओं, अकांक्षाओं और मान्यताओं की मोहताज हैं। बचपन के बाद कोई जवान होगा, यह आवश्यक नहीं, देश-विदेश में भ्रमण कर पाएगा, यह भी आवश्यक नहीं। लेकिन भस्मी कभी भी, किसी भी स्थान पर, किसी भी समय, किसी भी स्थिति में बन सकती है। देह की भस्मी होना न तो तेरी कल्पना है और न ही तेरी मान्यता की मोहताज है। यह तेरी देह का ऐसा अपरिवर्तनीय परिवर्तन है, जो होगा ही और होने पर इसके आगे तथा इसके पीछे फिर **कुछ नहीं** होगा। यह जीवन **में** तेरे असंख्य छोटे-छोटे काल्पनिक लक्ष्यों पर एक लक्ष्य है, जो कभी भी हो सकता है। जिसके लिए तुझे कुछ नहीं करना पड़ेगा। जन्मों-जन्मान्तरों में जो कुछ भी तू पाएगा, खोएगा या बनेगा उसका अन्तान्त यह भस्मी है। चाहे छत्रपति सम्राट बने या विश्व का सर्वोच्च व्यक्ति बने, तेरा outcome भस्मी ही है। जो इस जन्म का अन्तान्त है, वही सब जन्मों का अन्तान्त है। यह नहीं, कि 25 जन्मों के बाद मृत्यु होने पर जो भस्मी बनेगी, वह सिल्वर जुबली होने के कारण चाँदी का चूरा होगी। 50 जन्मों के बाद गोल्डन जुबली होने के कारण सोने का चूरा और 75 जन्मों के बाद डायमंड जुबली होने के कारण भस्मी के स्थान पर हीरे मिलेंगे। भस्मी, देह का स्थायी रूपान्तरण है, जो असंख्य जन्मों के बाद भी होना ही है और वह एक ही है। अतः यह अवधारणा है।''

अवधारणा का अर्थ है धारणा पर धारणा। सद्‌गुरु कहता है, कि ''जैसे किसी के विरोध में धरना दिया जाता है, उसी प्रकार अपनी देह के खिलाफ तू **अवधारणा** दे। देह धारण करने में तू **धरा** (पकड़ा) गया। यह देह **धरना** एक न एक दिन **धरा** (पृथ्वी) में तुझे दुःखों से आवृत्त कर देगा। अपने धरने (देह धारण करने) पर दैवीय अदालत में धरना (अवधारणा) दे। प्रभु ! मेरी खाक मुझे दिखा। वह कुछ नहीं मेरा है, जो तेरे पास है। मैं अपना **'कुछ नहीं'** तुझसे मांगता हूँ। जब तू यह अवधारणा करेगा, तो भस्मी रूप अवधरना तेरा धरना बन जाएगा। अब तू इसकी आदत डाल ले, कि 'मैं

भस्मी हूँ और भस्मी मेरी है'। तो जन्मों-जन्मान्तरों से पड़ी हुई तेरी आदत बदल जाएगी और तू चेतन भस्मी बनकर कह सकेगा, कि मेरा **कुछ नहीं** है और प्रभु तेरे सिवा मेरा कोई नहीं है।''

जब भस्मी की अवधारणा, धारणा बन जाएगी, तो देह धारणा का ग्रहण हट जाएगा। इसके बाद का पद अनिर्वचनीय है। समस्त वक्तव्य का सारांश यह है, कि मेरे (जीवात्मा के) अपने मन में अज्ञान का अन्धकार है, कि मैं देह हूँ। मेरी मानसिकता मानवीय है और बुद्धि अवचेतन है। ईश्वरीय मानसिकता आनन्दमय ही होती है और मानव-देह में बुद्धि ईश्वरीय चेतना का स्रोत है। मन-बुद्धि के साथ जब हमारी रूह (आत्मा) इस सद् से आश्वस्त हो जाएगी, तो हम अमरत्व के अधिकारी हो जाएँगे। इसके तीन सोपान हैं :–

असतो मा सद् गमयः – सद् की ओर गमन (बुद्धि का जानना)
तमसो मा ज्योतिर्गमयः – मन का अन्धकार दूर होना (मन का मानना)
मृत्योर्मा अमृतमगमयः – अमरत्वपद प्राप्त होना (रूह से अनुभूति)

Realisation अथवा अनुभूति से पहले दो सोपान हैं–जानना और मानना। Realisation के लिए बुद्धि का सद् होना और मन का प्रकाशित होना आवश्यक है। इसके बाद अनिर्वचनीय विश्राम की अनुभूति होती है। भजन, कीर्तन व श्रवण आदि प्रकरण सत्संग की भूमिका मात्र हैं। सत्संग से आने के बाद हम कितने हल्के-फुलके हुए हैं, यही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। जानना और मानना सत्संग की भूमिका मात्र है। जब मेरा 'कुछ नहीं' है, तो **'मैं'** क्यों हूँ और यह देह मेरे लिए क्यों है? सद्गुरु कहता, कि ''हे जीवात्मा! देह से दो बातें जान ले और मान ले, कि मैं हूँ और मेरा कुछ नहीं है तथा प्रभु के अतिरिक्त मेरा कोई नहीं है। यही मानव-जीवन की एकमात्र उपलब्धि है। इसके बाद आत्मा की जागृति होती है। **'उत्तिष्ठ-जाग्रत'** मैं हूँ, यह मात्र उठना है और मैं उठ कर जान लूँ और मान लूँ, कि मेरा कुछ नहीं है, यही जागृति है। यह जागृति आत्मा की जागृति है। जलचर, नभचर, थलचर मात्र **उठते** हैं, केवल मानव ही **जाग** सकता है।''

हम सब स्वतः ही एक निश्चित Nothingness की ओर बढ़ रहे हैं। वह Nothingness जब प्रकट होगी, तो हम नहीं होंगे। मैं हूँ और मुझे मेरी अपनी Nothingness मिल जाए, इसलिए मुझे मानव-देह मिली है। यही आनन्द की स्थिति है। देह से, देह द्वारा ही ऊर्ध्वगति होती है। यदि देह को उपेक्षित करेंगे, तो देह ही अधोगति में ले जाएगी। यदि संसार में अपना कुछ भी मानेंगे तो देह परेशान करेगी क्योंकि किसी वस्तु, प्राणी या इनसे सम्बन्धित विधा का भोग तो देह से ही होगा। देह कुछ भी भोगने नहीं देगी। छप्पन व्यंजन बेस्वाद लगेंगे, रात्रि में निद्रा नहीं आएगी, पत्नी, सन्तान, परिवार, धन-सम्पदा, पद-प्रतिष्ठा तनाव का हेतु बन जाएँगे। देह विरोधी हो जाएगी और देह से सम्बन्धित सारा जगत गले पड़ जाएगा। अतः होश सम्भालते ही अपनी बुद्धि से पहले यह जान लेना है, कि यहाँ मेरा **'कुछ नहीं'** है। तभी बुद्धि सद् होगी। फिर अपने मन से मान लें, कि मेरा **'कुछ नहीं'** है, तो मन ईश्वरीय आनन्द से ओत-प्रोत हो जाएगा। जब देह को इसकी भस्मी (Nothingness) की अवधारणा के लिए सदुपयोग करेंगे, तो देह प्रसन्न हो जाएगी।

काल-चक्र की परिधि के दो विपरीत बिन्दुओं को छूने वाली सरल रेखा जो केन्द्र से छूती है, वही **व्यास** है, नहीं तो **बकवास** है। हमें ज्ञान होना चाहिए, कि हम कौन सा जीवन जी रहे हैं, वह **व्यासमय** है या **बकवास** है। **व्यासमय** होने के लिए पहले **बकवास मुक्त होना पड़ेगा।**

व्यास (सद्गुरु) को छूना ही जीवन का लक्ष्य है, नहीं तो जीवन बकवास है। ***''शाखों को तुम क्या छू आए कांटों से भी खुशबु आए।''*** सत्संग, एकान्त में प्रारम्भ होता है। एक+अन्त = एकान्त की मानसिक स्थिति में स्वतः सत्संग शुरू हो जाता है। यह **'एक'** हमारी अपनी नाम-रूप की देह की अवचेतना है। देह को मैं मानकर जो कुछ भी होता है, वह असद् ही होता है। जहाँ देह होते हुए देह भाव का अन्त हो जाए, उस मानसिक स्थिति को एकान्त कहते हैं। वहाँ देह से हटकर जो होगा वह सत्संग (सद्) ही होगा।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(3 , 5 और 6 नवम्बर, 2007)

परम सुख

भोग और आनन्दपूर्वक भोग में अन्तर है। मात्र सुख के लिए भोग से भोग, मानव को भोग जाते हैं। भोगों को भोगना और भोगों से भुगत जाना दो विपरीत धाराएँ है। हमें भाग्यवश मानव-जीवन मिला है और भाग्यवश समय-समय पर हमारी देह सहित जगत में विभिन्न प्राप्तियाँ होती हैं अथवा हम करते हैं। भाग्य के साथ जब सद्गुरु-कृपा जुड़ जाती है, तो वह सौभाग्य बन जाता है। भाग्य+कृपा=सौभाग्य और भाग्य–कृपा= दुर्भाग्य। मूलतः हम भाग्य लेकर धरा पर आए हैं। भाग्य केवल भाग्य नहीं रह सकता। उस भाग्य को हम दुर्भाग्य बना लें या सौभाग्य बना लें। **भाग्य से कोई जीवन व्यतीत नहीं करता। या तो जीवन में सौभाग्य होता है अथवा दुर्भाग्य होता है। हम भाग्य से पैदा होते हैं, लेकिन कभी भी भाग्य से मरते नहीं है। या तो दुर्भाग्य से तथाकथित जीते हुए मरते हैं अथवा सौभाग्य से निर्वाण प्राप्त करते हैं। हम जैसे मरते हैं वैसे ही जीते हैं अतः जैसे जी रहे हैं, वैसे ही मरेंगे।** मानव जीवन का लक्ष्य निर्वाण पद है। जीवन-काल में जब सौभाग्य से निर्वाण शुरू हो जाता है, तो उस जीवन का अन्त निर्वाण है। जब जीवन में दुर्भाग्य (प्रभु से दूर रहने का भाव) होता है, तो दुर्भाग्यवश उसका अन्त मात्र मृत्यु है।

मानव देह का आनन्द, देहातीत है। दो प्रकार के सुख हैं—चरम सुख एवं परम सुख। यह सुख का मर्म (रहस्य) है। चरम सुख, चमड़ी का सुख है, यानि इन्द्रियों के सुख के चरमोत्कर्ष को चरम सुख कहते हैं। यह दैहिक होने के कारण अस्थाई, क्षणिक और नश्वर है। यह तथाकथित सुख, दुःख

अवश्य बनता है। इस सुख को लेने के लिए विभिन्न इन्द्रियों को सुख-साधन चाहिए तथा स्वस्थ एवं निरोग देह चाहिए। इस दैहिक सुख के चरमोत्कर्ष पर पहुँचने पर इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, क्योंकि इन्द्रियों की सुख देने की क्षमता सीमित है। एक स्थिति में हमारी इन्द्रियाँ और सुख-साधन हमें और अधिक सुख देने में असमर्थ हो जाते हैं। दूसरा है—परम सुख। चरम सुख की सीमा देह तक है। जहाँ देह और इन्द्रियों की सीमा समाप्त हो जाती हैं, वहाँ **परम सुख** में प्रविष्टि होती है। चरम सुख भी आनन्द से ही मिलता है क्योंकि इन्द्रियों के पास अपना सुख नहीं है। परम सुख में प्रविष्टि अभावमयी आनन्दपूर्ण मानसिकता में होती है, जहाँ इन्द्रियाँ और सुख-साधन नहीं होते।

''देहि मे सौभाग्यं, आरोग्यं, देहि मे परमं सुखं।''

जो महामाया **चरम सुख** की अधिष्ठात्री है, वही **परम सुख** की भी स्वामिनी है। आनन्द अभावमय है, उसकी अनुभूति के लिए सुख-साधन व इन्द्रियाँ अपेक्षित नहीं है। आनन्द की अनुभूति में कोई दैहिक साकार हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। साकार हस्तक्षेप दो स्थितियों में नहीं होता। एक तो अति जड़ता में और दूसरे महाचेतनता में। कोई गहरी निद्रा में है अथवा अति नशे की हालत में है, तो वह स्वयं में निराकार है, लेकिन जड़ है। इसलिए वहाँ आनन्द नहीं होता। योगी जब ध्यान में समाधिस्थ होता है, तो चाहे वह प्रभु के साकार के आनन्द में सराबोर हो, वह स्वयं में महाचेतन एवं निराकार होता है। उसे अपनी देह सहित जगत का कोई आभास नहीं रहता। जितनी पौराणिक प्रभु लीला कथाएँ हैं, वे ईश्वरीय **'सद्'** की अनुभूति से जोड़ देती है। सद् में ध्यान लगने पर योगी आनन्द में प्रविष्टि पा लेता है। इसे **भाव-समाधि** कहा है।

हमारी समस्त दौड़ चरम सुख की ओर है, जो असद् है। लेकिन इस असद् का कारण एवं आधार **'सद्'** है। चरम सुख से परम सुख में प्रविष्टि के लिए हमारी देह व इन्द्रियों का **'सद्'** होना आवश्यक है। यह **सदीकरण** ही सिद्धि है। देह व इन्द्रियाँ ही चरम सुख के चरमोत्कर्ष से बाइपास करवा

कर, परम सुख में प्रविष्टि दिला देंगी। आजीवन यदि हम इन्द्रियों को चरम सुख के लिए नोचते रहते हैं, तो वे ही हमसे घृणा करने लगती हैं। इन्द्रियों को ज्ञान है, कि वे चरम सुख भी हमारे आनन्द से लेकर हमें देती हैं। जब हम आनन्दित होते हैं, तभी इन्द्रिय सुख की ओर प्रेरित होते हैं। दुःख एवं अवसाद में हम इन्द्रिय सुख भी नहीं लेना चाहते। जब इन्द्रियाँ समर्पण द्वारा **'सद्'** हो जाएँगी, तो ये इन्द्रियाँ ही चरम सुख से परम सुख में ले जाने में सहायक होंगी। चरम (चमड़ी का) सुख तो जानवर भी लेते हैं, यदि हमारा भी लक्ष्य वही रहा, तो हममें और उनमें क्या अन्तर होगा। जानवर चिन्तित तो नहीं होते, लेकिन हम तो भयभीत और चिन्तित होते हुए **सुख सा** लेते हैं।

परम सुख देहातीत है और आनन्द भी देहातीत है। भगवान श्रीकृष्ण **'आनन्द'** के अवतार है। यदि किसी ने परम सुख का मर्म अनुभूतिगम्य करना है, तो वह कृष्ण की शरण में जाए। भगवान श्रीकृष्ण आसक्ति एवं विरक्ति दोनों के स्वामी हैं। श्रीकृष्ण आनन्द के अवतरण हैं और आनन्द देहातीत है। देहातीत, जब देह में अवतरित होगा, तो वह देह होते हुए भी स्वयं विदेह होगा। उसका प्रत्येक कार्य ऐसा होगा, जो देह कर ही नहीं सकती। श्रीकृष्ण कोई देह नहीं है, वह **देह सी** हैं और श्रीलक्ष्मी (रुकमणी) तथा श्रीराधा (योगमाया) दोनों के स्वामी हैं। श्रीकृष्ण जगद्‌गुरु हैं।

आत्मज्ञान, स्वयं में **विज्ञान** है। It is highly expanded, extended, broaden, hightened and most precise spiritual science. सुख इन्द्रियों का है, जिसके लिए कई औपचारिकताएँ हैं। सुख-साधन हों, हमारी रुचि एवं पसन्द के अनुकूल हों, देह व इन्द्रियाँ स्वस्थ हों, परन्तु सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मन की एकाग्रता एवं आनन्द है। यदि मन दुःखी है अथवा किसी अन्य कारण से एकाग्र नहीं है, तो चाहे हमारी पसन्द के कितने भी सुख-साधन हों, हमारी इन्द्रियाँ भी स्वस्थ हों, लेकिन हम सुख नहीं ले सकते।

वस्तुओं के owner या मालिक का अधिकतम सम्बन्ध इन्द्रियों के सुख तक होता है, लेकिन वस्तुओं का स्वामी वस्तुओं को आनन्द के लिए छोड़ता है तथा जिस वस्तु को छोड़ता है, वह भी आनन्दित हो जाती है। जब हम

किसी वस्तु या प्राणी अथवा इनसे सम्बन्धित किसी भी विधा से सुख लेते हैं, तो यह सम्भव है कि वह वस्तु या व्यक्ति दुःखी हो रहा हो। वास्तविकता यह है, कि हमारी इन्द्रियाँ भी सुखी नहीं होती, लेकिन हम इन्द्रियों को अपने सुख के लिए नोचते हैं। हमारी देह व इन्द्रियाँ जीर्ण हो जाती हैं, लेकिन वासना तृप्त नहीं होती।

आनन्द हमारा अपना स्वरूप है। आनन्द में सभी विधाएँ आनन्दित होती हैं। हमारा सारा परिवेश व वातावरण, जहाँ-जहाँ भी विश्व में हमारा जगत है, सारा आनन्दमय हो जाता है। हम सुख की चरम सीमा पर जाकर जब सुख छोड़ देते हैं, तो आनन्द में प्रविष्टि पा लेते हैं। किसी वस्तु की Ownership अलग है और उसका स्वामित्व पृथक् है। जिसने भौतिक उपलब्धियों और प्राप्तियों को उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए छोड़ दिया, उसे उन भौतिक उपलब्धियों का स्वामित्व मिल जाता है। उस उच्चतम प्राप्ति (आत्मानुभूति एवं ब्रह्मानुभूति) और हमारे बीच देह सहित जगत की किसी भी विधा की Ownership अवश्य बाधा बनती है।

हम संसार में बहुत सी प्राप्तियों सहित लाए जाते हैं। हमारा अपना देह सहित जगत हमें बना बनाया मिलता है। कुछ वस्तुएँ होश सम्भालने पर हम स्वयं प्राप्त करते हैं। जैसे कोई घर या दुकान हमने खरीदी, हम उसके Owner हो जाते हैं। क्योंकि भौतिक दृष्टि से उसकी रजिस्ट्री कानूनन हमारे नाम हो जाती है। इसी प्रकार धन कमा कर हम बैंक में उसका खाता खोल देते हैं और उसके Owner हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त भी अनेकानेक वस्तुएँ **तथाकथित हमारी** होती हैं। स्वामी और Owner के मध्य पारदर्शी एवं बहुत ही स्पष्ट विभाजक बिन्दु हैं। जब हमने किसी भी प्रकार से और सब प्रकार से किसी वस्तु को प्राप्त किया है अथवा हमें स्वतः प्राप्त हो गई, तो हम उसके Owner हो जाते हैं। जब हम किसी के हित में अथवा उच्चतम प्राप्ति एवं सद्-चिन्तन के लिए उस वस्तु को छोड़ देते हैं, तो हमें उस वस्तु का स्वामित्व मिल जाता है। बीमारी की अवस्था अथवा अपनी असमर्थता की दशा में नहीं बल्कि हम पूर्ण समर्थ और स्वस्थ होते हुए अपनी

सामर्थ्य का दुरुपयोग नहीं करना चाहते। इसलिए उस वस्तु को किसी के हित में आत्म-चिन्तन एवं ब्रह्मानुभूति के लिए छोड़ते हैं, तो हमें उस वस्तु का स्वामित्व मिल जाता है। हम अपनी सामर्थ्य की समस्त शक्तियों को मात्र ईश्वर-चिन्तन में लगाना चाहते हैं, ताकि वस्तु की प्राप्ति किसी प्रकार की बाधा न बने। यह महत्त्वहीन है, कि हमें उस वस्तु की आवश्यकता है या नहीं। **स्वामित्व मिलने से हमें उस वस्तु के आनन्दपूर्वक भोग का अधिकार मिल जाता है।**

संसार में जो कुछ हमारा अपना होता है, वह हमें हमेशा तनावित रखता है। हमारी अपनी देह भी हमें कभी-कभी बहुत तंग करती है। यदि हमारा सुख वस्तुजन्य, परिस्थितिजन्य अथवा भौतिक जगत की किसी विधा पर आश्रित है, तो देह पर आधारित जगत की समस्त सुख देने वाली विधाएँ कभी न कभी दुःख का कारण अवश्य बनेंगी। **आनन्द देहातीत है और सुख दैहिक है।** दैहिक सुखों के लिए भी मन की प्रसन्नता एवं आनन्द परमावश्यक है। एकाग्र मन ही प्रसन्न एवं आनन्दित होता है। देह होते हुए भी जिसका देह से कोई सम्बन्ध न हो तो देह उसकी चेरी हो जाती है। कोई भी प्राप्ति जो हमें प्रारब्धवश अथवा अन्यथा हुई है, जब तहेदिल, मन एवं रूह से हम उसका प्रभु चरणों में समर्पण कर दें तो हमें उसका स्वामित्व मिल जाता है। अन्यथा अपनी होते हुए भी हमें उस पर अधिकार नहीं होता। **हमें मानव-देह, देहातीत क्षेत्र की अवधारणा के लिए मिली है।** हमने देह धारण कर ली, कि मैं देह हूँ, देह मेरी है। इस धारणा के होते ही हमारा आनन्द, चेतनता एवं सद् आच्छादित हो गया। सद्गुरु के सद्निर्देशन में देह की धारणा पर देह के रहते हुए देहातीत क्षेत्र (भस्मी) की अवधारणा करनी होगी।

भस्मी, देह की निश्चित, परिलक्षित व दर्शित अवस्था है, लेकिन देहातीत है। सद्गुरु, देह की धारणा को देह की इस निश्चित देहातीत अवस्था की अवधारणा में रूपान्तरित करवाता है। 'मैं देह हूँ और देह मेरी है' की धारणा विशिष्ट सद्गुरु कृपा से इस अवधारणा में फलीभूत हो जाती है,

कि मैं भस्मी हूँ और भस्मी मेरी है। यह देह में होते हुए विदेह स्थिति है तथा यही देह का स्वामित्व है। देह की एक ही देहातीत स्थिति है, जो समय, स्थान एवं स्थिति से मुक्त है। वह है देह की **'भस्मावस्था'**। योगी मन की एकाग्रता के लिए ध्यान लगाते हैं। जितना मन एकाग्र होगा, उतनी ही आनन्द में पूर्ण स्थिति होगी। यह समस्त प्रकरण मात्र कृपा-साध्य है।

सुख प्राप्ति का है, आनन्द त्याग का है। जब किसी वस्तु या व्यक्ति से प्राप्त सुख की चरम सीमा पर हम उसे छोड़ते हैं, तो हमारी देह व इन्द्रियाँ तथा समस्त जगत आनन्दित हो जाता है। विशिष्ट स्थिति, समय व स्थान में हमारी देह व इन्द्रियों की सुख लेने की सीमित क्षमता है। सुख, काल की तीनों (स्थिति, समय व स्थान) विधाओं से बँधा हुआ है और आनन्द **अकाल** का है। एक समय, स्थान व स्थिति में जो एक वस्तु व प्राणी हमें सुख देता है, किसी अन्य समय, स्थान एवं स्थिति में हमें उससे घृणा होने लगती है। आनन्द (**'श्री'**) अकाल से बँधा है, अतः वह **'सद् श्री अकाल'** है :–

''सच्चिदानन्दो हम् शिवो हम् शिवो हम्।''

इसे पुनः समझें। **दैहिक सुख काल से बँधा हुआ है और काल अपनी तीनों विधाओं से बँधा है-समय, स्थान व स्थिति। एक वस्तु एक समय में सुख देती है, दूसरे समय में दुःख देती है। एक स्थिति में सुख देती है, दूसरी स्थिति में दुःखकारी है, एक स्थान पर सुख देती है, दूसरे स्थान पर दुःख का कारण बन जाती है। सुख, न केवल देह व इन्द्रियों से बँधा है, वह देह की तरह काल की तीन विधाओं (समय, स्थान एवं स्थिति) से भी बँधा है। आनन्द देहातीत है अतः अकाल का है।**

जब हम अपनी प्राप्तियों को तहेदिल, मन व रूह से ईश्वर के चरणों में समर्पित कर देते हैं, तो हमें किसी भी स्थिति, समय एवं स्थान पर उनके आनन्दमय भोग का अधिकार मिल जाता है। यह दैवीय कानून है। यह छुटकारा मानव-जीवन में सबसे बड़ी उपलब्धि है। छोड़कर, छुटकारा कभी नहीं मिलता। यह छुटकारा तब मिलता है, जब जीते जी किसी भी प्रकार से हम अपनी उत्कृष्टतम बुद्धि से यह जान जाएँ और तहे दिल से मान लें, कि

संसार में हमारा **'कुछ नहीं'** है। सद्‌गुरु-कृपा से इसकी अनुभूति कर लें। जब यह दैवीय घटना घटेगी, तभी देह व जगत के तथाकथित उत्तरदायित्व से हम मुक्त हो पाएँगे और हमें Duty Free, Tax Free और Maintenance Free विशुद्ध भोग ही मिलेगा।

हम सब जानते हैं, कि हम नंगे-भूखे संसार में लाए गए थे और इसी प्रकार चिता पर लिटा दिए जाएँगे। अपनी उत्कृष्टतम् बुद्धि से हम यह जानते हैं, कि संसार में हमारा कुछ नहीं है और मन से मानते भी हैं। यह जानना और मानना दोनों दैहिक है। जब तक यह जान्यता और मान्यता रूह में अनुभूतिगम्य नहीं होगी, तब तक हित नहीं होगा। अपनी विलक्षण बुद्धि से यह जानना होगा, कि हम जीवन का कुछ नहीं जानते और संसार में हमारा कुछ नहीं है। जब तक यह बुद्धि समर्पित नहीं होगी तब तक श्रद्धा पैदा नहीं होगी। हम सद्‌शिष्य बन ही नहीं सकते। सद्‌शिष्य जब जान जाए, कि अपनी बुद्धि से वह कुछ नहीं जान सकता, तब बुद्धि की चारों दिव्य विधाएँ विवेक, प्रज्ञा, मेधा एवं ऋतम्भरा जाग्रत होती हैं। जब तक भौतिक स्तर को समर्पित नहीं करेंगे, हम अध्यात्म और परम सुख में प्रविष्टि के अधिकारी नहीं होंगे। दैवीय अधिनियमानुसार देह सहित जगत के समर्पण के समर्पण बिना दिव्यता का स्पर्श भी असम्भव है।

अपनी बुद्धि से जानने पर, कि मैं जीवन व जगत का कुछ नहीं जानता और मेरे हाथ में कुछ नहीं है, यह बुद्धि समर्पित हो जाएगी। तब मन भी मान जाएगा और मन आनन्दमय हो जाएगा। इसके बाद कृपा होगी, जो तीसरा रूहानी क्षेत्र है। फिर हमारी रूह में यह **'सद्'** उतर जाएगा, इसे Realisation या अनुभूति कहते हैं। अनुभूति, मन व बुद्धि से नहीं होती, **'आत्मा'** से होती है। आत्मानुभूति, आत्मज्ञान का द्वार है। इसके बाद ब्रह्मानुभूति और ब्रह्मज्ञान होता है और सब कुछ अनिर्वचनीय है। जब कोई **'सद्'** हमारी रूह व अनुभूति में उतर जाता है, तो वह सच्चिदानंद बन जाता है। क्योंकि आनन्दमय मन और चेतना युक्त बुद्धि का समन्वय ही **'सद्'** प्रकाट्य है। **'सद्'** के अनुभूतिगम्य होने के बाद आवरण सदा-सदा के लिए

हट जाता है। जब हमारी रूह द्वारा यह **'सद्'** अनुभूतिगम्य हो जाएगा, कि संसार में हमारा **'कुछ नहीं'** है, तो हमारी देह सहित **'सब कुछ'** हमें ईश्वरीय ही लगेगा। यह दिव्य अधिनियम है। जब **'सब कुछ'** ईश्वरीय ही लगेगा, तब हम उसका भोग ही करेंगे।

सद्गुरु-कृपा से देह में, देह द्वारा, देहातीत क्षेत्र (भस्मी) की अवधारणा द्वारा हम जान लेते हैं और मान लेते हैं, कि 'मैं भस्मी हूँ और भस्मी मेरी है। जब यह अवधारणा Realise हो जाएगी तो हमारी रूह में शिवत्व की जागृति हो जाएगी। मैं हूँ और मेरा **'कुछ नहीं'** है, की अनुभूति तभी होती है। मैं मात्र दृष्टा हूँ, मैं दृश्य नहीं हूँ। मैं स्रष्टा भी नहीं हूँ। यहाँ यदि मेरे लिए कुछ है, तो वह मेरे प्रभु के कारण है। इस प्रकार भस्मी की अवधारणा हमारी रूह में सद्, चेतन, आनन्द का प्रस्फुटन कर देती है और चरम सुख बिल्कुल महत्त्वहीन हो जाता है। तभी परम सुख के आनन्दमय एवं देहातीत क्षेत्र में प्रविष्टि होती है।

योगी स्वयं में विदेह होता है। वह केवल विदेह स्थिति में रहने के लिए देह का सदुपयोग करता है इसलिए दैहिक सुख का उसके लिए कोई महात्म्य ही नहीं होता। वह विदेह देह के साथ काल की तीनों विधाओं (समय, स्थान एवं स्थिति) से भी मुक्त होता है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(4 सितम्बर और 7 से 9 नवम्बर, 2007)

अव्यवस्तता

ईश्वरीय सत्ता के प्रतिनिधि पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश जगत में युगों-युगान्तरों से सतत् **व्यस्त** हैं। **व्यस्तता** आध्यात्मिक शब्द है, जो इन पंच-महाभूतों की दशानन (विस्तार के लिए अगला पृष्ठ देखें) एवं अदृश्य व्यस्तता के लिए प्रयुक्त होता है। इस व्यस्तता और उसके प्रभावों का प्रकाट्य शिव-शक्ति-क्रीड़ा से होता है। **शक्ति**, शिव का स्वरूप है और उसमें समाहित है, शिव में छोटी **'इ'** शक्ति का बीज है। शिव अपनी अतिशक्ति **वैराग** से स्वतः, स्वान्तःसुखाय एवं स्वयं में क्रीड़ा करता है। वैराग से वह पंच-प्राणों की महाशक्ति को प्रकट करता है। अतिशक्ति व महाशक्ति में क्रीड़ा होती है और इस क्रीड़ा में पंच-प्राणों से पंच-महाभूतों का प्रकाट्य होता है। इन्हीं के अद्भुत, चमत्कारिक व रहस्यमय संगम से समस्त सृष्टि का निर्माण व पालन होता है, जो अन्त में संहार के समय इन्हीं पंच-महाभूतों में विलय हो जाते हैं। अतिशक्ति वैराग की प्रतिरूप अदृश्य भस्मी, सहज जड़ पंच-महाभूतों की शक्ति है, जो इनके कण-कण में समानतया समाहित है। पंच-महाभूतों की संसार महानाट्यशाला शिव-शक्ति के विलास का मायिक प्रकाट्य है।

पंच-महाभूतों की समस्त सृष्टि की संघनित संरचना मानव-देह ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट एवं परम रहस्यमयी कृति है, जो स्वयं में समस्त चराचर जगत की प्रतिनिधि है। इसे हम उपेक्षित नहीं कर सकते। इसका एक क्षण-क्षण, एक-एक विधा कालेश्वर के हाथ में है। यह देह हमारी नहीं है। यह प्रभु की कृपा से हमें मिली है। यह हमारे लिए है लेकिन इसके अगले श्वास की भी हमें कोई सुनिश्चितता नहीं है। जब तक प्रभु की इच्छा होगी, यह हमारे पास रहेगी और बिना बताए कभी भी हमसे छीन ली जाएगी। इस

सद् को हम जान लें और मान लें। ये दो कार्य इस देह से कर लें। जानेंगे **बुद्धि** से और मानेंगे **मन** से। हमें मानव-देह में मानवीय बुद्धि मात्र इसलिए मिली है, कि हम यह जान लें, कि देह हमारी नहीं है, हमें मिली है और कभी भी छीन ली जाएगी।

आध्यात्मिक (ईश्वरीय) व्यस्तता अदृश्य रहती है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश युगों-युगान्तरों से व्यस्त हैं। यह ईश्वरीय व्यस्तता दशानन स्वरूपा है—निरन्तर, चिरन्तन, अबाध, अकाट्य, अविरल, अति उपयोगी (Highly Purposeful), गुणात्मक (Qualitative), विशिष्ट (Specific), अति संक्षिप्त (Precise) और अति सारगर्भित (Thematic)। हमारी देह भी इन्हीं पंच-महाभूतों का विलक्षणतम, अति चमत्कारिक संगम है। आजीवन देह के भीतरी जगत (Milio Interia) में सभी कार्यप्रणालियाँ हर समय दशानन कार्यरत रहती हैं। जिस प्रकार पंच-महाभूत दस रूपों में सतत् गतिशील हैं, उसी प्रकार जीवन-काल में हमारा हृदय, लिवर, किडनी, फेफड़े यहाँ तक कि देह का प्रत्येक सैल निरन्तर व्यस्त रहता है और दशानन चलती यह व्यस्तता दिखाई नहीं देती। हमारी धमनियों और शिराओं में सतत् रक्त-संचार होता रहता है। दिन-रात श्वास-प्रश्वास चलते रहते हैं। पाचन संयन्त्र दिन-रात कार्यरत रहता है और इनकी व्यस्तता अदृश्य रहती है। ये कभी नहीं कहते, कि हम थक गए, हमें कुछ क्षण विश्राम चाहिए। ये स्वयं कुछ नहीं करते, इनसे करवाया जाता है, इसलिए थकते नहीं हैं। लेकिन हम मानवों ने अपने तथाकथित व्यस्त लेकिन वास्तव में अस्तव्यस्त बाह्य क्रिया-कलापों द्वारा देह की भीतरी दशानन व्यस्तता को असंतुलित करके **'अव्यवस्तता'** में रूपान्तरित कर दिया। इसीलिए ईश्वर की अनुपम और अतुलनीय संरचना मानव-देह पाकर **भी** सृष्टि में सबसे अधिक दुःखी, त्रसित, भयभीत और अनेकानेक रोगों-दोषों से ग्रसित भी मानव **ही** है।

मानव-जीवन प्रारम्भारम्भ (भ्रूणावस्था, जब किसी माँ के गर्भ में मेरी देह के लिए गर्भाधान हुआ) से लेकर अन्तान्त (देह के भस्मी बनने) तक एक महोत्सव है। यह इसलिए है, कि हम जान जाएँ, कि किसलिए है। प्रभु ने

हमारी देह का एक-एक रोम बनाया है। हमारे लिए हमारे माता-पिता और समस्त ब्रह्माण्ड बनाया है। वह स्थान बनाया, जहाँ हमें रहना है। वह पृथ्वी बनाई, जहाँ हमें चलना है। सूर्य-चन्द्रमा बनाए, जहाँ से रोशनी लेनी है। हवा बनाई, जिसमें हमें श्वास लेना है। खाने-पीने के लिए जल और वनस्पतियाँ बनाईं और सब कुछ हमारे पैदा होने से पहले बना दिए, तो हमें क्या करना है ? सब कुछ हमारे लिए बना-बनाया एवं हुआ-हुआया है। जो प्रभु ने हमसे करवाना होगा, करवा लेंगे। सब कुछ हो रहा है और जो हो रहा है, वस्तुतः वह हो चुका है। **हमने दृष्टा भाव में जो हो चुका है, वह देखना है और मात्र यह देखना है, कि हमसे वह क्या करवा रहा है?** हमारे करने का पाने-खोने और होने से कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रभु कर-करवा क्या रहे हैं और होता क्या है, ये देखें और आनन्द लें। यदि हम स्वयं कर्ता बनेंगे, तो उस जादूगर की जादूगरी और पंच-महाभूतों के प्रपंचमय इन्द्रजाल का आनन्द नहीं ले पाएँगे।

हम संसार में आए नहीं, लाए गए हैं। उसकी योजना से लाए गए हैं और उसी की ही योजना से यहाँ से निकाल दिए जाएँगे। इसलिए जीवन उसी को चलाने दें। यही हमारी कर्मठता और व्यस्तता होगी। लेकिन हमारी समस्त व्यस्तता वस्तुतः अस्त-व्यस्तता है। दुर्भाग्यवश अस्तव्यस्तता को ही हम व्यस्तता और कर्मठता माने हुए हैं। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि देह के साथ तद्रूपता में, कि 'मैं अमुक-अमुक हूँ का भाव आते ही **मैं** (जीवात्मा) चेतना से अवचेतना में पतित हो जाता हूँ। अवचेतना स्वयं में Insufficient (कम) या Deficient (पूर्ण अभाव) चेतना है। हम अवचेतना में स्वयं को अपनी देह के नाम-रूप से पहचानते हैं, इसे देहाध्यास कहा जाता है। अवचेतना स्वयं में अभाव और कमी है। जहाँ जीवात्मा, अवचेतना में होगा अर्थात् स्वयं को देह के नाम-रूप से पहचानेगा, उसमें Insufficiency, Deficiency या दोनों रहेंगे ही। इसके बाद यह नाम-रूप की देह सहित जगत में कुछ भी पा ले और असीम प्राप्तियों की कल्पना भी कर ले, यह असंतुष्ट और अभावग्रस्त ही रहेगा, क्योंकि अवचेतना स्वयं में चेतना का अभाव या कमी है।

देह के साथ तद्‌रूपता में स्वयं को देह मानने के भ्रम में हम आजीवन बहुत व्यस्त रहते हैं। **जो स्वयं को व्यस्त कहते हैं, वे वास्तव में अस्तव्यस्त रहते हैं।** जीवन में भविष्यों का निर्धारण करने, योजनाएँ बनाने और तदनुसार कार्य करने में आजीवन **'अस्तव्यस्त'** रहते हैं और **अव्यवस्तता** में ही अति मूल्यवान जीवन को बरबाद कर देते हैं। यदि हम मात्र व्यस्त रहते, तो भी इतनी समस्या नहीं थी, लेकिन हम बिखर जाते हैं। इसका कारण यह है, कि जीवन **में** जितने भविष्य हैं, उनसे मिलने वाला **'कुछ नहीं'** है। जीवन **में** जो कुछ मिला-खोया अथवा हुआ सब कुछ बिखरा हुआ ही होता है और हमें भी अव्यवस्तता में ही व्यस्त रखता है।

जीवन **में** हम अव्यवस्त इसलिए हुए, क्योंकि जीवन में करने, पाने, खोने और कुछ न कुछ होने की चाहतों में हमारा अपना **अभावमय** एवं **आनन्दमय** चेतन स्वरूप आच्छादित हो गया और हम **अभाव में** हो गए। उस अभाव की तथाकथित पूर्ति के लिए हम जीवन **में** जो कुछ चाहते हैं, वे चाहतें अनेक और गणनातीत हैं। इनमें घिरे हुए हम जीवन **से** क्या चाहते हैं, इस विषय में सोच ही नहीं पाते। स्वयं को देह के साथ पहचानने में अवचेतना में उतरते ही **चाहतें** और तदनुसार **चिन्ताएँ** प्रारम्भ हो जाती हैं। चाहतों, चिन्ताओं, भविष्यों और परिवर्तनों का दामन-चोली का साथ है। जहाँ भी हम कोई भविष्य खड़ा करेंगे, तो उसके पीछे कोई न कोई चाहत अवश्य होगी। **'भविष्य'** स्वयं में **भय और विष** से युक्त होता है। **भविष्य** की **चिन्ताओं** के साथ **'भूत'** का **'शोक'** भी अवश्य होता है। विक्षेप, त्रास, मलिनता, भय, ईर्ष्या, ग्लानि, वैमनस्य, रोग-दोष, सन्देह, आधि-व्याधि-उपाधि का समस्त परिवार एकत्र होने लगता है। हम अस्तव्यस्त जीवन घसीटते रहते हैं और एक दिन जीवन समाप्त हो जाता है।

भविष्य की चिन्ता और भूत का शोक दोनों वर्तमान में होते हैं। हमारा वर्तमान हमेशा Ladden (ढका हुआ) Loaded (बोझिल) Masked (आच्छादित) Hidden (छिपा हुआ) रहता है। सदुपदेश दिए गए हैं, कि मानव तू चिन्ता मत कर। इसके स्थान पर यदि यह कहा जाए, कि ए मानव ! तू चाहत मत

कर और यदि चाहत करनी है, तो एक चाहत के विषय में सोच, कि तू **जीवन** से क्या चाहता है? जीवन **में** चाहतें समय, अवस्था, परिस्थिति, आयु, स्थान आदि के बदलने के साथ परिवर्तित होती रहती हैं। एक अवस्था ऐसी आती है, जब हम न चाहते हुए भी कुछ न कुछ चाहते रहते हैं। हम ज़िन्दगी के साथ तद्रूप हो जाते हैं, यह Pseudo अध्यास व अधिपत्य है। चाहतें हमें इसलिए चिन्तित करती हैं, क्योंकि वे देह की हैं, इसलिए Pseudo हैं। रोग का इलाज है, लेकिन **रोग से** का **इलाज सा** भी नहीं हो सकता। उसका इलाज **ही** नहीं होता।

हमें यह **रोग सा** लग गया है, कि मैं देह हूँ और देह मेरी है और युगों-युगान्तरों में यह अध्यास व अधिपत्य विभिन्न जन्मों-जन्मान्तरों में परिपुष्ट होता रहा है। हम possession पर Possession करते रहे, कि अब मेरे दो मकान हो गए है, व्यापार में हर वर्ष करोड़ों का लाभ होता है, समाज में मेरा नाम इज्ज़त से लिया जाता है, मेरे यहाँ बेटा हुआ है, अब मेरी बेटी का विवाह हो गया, मेरे पोता हो गया, पोते का विवाह देखने की मेरी बहुत इच्छा है, मेरी मृत्यु के बाद मेरे व्यापार को मेरे बेटे, पोते उच्चतम शिखर पर ले जाएँ आदि-आदि। एक चाहत कई चाहतों को पैदा करती है और कई चाहतें अनेकानेक चाहतों को पैदा करती हैं, क्योंकि उनका आधार कोई नहीं है। जीवन में समस्त चाहतों का मूल स्रोत देहाध्यास एवं देहाधिपत्य है। यह सिलसिला जन्मों-जन्मान्तरों से चला आ रहा है। इसलिए मेरी प्राप्तियाँ और नुकसान सब कुछ जाली (Fake) ही रहता है।

इस मिथ्या अधिपत्य और अध्यास में ही हमने कर्म को पारिभाषित किया। इसी से जीवन प्रारम्भ हुआ, इसी में जीवन चला और अन्त हो गया। इसलिए जो भी हमने किया अथवा नहीं किया, जो भी हुआ अथवा नहीं हुआ, सब कुछ Fake रहा। क्योंकि जीवन में सब कुछ जानने और मानने का आधार देहाध्यास व देहाधिपत्य रहा। जो जान्यता और मान्यता निराधार होगी, उस पर आधारित सब कुछ निराधार ही होगा। युगों-युगान्तरों से कुछ न कुछ चाहना हमारा स्वभाव, हमारी आदत बन गया है। अपने लिए,

अपने निजी सम्बन्धियों के लिए अच्छा चाहना या बुरा चाहना अथवा कोई भी चाहत, कमी अथवा अभाव की सूचक है। हम आजीवन अभावग्रस्त रहते हैं और कुछ न कुछ कमी अनुभव करते रहते हैं। जीवन **में** कभी कोई तृप्त और सन्तुष्ट नहीं होता। हमारी समस्त प्राप्तियाँ यहीं रह जाती हैं और हम असंतुष्ट रहते हुए आसक्ति को लेकर संसार से चले जाते हैं। हमारे पल्ले चाहतों के अतिरिक्त कुछ नहीं पड़ता।

सद्‌गुरु कृपा सारी चाहतों को **एक चाहत** में और जीवन **में** भविष्यों को जीवन के **एक भविष्य** में रूपान्तरित कर देती है। काँटा, काँटे से निकलता है। चाहतों को चाहत और भविष्यों को भविष्य ही निर्मूल करेगा। सद्‌गुरु, सद्‌शिष्य से पूछता है, कि तुम आखिर **जीवन से** क्या चाहते हो? जीवन **में** सारी चाहतें इस एक चाहत के सामने नत मस्तक हो जाती है। इस एक चाहत का पलड़ा सारी चाहतों से भारी पड़ता है। यह चाहत मात्र सद्‌गुरु द्वारा दी जाती है। यह चाहत होनी बहुत कठिन है, वस्तुतः यह जिज्ञासा की पराकाष्ठा है। जीवन में चाहतें जिज्ञासा को पनपने नहीं देतीं, जिज्ञासा का विध्वंस कर देती हैं। जीवन **से** मैं क्या चाहता हूँ, यह जिज्ञासा सद्‌गुरु द्वारा पुष्ट, प्रमाणित एवं सत्यापित होती है। यह चेतना की चाहत है। जीवन **में** चाहतें नाम-रूप की देह से पहचान में अवचेतना की चाहत हैं, जो पूरी होने पर और बढ़ जाती हैं। कोई न कोई **हवस** मृत्यु तक बनी रहती हैं और अन्ततः आसक्ति एवं अकाल मृत्यु में ले जाती है।हम जीवन-काल में कभी भी चाहतों से छुटकारा नहीं पा सकते। छुटकारा न भी मिले, कम से कम हमारी चाहतें हमें तनावित, भयभीत और चिन्तित तो न करें। समस्या यह है, कि **ये चाहतें, चिन्ता की पोषक और चिन्तन की शत्रु हैं।** चिन्तन के बिना मनन नहीं हो सकता। यह एक चाहत, कि 'मैं जीवन से क्या चाहता हूँ' चिन्तन की पोषक है और जीवन में चाहतों और चिन्ताओं को विध्वंस कर देती है। यह एक चाहत किसी चाहने वाले को ही मिली है। **'निद्रा'** शास्त्रीय शब्द है। **'नि' दरा** जिसका कोई दर न हो। जिसने सद्‌गुरु का दर नहीं पकड़ा, वह तथाकथित जाग्रत होते हुए भी निद्रा में (मोह निशा में सुषुप्त) ही

रहता है। आध्यात्मिक दृष्टि से निगुरा अथवा निदरा गाली है। जिसने प्रभु को, सद्गुरु को नहीं चाहा, उसे जीवन **में** बहुत सी चाहतें मिल जाती हैं। उनके साथ चिन्ता, भय, विक्षेप आदि का परिवार भी संग आ जाता है। जीवन में चाहतें चिन्तन-मनन और हमारे विशुद्ध स्वरूप का शोषण कर लेती है। जिसने प्रभु को चाहा, उसे यह एक चाहत मिल जाती है, साथ ही अनिर्वचनीय विश्राम भी मिल जाता है। चिन्तन प्रारम्भ होता है, कि जीवन कब तक है, क्यों है, मेरे होने का अर्थ क्या है?

चाहतों से व्यथित और त्रितापों से दग्ध जब कोई सद्शिष्य जिज्ञासु, सद्गुरु की शरण में पहुँचता है, तो सद्गुरु उसे एक चाहत करने का परामर्श देता है, कि तू सम्पूर्ण जीवन से क्या चाहता है। जीवन में चाहतें पशुओं की भाँति हैं। **लेकिन यह एक चाहत, कि मैं जीवन से क्या चाहता हूँ, पशु की हो ही नहीं सकती, यह मात्र मानव की ही होगी।** पशु, जीवन के भविष्य के विषय में चिन्तन नहीं कर सकता क्योंकि पशु की इस विषय में जान्यता और मान्यता ही नहीं है। सद्गुरु कहता है, कि तेरी सारी चाहतों को यह एक चाहत मार देगी। यह एक चाहत मात्र मानव ही कर सकता है। इस एक चाहत की उत्पत्ति के लिए सद्गुरु पहले जीवन में चाहतों को पराकाष्ठा की सीमा तक कल्पना द्वारा तुरन्त पूरी हुई मानने का परामर्श देता है। हम अपनी चाहतों को कितना भी विशाल स्वरूप दे दें, वह सीमित ही रहती हैं। हम सीमित असद् की सीमा भी नहीं जानते, तो हमारी **सद्** में प्रविष्टि कैसे होगी। चाहतों के लिए कल्पना करने में भी हम अधूरे रहते हैं। सद्गुरु कहता है, कि तू जो कुछ चाहता है अभी इसी समय मान ले, कि सब कुछ हो गया, तो शेष जीवन में क्या करेगा? तू दो सौ साल का हो गया, सारी पृथ्वी का धन तेरा हो गया, तेरे पोतों के भी पोते हो गए, तेरा चारों ओर नाम यश फैल गया और दुनिया भर की डिग्रियाँ, पद-प्रतिष्ठा तूने प्राप्त कर ली, तो फिर क्या हो जाएगा और तू क्या करेगा ?

सद्शिष्य कहता है, कि महाराज ! जो नहीं हुआ उसके लिए मैं कैसे मान लूँ, कि हो गया? सद्गुरु कहता है, जो तू चाहता है और दिन-रात

उसके लिए संघर्षरत है, वह फिर भी न हुआ तो क्या करेगा? तेरा तो अमूल्य समय व्यर्थ हो गया। सद्‌गुरु आश्वस्त कर देता है, कि तू जन्मों-जन्मान्तरों से अपनी मिथ्या जान्यताओं और मान्याओं के कारण फँसा है, तो सद् जान्यता एवं मान्यता से ही मुक्ति मिलेगी। यही Realisation की ओर मार्ग है। अतः तू यह मान ले, कि जीवन में जितनी भी चाहतें हैं इसी समय तुझे प्राप्त हो गईं, तो फिर तू क्या करेगा ? तभी तू स्वयं से पूछ पाएगा, कि आखिर जीवन से तू चाहता क्या है? जिस जीवन का कभी भी अन्त हो सकता है, उससे तू चाहता क्या है? इस चाहत के होने से तेरी सारी **चिन्ताएँ** समाप्त हो जाएँगी और **चिन्तन** प्रारम्भ हो जाएगा। तुझे ज्ञान हो जाएगा, कि तू नेत्र मूँद कर जीवन जी रहा है। तुझे मिथ्या तसल्ली रहती है, कि तू व्यस्त है। तेरी बुद्धि इसका उत्तर खोज ही नहीं सकती, कि तू सम्पूर्ण जीवन से क्या चाहता है? इसलिए तेरी बुद्धि अवश्य समर्पित हो जाएगी। तेरा अपना समर्थ और ज्ञान कम पड़ जाएगा।

तू जीवन से क्या चाहता है, इस चाहत को पूरा करने के लिए तुझे जीवन-काल में जीवन से बाहर आना पड़ेगा। What do you want out of life. To fulfill this want during your life you have to get out of life. Ultimate future **of** life is **off** the life. जब जीवन से तू बाहर होगा, तो यह सोच ही नहीं सकता, कि तू समस्त जीवन से क्या चाहता है? क्योंकि तब तू नहीं रहेगा। सद्‌गुरु कहता है, कि अवचेतना में तुझे देह की धारणा हो गई, तो अवचेतना में अपनी देह की भस्मी की अवधारणा द्वारा अपनी चेतना का स्पर्श प्राप्त कर ले।

देह के रूप में **'मैं'** हूँ, तो ही पूर्वजन्म, यह जन्म और आगामी जन्मों की बात होती है। यह हमारा महाभ्रम ही है, इसी भ्रमित अवस्था में हम अपने तथाकथित नाती-पोतों के लिए धन-सम्पदा, पौपर्टी आदि बनाते हैं। निर्वाण, जीवन-काल में ही होता है। जब मैं नहीं रहूँगा, तो कुछ नहीं रहेगा। ***'न भूतो, न भविष्यति।'*** जीते जी कुछ क्षण मेरा स्वयं में बाध हो जाए, यह **लययोग** है। लययोग के अकाल-काल में देह सहित जगत का कुछ नहीं रहेगा, जैसे

जन्म से पहले कुछ नहीं था। यह अनुभूति है, जहाँ समस्त जान्यताएँ और मान्यताएँ समाप्त हो जाती हैं। जब स्वयं में मेरा **बाध** हो जाएगा, तो मेरे **बाद** कुछ नहीं रहेगा। यह अनुभूतिगम्य तब होगा, जब मैं जीते जी इस तथाकथित अवचेतना की देह रूपी धारणा पर भस्मी की अवधारणा करके अपनी चेतना रूपी फल प्राप्त कर लूँ। असद् की धारणा में युगों से **'मैं'** (जीवात्मा) अवचेतना में भटक रहा हूँ। **'सद्'** की अवधारणा मुझे चेतना में प्रविष्टि दिला देगी।

सद्गुरु कहता है, कि तू देह धारणा पर अपनी देह के उस निश्चित, परिलक्षित एवं दर्शित भविष्य की अवधारणा कर, जो तू कभी नहीं देखेगा। तेरी देह **'भस्मी'** अवश्य बनेगी, तू देह है इसलिए खाक ज़रूर बनेगा। लेकिन अपने उस भस्मी रूप को तूने जन्मों-जन्मान्तरों में कभी नहीं देखा और कभी नहीं देखेगा। इसलिए देह की धारणा का सदुपयोग करते हुए अवधारणा कर, कि तू भस्मी बन गया है। तू भस्मी है और भस्मी तेरी है। जैसे तू अब कहता है, कि मैं अमुक-अमुक (देह का नाम-रूप) हूँ और देह मेरी है। तू अध्यास व अधिपत्य मत छोड़, देहाध्यास और देहाधिपत्य की धारणा पर भस्माध्यास व भस्माधिपत्य की अवधारणा कर ले।

अपने स्वरूप से विमुख होकर हम अपनी स्वरूपगत विभूतियों को मायिक देह सहित जगत की विभिन्न विधाओं में खोजने का युगों-युगान्तरों से असफल प्रयास कर रहे हैं। इसलिए हम व्यस्तता के नाम पर अस्तव्यस्त हो गए। पृथ्वी पर हमने अवैध अधिपत्य कर लिया, कि अमुक-अमुक बहुत बड़े ज़मींदार हैं। क्या कोई हवा, जल, आकाश, अग्नि पर कब्ज़ा कर सकता है, तो हमने प्रभु की ज़मीन पर कब्ज़ा कैसे कर लिया ? बड़े-बड़े राजा-महाराजा ज़मीन के लिए कट-कट कर मर गए, कोई भी ज़मीन साथ नहीं ले जा सका। जिस देह का हमें प्रोग्राम पता नहीं, उसी से हम प्रोग्राम बनाते हैं। **जिस तरह हम समय व्यतीत कर रहे हैं, वह समय का अपमान है।** हम अपनी मिथ्या धारणाओं के आधार पर खड़ी अनेकानेक Pseudo चाहतों को पूरा करने में अमूल्य समय व्यर्थ ही नहीं अनर्थ में बिता रहे हैं।

भस्मी की अवधारणा में सिद्ध, **सद् देह** का एक-एक पल, स्थान, स्थिति से बँधा हुआ अकाल से जुड़ा रहता है। हमारी देह काल से बँधी है और काल अकाल (कालेश्वर) का है। हमने देह के काल को अपनी घड़ी के समय से बाँध लिया, जो काल की समय, स्थान और स्थिति विधाओं का एक अंग मात्र है। सद्गुरु-कृपा से जब स्थिति अनुकूल होगी, तो समय एवं स्थान भी हमारे अनुकूल ही होंगे और जब समय एवं स्थान को हम बाँधने का प्रयास करते हैं, तो **'स्थिति'** हमारे प्रतिकूल हो जाती है। हमारे सारे कृत्य और सारी व्यस्तता निरर्थक, व्यर्थ एवं अनर्थकारी होती है। देह स्वयं में मिथ्या नहीं है। इस पर अध्यास व अधिपत्य छोड़ देंगे, तो देह हमें **'सद्'** और सद्पुरुषों की ओर ले जाएगी। सत्संग में बिठाएगी जिससे सद् विचार और सम्यक दृष्टि मिलेगी।

समस्त वक्तव्य का सारांश यह है, कि होश सम्भालते ही मानव बुद्धि में भाँति-भाँति के अनेकानेक प्रश्न उठने लगते हैं। मैं कहाँ, किन माता-पिता से, किस प्रकार की सामाजिक, पारिवारिक व आर्थिक स्थिति में पैदा हुआ। मुझे क्या बनना है, क्या करना है और उसके लिए किस प्रकार साधन जुटाने हैं, मुझे उच्च शिक्षा, पद-प्रतिष्ठा किस प्रकार मिले, शारीरिक, बौद्धिक दृष्टि से मैं किस प्रकार सबसे आगे रहूँ, मेरी सन्तान, परिवार और सम्पूर्ण परिवेश में कोई मेरा अपना या विरोधी क्यों है, मुझे मृत्यु कभी भी आ सकती है क्योंकि मैं पैदा हुआ था, मैं कब, कहाँ और कैसे मरूँगा, मैं नहीं जानता। इस प्रकार के असंख्य एवं अगणित प्रश्नों का समूह मुझे घेरे रहता है। **मैं इन्हीं में आजीवन अव्यवस्तता से घिरा हुआ व्यस्तता के नाम पर अस्तव्यस्त रहता हूँ।**

सद्गुरु-कृपा से इस प्रकार के अनेकानेक प्रश्नों को निगल कर सद् जिज्ञासा उत्पन्न होती है, कि मैं पैदा क्यों हुआ हूँ, **मैं न होता तो क्या होता ?** सम्पूर्ण जीवन से मैं क्या चाहता हूँ? बाह्य दृष्टि से प्रश्नवत् प्रतीत होती यह जिज्ञासा हज़ारों प्रश्नों को हटा कर पैदा होती है। पैदा होते ही लाखों प्रश्नों को निगल जाती है क्योंकि जिज्ञासु किसी भी कीमत पर अपनी

जिज्ञासा का समाधान चाहता है और इसके अतिरिक्त कुछ सुनना नहीं चाहता। जिज्ञासा के शान्त होने पर जिज्ञासु के सारे प्रश्नों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। जैसे देह का अन्तान्त भस्मी है, उसी प्रकार सभी प्रश्नों का अन्तान्त जिज्ञासा की शान्ति है।

लययोग या भस्मीयोग के भी तीन आयाम हैं। सद्गुरु-कृपा से भस्मीयोग का विचार आते ही हज़ारों जिज्ञासाएँ शान्त होने लगती हैं। भस्मीमय स्थिति बनने के दौरान लाखों जिज्ञासाएँ स्वतः हट जाती हैं तथा भस्माध्यास में पूर्ण प्रविष्टि पर जिज्ञासाओं का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। जिस प्रकार जिज्ञासाएँ प्रश्नों के अस्तित्व को समाप्त कर देती हैं उसी प्रकार भस्मीयोग की सिद्धि से जिज्ञासाएँ स्वतः समाप्त हो जाती हैं। वह भस्मीमय विदेह देह समय-समय पर साधक को सब कुछ स्वतः जनवाती रहती है। वही अभावमय आनन्द की परिपूर्ण स्थिति है। उस अभावमयी मानसिक स्थिति में ज्ञान, ध्यान की भी कोई चाहत नहीं रहती। मात्र एक चाहत रहती है, कि ''प्रभु ! मैं भस्मी हूँ, मैं अग्नि हूँ, मैं तेरा स्पर्श चाहता हूँ। मैंने आज तक तुमसे बहुत कुछ लिया है, अब यह भस्मी और अग्नि तेरी कृपा से मेरी जन्मों-जन्मान्तरों की कमाई है। मेरी यह भस्मी और अग्नि अविरल नहीं है। तेज़ हवा के झोंके व तूफान मुझ अग्नि को बुझा देंगे और मुझ भस्मी को उड़ा कर ले जाएँगे। बादलों से बरसती यह घनघोर वर्षा मेरी भस्मी और अग्नि को बहा कर ले जाएगी। मेरी रक्षा करो। इसे मैं तुझे भेंट करके तुझसे अविरल व अखण्ड अग्नि की छोटी सी टिमटिमाती हुई लौ और चुटकी भर भस्मी, प्रसाद रूप में चाहता हूँ।''

जब तक वह भस्मी और अग्नि सद्गुरु का प्रसाद बन कर अविरल व अखण्ड रूप में नहीं मिलती, तब तक साधक को सिद्धि (Realisation) नहीं मिलती। उस भस्मी के ऊपर वह छोटी सी जोत जब हमारे हृदय में जल जाएगी, तो वहीं से अनंत दीपावली शुरू हो जाएगी। वह जीव-ज्योति अविरल, अखण्ड, अकाट्य एवं अबाध होगी। उसे वायु बुझा नहीं सकती और पानी बहा नहीं सकता। हम आलोकित व प्रकाशित हो जाएँगे। हमारा हर क्षण

दीपमय होगा। हमारे हृदयों में ज्ञान और वैराग का दीप जल जाएगा। यह एक नन्हा सा दीप जलेगा, तो कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड दैदीप्यमान हो जाएँगे, इस दीप का आधार भस्मी है। यही हमारा स्वरूप है।

एकान्त (नाम-रूप की एक देह की अवचेतना का अन्त) से उत्पन्न हुई देह जीवात्मा के सत्संग से विदेह-देह हो जाती है। इस स्थिति में स्वतः सत्संग प्रारम्भ हो जाता है। **एकान्त की मानसिक स्थिति का ध्यान आते ही हज़ारों स्थितियाँ समाप्त हो जाती हैं। एकान्त में उतरते ही लाखों स्थितियाँ लुप्त हो जाती हैं और एकान्त में पूर्ण प्रविष्टि होने पर स्थितियों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है।** जब ज़िन्दगी को हम ज़िन्दगी से परे होकर देखते हैं, तो ज़िन्दगी **में** कोई चाहत नहीं रहती। **ज़िन्दगी को हमारी चाहत हो जाती है**ः–

''मैं तो नाला हूँ ज़िन्दगी से मगर, ज़िन्दगी मुझसे प्यार करती है
मैंने कितना इसे ज़लील किया फिर भी कम्बख्त मुझपे मरती है।''

Realisation (अनुभूति) आत्मा से होती है। **'सद्'** का आधार मिलने पर ही कोई जान्यता व मान्यता आत्मसात् होती है। सत्य, असत्य दोनों असद् हैं। कोई भी **सद्** जब रूह में अनुभूतिगम्य होता है, तो सारी जान्यताएँ और मान्यताएँ एक ओर हो जाती हैं। रूह में क्या उतरना है, इसका निर्णय मात्र ईश्वर के हाथ में होता है। यदि हमने सद्गुरु के श्रीमुख से श्रवण करके कुछ जान लिया और मान भी लिया; वह भी जब तक उसी की कृपा से अनुभूतिगम्य नहीं होगा, तब तक वह निराधार ही रहेगा। **सद् एक** छोटा सा **नुक्ता** है, जब वह रूह द्वारा अनुभूतिगम्य हो जाता है, तो उसके साथ चेतनता और आनन्द भी स्वतः आ जाता है। जन्मों-जन्मान्तरों का अज्ञानान्धकार तुरन्त समाप्त हो जाता है। चेतन व आनन्द के समन्वय से पंच-महाभूतों जैसा ही दस विशेषताओं (दशानन) से युक्त साकार प्रकाट्य **'सद्'** ही होता है।

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(9 नवम्बर से 16 नवम्बर, 2007)

गति, स्थिति एवं चाहत

आज का विषय उत्कृष्ट व अति गुणात्मक मानव-जीवन के लिए परमावश्यक और अति सारगर्भित है। विषय है–**'गति, स्थिति एवं चाहत'** (The Movement, The State and The Want) आप समस्त जिज्ञासुओं की अति श्रद्धामय एकाग्रता वांछनीय है।

गति, स्थिति एवं चाहत–इन तीन बिन्दुओं में हमारा सम्पूर्ण मानव-जीवन चलता रहा है, चल रहा है और चलता रहेगा। इनका ज्ञान एवं अनुभूति न होने के कारण हम भटक कर दुर्गति को प्राप्त हो जाते हैं। हमारी असहनीय स्थिति बन जाती है। हमारी चाहतें हमें घोर नरक में ढकेल देती हैं। सद्‌गति होने पर हमारी स्थितियाँ जब ईश्वरीय वैराग से ओत-प्रोत परम स्थितियाँ (स्थिति पर स्थिति यानि परम स्थितियाँ) बन जाती हैं, तो हमारी चाहतें ही हमें ईश्वर के चरणों में ले जाती हैं। इस विरोधाभास के मध्य सेतु क्या है? समस्त महाब्रह्माण्ड की उत्कृष्टतम एवं सर्वोकृष्ट मानव-देह धारण करने पर भी हम मानव अधिकतर दुःखों को क्यों प्राप्त होते हैं? हमारा जीवन आधि, व्याधि, उपाधि, भय, रोग-दोष, त्रास, मल, विक्षेप, आवरण से आवृत्त क्यों है, ये बहुत ज्वलन्त जिज्ञासाएँ हैं, जिनका मैं आज के इस प्रवचन में समाधान करने का प्रयास करूँगा।

सच्चिदानंद ईश्वर स्वयं में अदृश्य, निराकार एवं परम स्थिर है। ***''न कित आएबो न कित जाएबो''*** ईश्वर की स्थिरता को शास्त्र में तीन शब्दों द्वारा स्थापित किया गया है–**''ठोस-घन-शिला''**। जो ईश्वर कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों का निर्माण, पालन एवं संहार करता है, वह स्वयं में परम स्थिर है।

स्थिरता ही सद्ता, चेतनता और आनन्दमयता की कसौटी है। जहाँ स्थिरता है, वहाँ दिव्यता है। वहाँ कार्यशीलता, व्यस्तता और उसका कारण अदृश्य होता है। अतः स्थिरता की गति अदृश्य होती है, उसका प्रभाव दृश्यमान होता है।

आत्म-चिन्तक के लिए स्वाध्याय एवं आत्म-विश्लेषण परमावश्यक है। मानव-देह धारण करके होश सम्भालने पर परिपक्व होश में, स्वाध्याय करते हुए अपनी अस्थिरता तथा अर्थहीन, व्यर्थ, निरर्थ एवं अनर्थपूर्ण भटकन को जानने, मानने एवं दूर करने के प्रयास में जो रत नहीं है, वह मानव-देहधारी, मनुष्य कहलाने तथा मानव-जीवन जीने योग्य नहीं है। अपनी भटकन, अस्थिरता, अपने विशुद्ध सच्चिदानंद स्वरूप (इष्ट अथवा सद्गुरु) से दूरी का विश्लेषण करने का जिसके पास समय नहीं है, वह जीवन को घसीट ही रहा है। जितना हम स्थिरता से दूर होते हैं, उतने ही सद्गुरु से दूर होते हैं और हमारी दुर्गति होती है। जब भटकन को Visualise करेंगे, जानेंगे और मानेंगे तो स्थिरता की ओर गति करेंगे।

मन जब आनन्दित होता है, तो उस प्रसन्नता का प्रकाट्य हमारे चेहरे के भावों, कृत्यों एवं वाणी से किसी न किसी रूप में होता है। प्रेम, घृणा, क्रोध आदि स्वयं में दिखाई नहीं देते, लेकिन उनका दैहिक भावों, कृत्यों एवं शब्दों से जब प्रकाट्य होता है, तो दिखाई देता है। ईश्वर के आनन्द और ईश्वरीय चेतना का प्रकाट्य पंच-महाभूतों के ब्रह्माण्ड में **'सद्'** रूप में हुआ है। पंच-महाभूतों के सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में ईश्वर की सर्वोत्तम एवं सर्वोत्कृष्ट कृति मानव-देह है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश से निर्मित और पालित मानव-देह रूपी प्रपंच संहार के बाद जब पंच-महाभूतों में विलीन हो जाता है, तब वह प्रपंच नहीं रहता। जो पाँचों तत्त्वों पर आधारित हो उसे प्रपंच कहते हैं। **समस्त जगत जिसे हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा देख, सुन, सूँघ, चख और स्पर्श कर रहे हैं, सब प्रपंच है। हम प्रपंच से प्रपंच को देखते, सुनते, चखते, सूँघते और छूते हैं। मानव-देह का अन्त मृत्यु है और अन्तान्त भस्मी है। जब मानव-देह पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है, तो**

पंच-महाभूतों के शेष का जो अवशेष भस्मी रह जाती है, वह प्रपंच रहित होती है।

ईश्वरास्तित्व (ईश्वर+अस्तित्व) का प्रतिनिधित्व पंच-महाभूतों के रूप में होता है। पंच-महाभूत निराकार हैं, लेकिन दृश्यमान हैं। सहज जड़ पंच-महाभूतों में सहज गति है और ये सदा व्यस्त हैं। ईश्वर के अस्तित्व के निर्देशों एवं आदेशों का पंच-महाभूतों में प्रतिनिधित्व होता है। पंच-महाभूतों में होती गतियों द्वारा हर क्षण निर्माण, पालन एवं संहार होता रहता है। इन पंच-महाभूतों को सरलता से अनुभव किया जा सकता है।

पंच-महाभूतों में गतियाँ शिव के वैराग की प्रतिनिधि, अदृश्य भस्मी की है। अदृश्य भस्मी या वैराग स्वयं में शिव की अतिशक्ति है, जिससे पंच-प्राणों की अदृश्य महाज्योति प्रकट होती है। अतिशक्ति और महाशक्ति में स्वतः, स्वयं में और स्वान्तःसुखाय क्रीड़ा होती है। यह क्रीड़ा स्वयं से, स्वयं में, स्वयं के द्वारा स्वतः होती है, जो किसी को रिझाने, मनाने या दिखाने के लिए नहीं है, बल्कि स्वान्तःसुखाय है। इस क्रीड़ा के आनन्द का प्रकटीकरण सहज जड़ पंच-महाभूतों के रूप में होता है। समस्त क्रीड़ाएँ और क्रियाएँ अदृश्य हैं, उनका प्रभाव एवं प्रतिफल देखा जा सकता है।

प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान का प्रकाट्य क्रमशः अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल और आकाश के सहज जड़ तत्त्वों में होता है। इन सहज जड़ तत्त्वों में होती गतियों के मूल स्रोत का वैज्ञानिक पता नहीं लगा सके हैं। वैज्ञानिकों ने खोज लिया, कि पृथ्वी घूमती है। वह अपनी धुरी पर चौबीस घण्टे में चक्कर लगाती है, जिससे दिन-रात बनते हैं। सूर्य के चारों ओर एक वर्ष में चक्कर पूरा करती है, जिससे मौसम में परिवर्तन होता है। पृथ्वी, वायु, जल, आकाश के उल्कापिण्ड और अग्नि सब निरन्तर गतिमान हैं और प्रत्येक की गतियाँ एक दूसरे से भिन्न हैं। इनकी गतियों द्वारा लाए गये प्राकृतिक प्रकोप भूकम्प, सुनामी, बवण्डर, आँधी-तूफान आदि ईश्वर के आदेशों से प्रकट होते हैं। जल निम्नगामी है, अग्नि ऊर्ध्वगामी है, पृथ्वी घूमती है, आकाश में विभिन्न ग्रह-नक्षत्र अपनी-अपनी कक्षाओं में घूमते हैं,

वायु निरन्तर बह रही है। अतः सहज जड़ पाँचों महाभूतों की गतियाँ विशिष्टतम् हैं, इनकी गतियों के स्वरूप व प्रकार, पृथक्-पृथक् हैं, जो दस रूपों (दशानन) से युक्त हैं:–

चिरन्तन, निरन्तर, अविरल, अकाट्य, अबाध, अतिसंक्षिप्त (Precise), अति सारगर्भित (Themetic), अतिविशिष्ट (Specific) अति गुणात्मक (Qualitative) और महा उद्देश्यपूर्ण (Highly Purposeful).

समस्त गतियाँ इन दशाननों के होते हुए भी स्वयं में अदृश्य है। अदृश्यता में इन गतियों का रहस्य छिपा हुआ है। उन गतियों का प्रभाव दृश्यमान होता है। मानव को ईश्वर ने सर्वोत्कृष्ट बुद्धि से नवाज़ा है। हमने मानव-बुद्धि की पहुँच से परे के प्रकरणों को जानबूझ कर या अनजाने में अहंवश उपेक्षित कर दिया और जीवन का सारा रहस्य हमारे द्वारा उपेक्षित उन विधाओं में छिपा हुआ है। **'सद्'** छिपा हुआ है। यदि हम मानवों की बुद्धि वहाँ पहुँचने की सक्षमता न रखती हो, तो कम से कम समर्पित तो हो जाए। मानव-बुद्धि मात्र यह जानने के लिए है, कि मैं कुछ नहीं जानता और अपनी बुद्धि से जान ही नहीं सकता। जानने के साथ मान भी ले। जान्यता, जब मान्यता भी बन जाएगी, तो ईश्वरीय-कृपा से अनुभूतिगम्य होगी। Realisation (अनुभूति) कृपा-साध्य है। अनुभूति न हमारी बुद्धि से होती है, न मन से, अनुभूति आत्मा से होती है।

पंच-महाभूतों की दशानन गतियाँ ईश्वरीय व्यस्तता की प्रतीक हैं। ईश्वर स्वयं अदृश्य है और उसकी गतियाँ भी अदृश्य हैं। ईश्वर ने गतियों की शक्ति को इतना गुप्त रखा है, कि शक्ति तो अदृश्य है ही, वह गति भी दृश्यमान नहीं होती। गतियों के प्रभाव का बाह्य प्रकाट्य देखा जाता है। पंच-महाभूतों में दृश्यमान प्रभावों द्वारा गतियों का संकेत मिलता है। उदाहरणतः अभी संध्या है, एक-दो घण्टे बाद बाहर देखें, तो अंधेरा हो जाएगा। अब वह अंधेरा पृथ्वी के घूमने के कारण हुआ। पृथ्वी घूमती नहीं दिखी, लेकिन उसकी गति का प्रभाव दृश्यमान हुआ। जितनी ईश्वरीय व्यस्तता है, वह पर्दे में है और दशानन है। शिव के वैराग की प्रतिरूप भस्मी

ही समस्त गतियों का कारण है। चेतन भस्मी ही प्राण शक्ति है, जो हम मानवों में भी है, जिससे हमारा जीवन चलता है। यह चेतन भस्मी भी दशानन एवं अदृश्य है।

पंच-महाभूत सहज जड़ होते हुए भी अविरल, निरन्तर, चिरन्तन, अकाट्य, अबाध, अति सारगर्भित, अति संक्षिप्त, अति विशिष्ट, अति उद्देश्यपूर्ण और अतिगुणात्मक रूपों में गतिशील है। सहज जड़ होने के कारण इन पाँचों महाभूतों को अपना, अपनी गतियों की विधाओं व विशिष्टताओं तथा ईश्वर का, किसी का भी कोई ज्ञान नहीं है। पंच-महाभूतों की अदृश्य व दशानन गतियाँ काल से बँधी हैं, जिनका स्वामी कालेश्वर है। इनकी गतियों में कालेश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। सहज जड़ पंच-महाभूतों से समस्त ब्रह्माण्ड के प्रपंच का निर्माण होता है। पंच-महाभूतों से पालन एवं संहार होने के बाद पंच-महाभूतों में ही विलय हो जाता है। विलय होने के बाद अवशेष भस्मी प्रपंच रहित तत्त्वातीत तत्त्व है। जो शिव की विभूत्यातीत विभूति **'वैराग'** का प्रतीक है। इन पाँचों महाभूतों की प्राण शक्ति यह वैराग है, जो स्वयं में अदृश्य एवं निराकार है। इसी से पंच-प्राणों की महाशक्ति प्रस्फुटित होती है, जो पंच-महाभूतों के रूप में प्रकट होती है। यह वैराग अदृश्य भस्मी के रूप में पाँचों महाभूतों के कण-कण में समानतया समाहित है। यही इनकी दशानन गतियों की शक्ति है क्योंकि बिना शक्ति के कोई गति नहीं हो सकती। पंच-महाभूतों के समस्त प्रपंच का संचालन, संवाहन, निर्देशन, सम्पादन, प्रतिपादन, वैराग की शक्ति की प्रतीक अदृश्य भस्मी के द्वारा ही होता है। वैज्ञानिक पंच-महाभूतों की गतियों की इस शक्ति का पता नहीं लगा सके।

अध्यात्म, विज्ञानातीत विज्ञान है। जहाँ मानव-बुद्धि मूक व निरुत्तर होकर समर्पित हो जाती है, वहाँ से इस आध्यात्मिक विज्ञान क्षेत्र में प्रविष्टि मिलती है। पंच-महाभूतों को स्थिरता की शक्ति गति देती है। गति स्थिरता की है, इसका प्रमाण यह है, कि गति होते हुए भी अदृश्य है और अदृश्य होते हुए भी दशानन है। योगी की गति दिखाई नहीं देती, वह गुफा में बैठा हुआ

ईश्वर के द्वारा क्या करवा रहा है, यह कोई नहीं जान सकता। महापुरुषों के सद्संकल्प उनकी स्थिरता की शक्ति से प्रकट होते हैं। ध्यान, समाधि, जप, तप, संयम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, यज्ञ-हवन आदि पुरुषार्थ कर्मों द्वारा हमारी स्थिर शक्ति संघनित हो जाती है। फिर हमारे द्वारा जो कुछ गति होती है, वह सद्गति ही होती है। दुर्गति, ईश्वर से दूरी की गति है, जो स्थिरता से अन्य है। पंच-महाभूतों की मानव-देह का अन्तर्जगत बाहर से दिखाई नहीं देता, कभी-कभी महसूस होता है। उसमें समस्त गतियाँ दस सिरों (दशानन) के अन्तर्गत ईश्वरीय व्यस्तता की द्योतक हैं। इस गतिशीलता के नेपथ्य में भी अदृश्य भस्मी की शक्ति है, जिसका प्राकट्य तब होता है, जब देह पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है। यह सब आत्मानुभूति का विषय है।

मानव-देह का भीतरी जगत ईश्वरीय प्राण-शक्ति वैराग की प्रतिरूप अदृश्य भस्मी द्वारा संचालित होता है। इस साकार दृश्यमान जगत में हमें जो कुछ भी दिखाई, सुनाई देता है, जिसे हम अपनी विभिन्न इन्द्रियों के माध्यम से अधिगृहीत करते हैं, वह वस्तुतः एक पूर्व अंकित (Recorded) कैसेट का बाह्य प्राकट्य है। हमारी देह का आकार-प्रकार, विभिन्न अवस्थाओं में सम्बन्ध, आर्थिक स्थिति, धर्म-कर्म, मित्र-शत्रु, सुख-दुःख, लाभ-हानि आदि पहले ही सूक्ष्म में निराकार व अदृश्य रूप से हुए अंकन का बाह्य प्राकट्य है। This is the visible outer manifestation of the inner invisible recording. हम भौतिक जीव, बाह्य प्राकट्य को सर्वस्व मानकर भटकते हैं और इसके आकार को बढ़ाने में आजीवन संघर्षरत रहते हैं। दृश्यमान व्यस्तता वस्तुतः अस्त-व्यस्तता है। यहाँ से हमारी चाहतें और तदनुसार चिन्ताएँ प्रारम्भ हो जाती हैं। इसलिए हमारी समस्त क्रियाएँ और गतियाँ बाह्य हैं, जो बाह्य जगत में, बाह्य जगत से, बाह्य जगत के लिए होती हैं। अदृश्य गतिशीलता और व्यस्तता दशानन है। हम भूल जाते हैं, कि हमारा एक अन्तर्जगत है, जो पूर्णतः ईश्वर द्वारा प्रेरित, संचालित और प्रतिपादित है। इसलिए हमारी बाह्य गतियाँ असद् और

दुर्गति में ले जाती हैं। अन्तर्यात्रा सद्गति है।

मानव-देह पर अधिपत्य एवं अध्यास तथा मानवीय बुद्धि के हस्तक्षेप के कारण **'मैं'** (जीवात्मा) जीव कोटि में आ जाता हूँ। यह मेरा (जीवात्मा का) चेतना से अवचेतना में पतन था। इस प्रकार चेतना का Drastic Demotion हुआ। अवचेतना में देह के साथ तद्रूपता की पुष्टि जन्मों-जन्मान्तरों में परिपुष्ट होने के कारण जीवात्मा को देह की धारणा हो गई। देह की धारणा होते ही स्वयं में परिपूर्ण जीवात्मा अभावग्रस्त हो गया और बाह्य जगत में उपलब्धियों के द्वारा उस अभाव की असफल पूर्ति में आजीवन प्रयत्नशील रहने लगा। अपनी बुद्धि एवं मानवीय मन के हस्तक्षेप से देह की भीतरी गतिविधियों को Misuse, Abuse और Disuse करता रहा। इसकी (जीवात्मा की) अपनी गतियों का प्रभाव इसके जीवन की अस्त-व्यस्तता अथवा तथाकथित व्यस्तता में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

हम मानव दृश्यमान के पीछे आजीवन भागते रहते हैं और इस दृश्यमान के कारण को Ignorantly, Deliberatly और foolishly उपेक्षित किए रहते हैं। हमारी देह का एक-एक सैल, अवयव, अंग-प्रत्यंग जब तक हमारा जीवन है, अविरल, अकाट्य, अबाध, निरन्तर चलता रहता है। यह गतियाँ भी दशानन हैं। हम कार्य करते हुए थक जाते हैं, लेकिन हमारा ह्रदय, फेफड़े और देह के समस्त भीतरी अवयव एक सैकेण्ड के लिए भी नहीं थकते। क्योंकि ये स्वयं गति नहीं करते, इनसे गति करवाई जाती है। गति करते हुए भी हमारी देह के भीतरी अवयव अपनी स्थिति नहीं छोड़ते। लेकिन हम बाह्य गतियाँ द्वारा इन भीतरी ईश्वरीय गतियों का दुरुपयोग करते हैं और इनका संतुलन अस्त-व्यस्त कर देते हैं। हमारी बाह्य गतियों की अस्त-व्यस्तता प्रत्यक्ष दिखाई देती है। हम अपनी इस तथाकथित व्यस्तता को प्रत्यक्ष करवा के छोड़ते हैं।

पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि व आकाश की गतिविधियों का प्रभाव Misuse, Disuse अथवा Abuse नहीं है। पंच-महाभूतों की गतिविधियाँ ईश्वरीय हैं। इन दस सिरों में होती गतियों का प्रभाव भी दशानन दिखाई देता है।

पंच-महाभूतों की देह का अन्तर्जगत भी ईश्वरीय शक्ति द्वारा संचालित व प्रतिपादित है। ये गतियाँ भी दशानन थीं; लेकिन **'मैं'** (जीवात्मा) ने इस ईश्वरीय संरचना (पंच महाभूतों के संगम से निर्मित मानव-देह) पर अधिपत्य एवं अध्यास करके, अपनी बुद्धि एवं मन के हस्तक्षेप द्वारा इसे Misuse, Disuse और Abuse किया। मानव-देह की दशानन गतियों को अस्त-व्यस्त करके अपनी दुर्गति कर ली। उस दुर्गति का प्रभाव यह हुआ, कि **'मैं'** (जीवात्मा) अवचेतना में अस्त-व्यस्त हो गया और उसे तथाकथित कर्मठता एवं व्यस्तता मान बैठा।

हमारी घड़ी की तीन सुइयाँ हैं—घण्टे की, मिनट की और सैकेण्ड की। तीनों अविरल गतिमान हैं। सैकेण्ड की सुई सबसे न्यून नाप की है, लेकिन इसकी गति अधिकतम है। यह सबसे अधिक अस्थिर है। मिनट, सैकेण्ड से साठ गुना बड़ा और सशक्त है, लेकिन उसकी गति इसका साँठवा हिस्सा है। घण्टा, सैकेण्ड से 3600 गुना बड़ा है और घण्टे की सुई की गति सैकेण्ड की सुई की गति का 3600 वाँ हिस्सा है। घण्टे की सुई की गति को हम अपनी आँखों से देख भी नहीं सकते, लेकिन जब भी हम समय का मूल्यांकन करते हैं, तो हमारा केन्द्र घण्टे की सुई होती है। समय का नाप घण्टे की सुई से ही किया जाता है, जिसकी गति न्यूनतम है। उसी का महात्म्य है। समय का अनुमान भी घण्टे द्वारा ही होता है, कि लगभग दो या सवा दो बजे होंगे। वक्ता का घण्टे की सुई देखकर लगभग कहना ही आगे-पीछे के मिनटों एवं सैकेण्डों को सम्मुख रख देता है। अस्थिर की गणना भी स्थिर से होती है।

जिस प्रकार हमारा हृदय, किडनी और शरीर के भीतरी अवयवों की कार्य-प्रणालियाँ अविरल, अबाध, निरन्तर गति करती हैं, उसी प्रकार जो संकल्प सिद्ध महापुरुष हैं, उनकी गतियाँ अविरल होती हैं। उनकी निद्रा भी समाधि ही होती है। नि, दरा अर्थात् जो दर रहित है। उसका सोना भी सोना है और उसका जागना भी सोना होता है। जिन्हें अपने इष्ट की झलक मिल जाती है, वे सतत् जागरूक रहते हैं। उनकी निद्रा समाधि स्थिति होती है।

उनकी व्यस्तता ईश्वरीय होती है, अतः दिखाई नहीं देती। जो बहुत व्यस्त दिखाई देते हैं और उन्हें महसूस होता है, कि वे बहुत व्यस्त हैं, तो वे जान लें और मान लें, कि वे व्यस्त नहीं, अस्त-व्यस्त हैं। उनकी यह अस्त-व्यस्तता उनके जीवन को अनर्थ में ले जाएगी।

मानव ने होश सम्भालते ही देहाधिपत्य व देहाध्यास कर लिया। युगों-युगान्तरों से मानव को देह की धारणा हो गई। **'धारयति इति धर्मः'** अतः देह ही मानव का **'धर्म'** बन गई। देह बदलती रही, लेकिन **'मैं'** (जीवात्मा) की देह धारणा के कारण जीवात्मा जन्म-मृत्यु, रोग-दोष, पाप-पुण्य, सुख-दुःख, आधि-व्याधि-उपाधि, मल-विक्षेप-आवरण, राग-द्वेष, वैर-वैमनस्य और अनेकानेक विकृतियों से आवृत हो गया और देह धारणा में यह समस्त विकृतियाँ हृष्ट-पुष्ट-तुष्ट होती रहीं।

मुझे मानव-देह इसलिए मिली है, कि मैं जान जाऊँ, कि यह मुझे किसलिए मिली है। यह भी मुझे देह ही जनवाएगी। एक असद् धारणा ने देह को जीवात्मा का धर्म बना दिया। **'मैं'** (जीवात्मा) देह से भ्रमित हुआ, देह को अपना स्वरूप मानने लगा। मेरे भ्रम का निर्मूलन भी देह ही करेगी। मैं **भ्रममय** भी देह से हुआ और **'ब्रह्ममय'** भी देह से ही होऊँगा। मानव-देह पंच-महाभूतों के दैवीय संगम से निर्मित, पालित है। इसके प्रत्येक रोम, कोशिका की गति देह में समानतया समाहित अदृश्य भस्मी से थी। यह गति अदृश्य थी और गति का कारण भी अदृश्य था। इस गति के विषय में कोई **'चिन्तक'** ही विचार करता है। उसे स्वयं देह ही अपनी विभिन्न गतियों और कारणों का रहस्य जनवाती है। संहार के बाद जब देह पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है, तब वह अदृश्य भस्मी प्रकट होती है। ईश्वर ने इस प्रकरण को इतना गुप्त रखा है, कि जीवन-काल में **भस्मी शक्ति** भी अदृश्य रहती है और उसके द्वारा होती गतियाँ भी अदृश्य रहती हैं।

देहाध्यास के कारण मानव-देह की दैवीय गतियों का मैंने स्वार्थवश दुरुपयोग किया, क्योंकि **'मैं'** (जीवात्मा) चेतना से अवचेतना में पतित होकर स्वयं में परिपूर्ण होते हुए भी न्यून और अभावग्रस्त हो गया। मेरी

क्रीड़ा अवचेतना में शुरू हुई। इसीलिए ईश्वरीय दशानन गतियों का प्रभाव मेरे द्वारा हुए दुरुपयोग से मेरी दुर्गति बन गया। दस गुणों से विभूषित गतियाँ अदृश्य थीं और समस्त गतियाँ चेतना में थीं। लेकिन जीवात्मा की अपनी गतियाँ अवचेतना में हुईं। इनका ईश्वरीय गतियों से दूर का भी सम्बन्ध नहीं था। शंकर की वैरागमयी विभूति, अपनी प्राणशक्ति अदृश्य भस्मी को यह बिल्कुल भूल गया अथवा इसने जानबूझ कर उपेक्षित कर दिया। इसने देह पर अधिपत्य एवं अध्यास कर लिया। इसीलिए इसकी देह में होती गतियों का प्रकाट्य दुर्गति में हुआ। मानव-जीवन की समस्त दुःखों की श्रंखलाएँ इस दुर्गति का ही परिणाम हैं। यदि इसने मानव-देह पर अधिपत्य व अध्यास न किया होता, तो इसकी गतियों का प्रकाट्य भी स्वतः, स्वयं में और स्वान्तःसुखाय ईश्वरीय शिव-शक्ति-क्रीड़ा की तरह होता रहता।

जीवात्मा अपनी मानव-देह पर अध्यास करके देह के भीतर सतत् होती दशानन गतियों को भूल गया। अपनी बाह्य गतियों की मदहोशी में भीतर की गतियों के कारण एवं शक्ति को इसने Deliberatly, Ignorantly, Foolishly देखते हुए भी अनदेखा व उपेक्षित कर दिया। जब यह भूला तो भीतरी गतियों की दुर्गति हुई और इसकी समस्त व्यस्तता, अस्त-व्यस्तता में प्रकट हुई। जीव बने जीवात्मा के समस्त दुःखों की श्रंखला उस दुर्गति का ही परिणाम है, जो देखने में आती है। देखने में समस्त प्रभाव ईश्वरीय गति का नहीं आता, हमारे द्वारा की जा रही दुर्गति का आता है। जो गुणात्मक की जगह मात्रात्मक है। अति विशिष्ट की जगह निकृष्ट है। उद्देश्यपूर्ण, सारगर्भित व संक्षिप्त की जगह उद्देश्यहीन, निस्सार व विस्तारपरक है।

ईश्वरीय गतियाँ मानव द्वारा मानवीय दुर्गति में प्रकट हुईं। जीवात्मा को मानव-देह इसलिए मिली थी, कि यह जान ले, कि यह किसलिए मिली है। यह जानना तो इससे कोसों दूर हो गया। यद्यपि ईश्वर ने इसे मानव-देह देकर तीन तथ्य स्पष्ट दर्शाए थे। पहला, तेरी मानव-देह समस्त प्राणी-जगत में सर्वोत्कृष्ट है, इसका विशिष्ट अर्थ है। यह अर्थ तेरे हित के लिए है।

दूसरा, यह उपहार नहीं है, मैं इसे कभी भी छीन सकता हूँ। अतः इसके अर्थ में अर्थ (अर्थार्थ) है, कि इसका जो विशिष्ट प्रयोजन या अर्थ है, वह तू शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त कर ले। तीसरा, आजीवन तू कुछ भी कर-करवा, कुछ प्राप्त कर या न कर, कुछ खो या न खो, तेरे लिए कुछ हो, न हो इसका अन्तान्त भस्मी ही है, जो अवश्य बनेगी। यह तीन तथ्य सब मानवों के सम्मुख होश सम्भालते ही स्पष्ट हो जाते हैं।

दुर्भाग्यवश, देहाध्यास व देहाधिपत्य में हम मानव अवचेतना में जीवन **में** विभिन्न भविष्यों में भटकने लगे। अनेक चाहतों से घिर गये। अवचेतना स्वयं में चेतना की न्यूनता या अभाव की द्योतक है। स्वयं में पूर्ण चेतना में देह के साथ तद्रूपता के कारण जब चाह पैदा हुई, तो वह अवचेतना स्वयं में न्यूनता या अभाव बन गई। **चेतना की चाह ही मानव की एकमात्र चाहत है, जिसका ज्ञान इसे नहीं हो पाता।** Want का अर्थ चाहत है और चाहत कमी या अभाव की प्रतीक है। जहाँ कमी महसूस होगी, वहाँ चाहत अवश्य होगी। तो अवचेतना स्वयं में चेतना का अभाव या कमी है। चाहतों का प्राकाट्य न्यूनता, अभाव या दोनों से होता है। यह वस्तु कम है, और चाहिए, यह वस्तु नहीं है, इसलिए चाहिए। जीवात्मा अवचेतना में जीव भाव में आकर स्वयं में न्यून हो गया, लेकिन इसे अपने परिपूर्ण चेतन स्वरूप की स्मृति भी बनी रही। इसलिए उस कमी को साकार जगत की विभिन्न वस्तुओं, प्राणियों एवं उनसे सम्बन्धित विधाओं द्वारा पूरा करने के लिए इसने होश सम्भालते ही देह का दुरुपयोग करना शुरू कर दिया। 16 प्रकार की एषणाओं में यह भटकने लगा और अन्ततः चाहतों को लेकर ही मरा। इसका जीवन चाहतों से प्रारम्भ हुआ, चाहतों में चला और चाहतों में ही समाप्त हो गया। जीवन न केवल व्यर्थ और निरर्थ व्यतीत हो गया, बल्कि अनर्थकारी हो गया। क्योंकि यह प्रारब्ध के बहुत कठिन शिंकजे में जकड़ा गया। प्रारब्ध दैहिक था, क्योंकि देहाध्यास व देहाधिपत्य के कारण बना था। उसी प्रारबधवश पुनः देह मिली और इसका देहाध्यास व देहाधिपत्य पुष्ट एवं पुष्टतर हो गया। अन्ततः इसे देह की धारणा हो गई, कि मैं देह ही हूँ। देह

धारणा इतनी हृष्ट-पुष्ट और तुष्ट हो गई, कि देह की उन स्थितियों, जिनमें यह अपनी देह के नाम-रूप की अवचेतना में नहीं होता, (तदनुसार इसका कोई जगत भी नहीं होता) उनमें भी इसे अध्यास हो गया। मैं सोया था, अब उठ गया हूँ, मैं मूर्च्छित था, मैं पैदा हुआ, मैं माँ के गर्भ में था, मैं मरूँगा। इस प्रकार प्रारब्ध का शिकंजा कसता चला गया। हर देह इसके प्रारब्ध और देहधारणा को पुष्ट करती रही। प्रारब्धवश जन्म-मृत्यु होते रहे।

प्रारब्ध दैहिक है। कभी न कभी किसी सद्पुरुष की कृपा से इसमें भाव उठता है, कि जीवन काहे के लिए है। जीवन में तो मैं जन्मों-जन्मान्तरों में बहुत कुछ चाहता रहा, चाहता हूँ और चाहता रहूँगा, अन्ततः मैं जीवन **से** क्या चाहता हूँ। जीवन **में** विभिन्न चाहतें दुर्गति से पैदा हुईं और अन्ततः मुझे दुर्गति में ले गईं। कल का दिन पता नहीं मैंने देखना है या नहीं, यदि आज का दिन मेरे जीवन **का** अन्तिम दिन हो, तो मैं सम्पूर्ण जीवन से क्या चाहता हूँ? जीवन **में** अन्य चाहतों ने **'भविष्य'** खड़ा किया, जो **'भय'** और **'विष'** बना। लेकिन इस क्षण यदि जीवन समाप्त होता है, तो मैंने जीवन से क्या पाया? क्योंकि भौतिक देह से, देह के लिए जो भौतिक प्राप्तियाँ मैंने की हैं, वे सब तो देह के साथ ही छूट जाएँगी, तो मुझे जीवन से क्या मिला?

मानव-देह पाकर यह जानना आवश्यक है, कि सम्पूर्ण जीवन से मैं क्या चाहता हूँ? जीवन में असंख्य चाहतें हैं। एक पूरी होती है कई खड़ी हो जाती हैं। जिस जीवन का कभी भी अन्त हो सकता है, उस जीवन से मैं क्या चाहता हूँ? यह एक चाहत जीवन में सभी चाहतों को **लील** जाएगी। जिसे हम पाना चाहते हैं, उसे पहले चाहना आवश्यक है। जीवन में चाहतों ने मुझे असंख्य और अगणित चाहतों का चहेता बना दिया। यह एक चाहत, कि जीवन से मैं क्या चाहता हूँ, मेरी चाहतों को चहेतियाँ बना देगी। अतः जीवन से मैं क्या चाहता हूँ, यह शीघ्रातिशीघ्र जान लेना आवश्यक है, क्योंकि देह व जीवन हमारा नहीं है। कभी भी इसे देने वाला हमसे वापिस ले लेगा। मैं जीवन **से** क्या चाहता हूँ, यह चाह उत्पन्न होते ही चिन्ताएँ समाप्त हो जाएँगी। जीवन **में** चाहतें चिन्ताओं के साथ ही पैदा होती हैं। चिन्ता के साथ

पाप-पुण्य, रोग-दोष, वैर-वैमनस्य, शोक, भय आदि की पूरी श्रंखला जुड़ी रहती है। चिता मुर्दे को जलाती है और चिन्ता जीवित को जलाती है। यदि किसी जन्म में जीवात्मा को यह एक चाहत हो जाए, कि सम्पूर्ण जीवन से मैं क्या चाहता हूँ, इस दृष्टिकोण के प्रकट होते ही **'मैं'** (जीवात्मा) और देह अलग हो जाते हैं। दोनों में दरार पड़ जाती है। हमने इसे **'दरारे मुराद'** कहा है।

मैं जीवन से क्या चाहता हूँ? यह चाह स्वयं में जिज्ञासा एवं आत्म-ज्ञान का बीज है। यह मानवीय मन एवं बुद्धि की चाहत ही नहीं है। इसके पदार्पित होते ही मन-बुद्धि ईश्वरीय हो जाते हैं। यह एक चाहत जीवन **में** समस्त चाहतों पर भारी पड़ जाती है। जिज्ञासु **चिन्तक** बन जाता है। मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मुझे कहाँ जाना है, मैं यहाँ क्यों लाया गया हूँ, देह क्या है, मेरे पास कब तक, किसलिए है? इस प्रकार इस एक चाहत से, कि मैं जीवन से क्या चाहता हूँ, असंख्य जिज्ञासाओं की श्रंखला उत्पन्न हो जाती है।

वहाँ से देह-चिन्तन प्रारम्भ हो जाता है। फिर देह ही इसे आत्म-चिन्तन की ओर ले जाती है। इसे उत्साहित करते हुए सहायक होती है। जीवात्मा देह-चिन्तन करता है, कि देह मुझे क्यों मिली, इसका अर्थ क्या है, मैंने इसका क्या अर्थ लगाया? इस नश्वर, परिवर्तनशील, अवधि से बँधी देह का यथार्थ क्या है? मेरा धर्म क्या है? जब यह देह-चिन्तन करता है तो देह गौरवान्वित होती है और इसे आत्म-चिन्तन के सोपान पर ले जाती है। देह-चिन्तन के लिए **'मैं'** और **'देह'** में दरार पड़ना आवश्यक है और आत्म-चिन्तन के लिए देह का सहायक होना परमावश्यक है।

देह-धारणा में जीवात्मा देह-धर्मों में बँध गया। देह की समस्त धारणाओं, मान्यताओं, सम्बन्धों, लिंग, चाहतों, माया के तीनों गुणों, धर्म-कर्म-कर्तव्य आदि में बँध गया। देह धारणा करके **'मैं'** देह-धर्मों से युक्त हो गया। इन धर्मों में सब प्रकार के कष्टों एवं दुःखों से घिर गया। मैं देह से व जीवन से क्या चाहता हूँ? इस विचार के पुष्ट होते ही मैं देह के धर्मों से

अलग हो गया। फिर मैंने अपने स्वरूप के विषय में चिन्तन किया। जहाँ देह पंच-महाभूतों में विलीन हुई, तो जो भस्मी प्रकट हुई वह देह **धारणा की समस्त विधाओं से मुक्त** होती है और **ईश्वरीय विभूतियों से युक्त** होती है। जीते जी देह की भस्मी की अवधारणा होना मेरे स्वरूप की जागृति के लिए आवश्यक है। अर्थात् मेरे स्वरूप के प्रकाट्य हेतु देह आवश्यक है। **'मैं'** (जीवात्मा) जन्मों-जन्मान्तरों से देह-धारणा की अवचेतना में आच्छादित, मलिन और दुःखों व कष्टों से घिरा हूँ। देह की आवश्यकता मेरे स्वरूप के अनावरण के लिए है।

जब यह भौतिक देह, इन भौतिक पंच-महाभूतों में विलीन होगी तो मेरा स्वरूप भस्मी भी भौतिक होगा, जो मेरे लिए अर्थहीन होगा। क्योंकि उस समय मैं देह नहीं होऊँगा। मैं देह को अपना स्वरूप समझ बैठा और मुझे जन्मों-जन्मान्तरों में देह की धारणा हो गई थी, तो जब मैं देह नहीं होऊँगा तो मेरे लिए मैं नहीं होऊँगा। इसलिए देह की धारणा पर मुझे भस्मी की अवधारणा करनी है। जब मैंने देहाधिपत्य एवं देहाध्यास किया हुआ है, उस दौरान मुझे अवधारणा द्वारा **'भस्मी'** पर अधिपत्य एवं अध्यास करना होगा। यह मेरी देह का एक निश्चित, परिलक्षित एवं दर्शित भविष्य है। इस एक भविष्य की अवधारणा देह के होते हुए करनी है। एक चाहत रखनी है, कि मैं जीवन से क्या चाहता हूँ? To know what do I want out of life, I have to get out of life, during life. मैं देह द्वारा ही देह से बाहर आऊँगा।

देह नहीं होगी, तो मैं यह अवधारणा नहीं कर सकता और बिना इस अवधारणा के मेरे स्वरूप का प्रकाट्य नहीं हो सकता। मैं देह धारण कर चुका हूँ, तो देह व जीवन समाप्त होने के बाद मैं अवधारणा कैसे करूँगा? मुझे देह की धारणा का सदुपयोग भस्मी की अवधारणा के लिए करना है। देह धारणा मेरी अवचेतना है और जीते जी भस्मी की अवधारणा मेरी चेतना होगी। मुझे धारणा हो चुकी है, कि मैं देह हूँ, देह मेरी है। मृत्योपरान्त देह पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है, लेकिन मेरी धारणा समाप्त नहीं होती। वह धारणा मुझे फिर देह धारण करा देती है।

मृत्यु से पहले ही मैं मृत्यु के बाद की देह धारणा को पुष्ट कर लेता हूँ। मेरी मृत्यु के बाद मेरी अमुक जायदाद, धन अमुक को मिले, मेरे नाती-पोते मेरी अमुक सम्पदा के वारिस हैं। मेरे घर, पत्नी आदि का मेरे बाद क्या होगा ? मैने देह धारणा को मृत्यु के बाद भी पुष्ट कर रखा है। भौतिक देह छूटने के बाद भी मेरी मानसिक देह और भी पुष्ट और सशक्त रूप में बनी रहती है। मैं देह धारणा को हृष्ट, पुष्ट एवं तुष्ट करता रहता हूँ। उसे लेकर ही मैं मरता हूँ तथा उसी को लेकर मैं पुनः पैदा होता हूँ। मेरे बाद मेरे धन, सगे सम्बन्धियों का क्या होगा? मैंने यह विचार ही नहीं किया, कि धन व सम्बन्धी तो तब होंगे, जब मेरी देह होगी। जीवन यदि आज समाप्त हो जाए, तो मुझे क्या मिला?

मेरे बाद मेरा क्या होगा? इस भाव में देहधारणा का उन्मूलन होने लगेगा। वस्तुतः मेरे बाद मेरी देह पंच-महाभूतों में विलीन हो जाएगी और भस्मी प्रकट होगी। वह मेरे सामने हो जाए। देह धारणा के दौरान यदि सद्गुरु-कृपा से अवधारणा हो जाए, कि मैं भस्मी हूँ और भस्मी मेरी है, तो देह रहते हुए मेरी देह धारणा समाप्त हो जाएगी। देह की धारणा समाप्त होते ही प्रारब्ध भी नहीं रहेगा। भस्मी के प्रकाट्य के लिए देह चाहिए। भस्मी में जीवात्मा का स्वरूप छिपा है। किसी भी देह की भस्मी, देह की समस्त धारणाओं और मान्यताओं से रहित होती है और ईश्वरीय विभूतियों से परिपूरित होती है। देह सहित समस्त पंच-महाभूतों की सृष्टि जब पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है, तो **'भस्मी'** प्रकट होती है, जो तत्त्वातीत तत्त्व है। यही शिव की विभूत्यातीत विभूति वैराग है, जो पंच-महाभूतों की देह सहित सृष्टि में अदृश्य भस्मी के रूप में समाहित रहता है। पंच-महाभूतों की सृष्टि में निर्माण, पालन, निर्देशन, संवाहन, सम्पादन और संहार सब कुछ प्रपंचमय ही है। लेकिन पंच-महाभूतों की देह का अन्तान्त (भस्मी) प्रपंच रहित है। परम इष्ट-कृपा से देह की धारणा के दौरान जीवन-काल में जब साधक इस तत्त्वातीत तत्त्व की अवधारणा करता है, तो भस्मी की अवधारणा इसकी देह धारणा को समाप्त कर देती है।

'प्रारब्ध' देह की धारणा में बना है, देह धारणा में रहता है और देह के दौरान भुगतना पड़ता है। अन्ततः देह की धारणा के दौरान **'मैं'** अवधारणा कर लूँ, कि मैं भस्मी हूँ और भस्मी मेरी है, तो मैं अपने स्वरूप का रसास्वादन करूँगा। ईश्वरीय लीलाओं का आनन्द लूँगा। मेरी देह तब दिव्य होगी, जो समस्त दैवीय गुणों से परिपूरित होगी। वैराग उसका धर्म होगा। उसके मिलने-जुलने वाले, रहनुमा, खैर चाहने वाले, बातें, स्वभाव सब कुछ बदल जाता है। देह भी बदल जाती है। वस्तुतः तब देह मेरी अपनी हो जाती है। जीवन का यथार्थ व सार्थकता मेरे सम्मुख आ जाती है। जो देह धारणा थी, वह छूटनी शुरू हो जाती है। भस्मी की शक्ति विरक्ति है। अन्ततः देह धारणा के स्थान पर विरक्ति धारणा बन जायेगी। **'मैं'** (जीवात्मा) का धर्म यह वैराग ही है। यह वैराग भक्ति का उत्प्रेरक है। वैराग का प्रत्यारोपण होने पर पंच-महाभूतों की मानव-देह में अदृश्य रूप से समाहित शिव की अतिशक्ति वैराग की प्रतिरूप चेतन भस्मी की दशानन गतियाँ ईश्वरीय व्यस्तता द्वारा निर्देशित एवं सम्पादित होंगी। इन स्थिरता की गतियों का प्राकट्य स्वतः, स्वयं और स्वान्तःसुखाय शिव-शक्ति-क्रीड़ा की तरह ही होगा। देह-चिन्तन **देह का** है और आत्म-चिन्तन **आत्मा का** है, जो जीवात्मा **देह द्वारा** करता है। फिर ब्रह्म-चिन्तन होता है जो परमात्मा स्वयं करवाते हैं और ब्रह्मानुभूति में सब शब्द लीन हो जाते हैं :–

''सो जानई जिस देहु जनाइ, जानत तुम्हीं तुम्हइ होई जाईं।''

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(26 नवम्बर से 10 दिसम्बर, 2007)

धारणा-अवधारणा

जीवात्मा, ईश्वर का एकमात्र मानस-पुत्र है और ईश्वर की ही भाँति सच्चिदानंद तथा उसकी सभी दिव्य विभूतियों एवं गुणों से अलंकृत है। परमात्मा द्वारा रचित सृष्टि का यह दृष्टा है। सच्चिदानंद ईश्वर अपने अंश जीवात्मा (**मैं**) रूप में भी सच्चिदानंद एवं सहज सुखराशि ही हैः—***''ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखराशि।''*** **'मैं'** बोलने, सुनने में शब्द रूप में आता है, लेकिन दृश्यमान नहीं होता, क्योंकि जीवात्मा भी स्वयं में ईश्वर की भाँति निराकार एवं अदृश्य है। **'मैं'** और **'प्रभु'** दोनों शब्द बोले, सुने जाते हैं, लेकिन इनकी सत्ता अदृश्य एवं निराकार है। मानव-देह के सान्निध्य में **'मैं'** शब्द में जीवात्मा का प्रकाट्य होता है।

मानव-देह में इन्द्रियों का सुख, सहज सुख नहीं है। इन्द्रियों का सुख जीवात्मा के अपने आनन्द स्वरूप का आभास है। सहज सुख आनन्द है, जो जीवात्मा का अपना स्वरूप है। अतः जीवात्मा स्वयं में मलरहित, चेतन एवं आनन्दमिश्रित सहज सुख का अविरल स्रोत है। मानव-देह के सान्निध्य में जब इसका 'मैं' शब्द रूप में प्रकाट्य हुआ, तो इसका उस देह के साथ तादात्म्य हो गया। यह तद्रूपता देह की हर अवस्था, विधा, स्थिति, परिस्थिति में पुष्ट होती रही और युगों-युगान्तरों में जन्म-दर-जन्म पुष्ट पर पुष्ट (परिपुष्ट) होकर देह धारणा बन गई। जब जीवात्मा को **'देह धारणा'** हो गई, तो इसका सच्चिदानंद स्वरूप आच्छादित व आवृत हो गया। यह चेतन से अवचेतन हो गया, क्योंकि देह को धारण कर बैठा। **'धारयति इति धर्मः'** के अनुसार देह ही इसका धर्म-कर्म एवं सर्वस्व बन गई।

मैं इसे पुनः स्पष्ट करूँगा। 'देह मेरी है' के साथ 'मैं देह हूँ' का भाव जब जीवात्मा में पुष्ट हो जाता है, तो देह के साथ उसकी तद्‌रूपता हो जाती है। पंच-महाभूतों की प्रपंचमय संरचना के साथ जन्मों-जन्मान्तरों में तद्‌रूपता की पुष्टि पर पुष्टि अर्थात् परिपुष्टि हो जाती है, तब जीवात्मा को देह की धारणा हो जाती है। सांसारिक प्रपंच, पाँचों महाभूतों पर आधारित है और देह धारणा देहाध्यास की पुष्टि पर परिपुष्टि का प्रतिफल है।

इस देह धारणा को लेकर जीवात्मा जीव-सृष्टि में अधोगति को प्राप्त हो जाता है। देह धारणा के कारण जीवात्मा का सच्चिदानंद स्वरूप और शाश्वतता पूर्णतः आच्छादित हो जाती है और यह स्वयं को कर्ता मान लेता है। यहाँ से प्रारब्ध का अन्तहीन सिलसिला प्रारम्भ हो जाता है।

सच्चिदानंद परमात्मा का इकलौता मानस-पुत्र विधि के विधानों में बँध कर आधि-व्याधि-उपाधि, मल-विक्षेप, आवरण, जन्म-मृत्यु, पाप-पुण्य युक्त हुआ स्व-निर्मित जीव-सृष्टि के जन्मों-जन्मान्तरों के काल-चक्र में भटकने लगता है। कर्ता भाव के कारण जीवात्मा का दृष्टा-भाव ही आच्छादित हो जाता है। यह देह की **'परिवर्तनशीलता'** की बजाय देह के विभिन्न परिवर्तनों में उलझ जाता है। इसे धारणा, देह के परिवर्तनों में होती है, जो कि असद् है। क्योंकि जो आज है, कल नहीं हो सकता अथवा पुनः परिवर्तित होकर अन्य रूप ले सकता है। हर परिवर्तन स्वयं में नश्वर होता है, क्योंकि हर परिवर्तन देह की परिवर्तनशीलता के कारण बदल जाता है। यदि इसे देह की **'परिवर्तनशीलता'** की धारणा हो जाती, तो जीवात्मा का अपना विशुद्ध एवं शाश्वत् स्वरूप आच्छादित न होता। परिवर्तनशीलता देह का सद् है, जोकि शाश्वत् एवं अपरिवर्तनीय है। युगों-युगान्तरों से जन्मों-जन्मान्तरों में पंच-महाभूतों की मानव-देह आज से पूर्व और आगे आने वाले समय में परिवर्तनशील थी, है और रहेगी। देह के परिवर्तनों का सद् है, कि देह परिवर्तनशील है, लेकिन परिवर्तन स्वयं में असद् है। आज देह स्वस्थ है, कल रुग्ण हो सकती है, देह की आर्थिक स्थिति आज अच्छी है, कभी बहुत अच्छी अथवा बहुत खराब हो सकती है। हर परिवर्तन स्वयं में असद् है,

क्योंकि जो आज है, वह कल नहीं था और कल नहीं रहेगा, पुनः परिवर्तित हो जाएगा अथवा स्वयं में वैसा नहीं रहेगा जैसा था। बच्चा, युवा, बूढ़ा, धनी, निर्धन, सम्मानित, अपमानित, सुखी, दुःखी, लाभान्वित, उन्नत, अवनत, अच्छा, बुरा, पापी, पुण्यी आदि सतत् होने वाले परिवर्तन हैं, जो देह की परिवर्तनधर्मिता के कारण होते रहते हैं।

इस प्रकार महादुर्भाग्यवश शाश्वत्, सच्चिदानंद एवं ईश्वरीय विभूतियों से विभूषित स्वयं में पूर्ण परमात्मा का एकमात्र मानस-पुत्र जीवात्मा देह-धारणा में देह के हर परिवर्तन से तद्‌रूप हो गया। प्रश्न उठता है, कि गर्भावस्था, शैशवावस्था, बाल्यावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था आदि-आदि विभिन्न अवस्थाओं में **'मैं'** (जीवात्मा) कौन सी देह है। मानव-देह का एक ईश्वर द्वारा सुनिश्चित 'काल' है और काल की तीन विधाएँ हैं–**स्थिति, समय और स्थान**। हर क्षण देह की स्थिति, स्थान एवं समय सतत् परिवर्तनशील है। वस्तुतः एक मानव-देह असंख्य एवं गणनातीत अवस्थाओं का समूह है और स्वयं में अस्पष्ट विधा (Vague term) है। देहधारणा में जीवात्मा हर स्थिति, हर समय और हर स्थान की देह को **'मैं'** मानने लगा तथा पूर्णतः अवचेतना में अधोगति को प्राप्त होने लगा।

हर क्षण देह में परिवर्तन होता है और इस परिवर्तन के फलस्वरूप जीवात्मा के लिए नई देह और तद्‌नुसार जगत प्रकट होता है। देह की अवचेतना होती है, तो देह सहित जगत प्रकट होता है। अतः देह सहित जगत की हर स्थिति, स्थान व समय के परिवर्तन के साथ जीवात्मा को धारणा हो गई, कि यह मैं हूँ और यह सब मेरा है, आदि-आदि। देह **ने** परिवर्तनशीलता को धारण किया हुआ है और देह **को** जीवात्मा ने धारण किया। नियमानुसार जीवात्मा को देह धारण करने के साथ देह की धारणा (परिवर्तनशीलता) को भी धारण कर लेना चाहिए था। यदि ऐसा कर लेता, तो देह की अवचेतना उसके लिए मल, विक्षेप एवं आवरण का कारण बन कर कष्टदायी न होती। यह आधि-व्याधि-उपाधि, वैर-वैमनस्य, रोगों-दोषों, पापों-पुण्यों में घिरा हुआ जीव-सृष्टि के जन्मों-जन्मान्तरों के काल-चक्र में न

भटकता। जन्मों-जन्मान्तरों में देह के नाम-रूप बदलते रहे, एक ही जन्म में देह के असंख्य रूप बदलते रहे, लेकिन देह धारणा इसका संस्कार व स्वभाव बन गया।

देह के नाम-रूप की अवचेतन तद्रूपता में धन-सम्पदा, पद-प्रतिष्ठा, शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक विभिन्न शक्तियों, डिग्रियों, नाम-यश आदि की चाहतें, न्यूनता, अभाव अथवा दोनों के कारण पैदा होती हैं। ये चाहतें पूरी होती हैं, लेकिन फिर भी बनी रहती हैं। जीवात्मा स्वयं में चेतन है। अवचेतना स्वयं में चेतना की कमी अथवा अभाव की द्योतक थी। चेतना में कोई चाहत नहीं थी, इसलिए कोई अभाव या न्यूनता भी नहीं थी। जीवात्मा स्वयं में पूर्ण चेतन एवं सहज सुखराशि था। लेकिन देह धारणा में चेतन जीवात्मा ही अवचेतन जीव बन गया और स्वयं में अधूरा एवं अभावग्रस्त हो गया। **'मैं'** स्वयं में शाश्वत् एवं चेतन है। परन्तु अवचेतना में विभिन्न चाहतों के पूरा होने पर और अनेक वस्तुओं की प्राप्ति होने पर भी इसकी चाहतें समाप्त नहीं हुईं। हर प्राप्ति इसकी चाहतों को बढ़ाती रही, जितनी ज्यादा से ज्यादा प्राप्तियाँ हुईं इसकी अतृप्ति एवं असंतोष और भी अधिक बढ़ता रहा।

अवचेतना में भी इसकी स्मृति से अपनी चेतना लुप्त नहीं हुई। यह अपनी स्वरूपगत चेतन पूर्णता को भूल नहीं सका। उस पूर्णता को पदार्थों, वस्तुओं, धन-सम्पदा, स्त्री, सन्तान, नाम-यश, डिग्रियों, पद-प्रतिष्ठा आदि के द्वारा प्राप्त करने का आजीवन असफल प्रयास करता रहा। देह व देह पर आधारित जगत में इसकी समस्त चाहतें वस्तुतः **'चेतना'** की चाहत को पूरा करने का असफल प्रयास थीं, जिसका इसे कोई ज्ञान नहीं था। देह कैसी भी हो, किसी स्थिति, समय एवं स्थान में हो, देह तादात्म्य की परिपुष्टि ने इसे स्वयं में अवचेतन, न्यून एवं अभावग्रस्त बना दिया। जीवात्मा कभी भी अवचेतना से मुक्त नहीं हुआ, इसे अपने चेतन स्वरूप का दर्शन नहीं हुआ, इसलिए कभी चाहतों से मुक्त नहीं हुआ। चेतना की चाहत में इसकी भटकन बढ़ती ही रही।

अवचेतना में जन्म-दर जन्म जीव बने जीवात्मा की कथा चाहत से शुरू होकर चाहतों में चलती है और चाहतों की आसक्ति में ही समाप्त होती रहती है। ऐसा अवश्य हो जाए**गा** और ऐसा हुआ **था**। हो**गा**, हुआ **था**, इस **गाथा** में इसके जीवन की कथा चलती रहती है। होगा (भविष्य) और हुआ था (भूत) की गाथा होती वर्तमान में ही है। इसलिए इसका हर वर्तमान भूत और भविष्य के काल्पनिक बोझों तले दबा हुआ छटपटाता रहता है। अन्ततः अभाव और न्यूनता को लेकर यह आसक्त ही मरता है।

किसी विशिष्ट जन्म में परम सद्गुरु-कृपा से जब यह देह की परिवर्तनशीलता एवं नश्वरता की सद् धारणाओं को धारण करता है, तभी जीवात्मा को आत्मज्ञान होता है, कि मैं देह नहीं हूँ। यह जो मैंने देह को धारण किया है, वस्तुतः देह की धारणाओं को धारण किया है। यह देह परिवर्तनशील एवं नश्वर है। मैं शाश्वत, अजर, अमर, अपरिवर्तनशील निराकार एवं अदृश्य जीवात्मा हूँ। होश सम्भालते ही महापुरुष पहले देह की सद् धारणाओं (परिवर्तनशीलता व नश्वरता) को धारण करते हैं। देह **की** धारणाओं की पुष्टि के बाद कभी देह **में** धारणा नहीं होती। देह **की** सद् धारणाओं को धारण करके महापुरुष दिव्य विदेह-देह में विचरण करते हैं। देह होते हुए भी वह स्वयं में विदेह होते हैं।

समस्त साकार ब्रह्माण्ड में होती गतियों की मूल शक्ति स्थिरता की है। पंच-महाभूतों के समस्त प्रपंच में जितनी गतिशीलता है, वह स्थिर-शक्ति (विरक्ति) की वजह से है। महापुरुषों की सद् संकल्प शक्ति (चाहे वह श्राप हो, चाहे वरदान हो) से जो भी होता है, वह सद् होता है। वह स्वयं न श्राप देता है, न वरदान। वह मात्र स्थिरता की शक्ति को गति दे देता है। स्थिरता की गतियाँ दशानन (**'स्वाहा'** शीर्षक प्रवचन में इनका सविस्तार वर्णन किया गया है) होती हैं। स्थिरता की गति शिव का वैराग है, जो पंच-महाभूतों की प्रपंचमय सृष्टि में अदृश्य भस्मी के रूप में कण-कण में समाहित है। ये पंच-महाभूत सहज जड़ हैं। अतः इनमें होती समस्त गतियाँ शिव के वैराग की प्रतिनिधि अदृश्य भस्मी द्वारा प्रेरित, संचालित, सम्पादित एवं निर्देशित

होती हैं। इस स्थिरता की शक्ति से जो गतिशीलता होती है उस गति में भी स्थिरता होती है। उस गति की विशिष्ट गरिमा है। वह शक्ति दिखाई नहीं देती, साथ ही वह गति भी प्रकट तौर पर अदृश्य ही रहती है।

सद्गुरु-कृपा से इस रहस्य का व्यावहारिक दृष्टि से सदुपयोग किया जा सकता है। हमारी मानव-देह के भीतर का जितना जगत है, वहाँ एक-एक कोशिका और सभी अवयवों की कार्य-प्रणालियों की गतियाँ अदृश्य हैं। हृदय, किडनी, लिवर, रक्त-संचार, नर्वाइन सिस्टम, हारमोन आदि दस रूपों (अविरल, निरन्तर, चिरन्तन, अबाध, अकाट्य, अति संक्षिप्त, अति सारगर्भित, विशिष्ट, गुणात्मक, अति उद्देश्यपूर्ण) में गति करते हैं। हमारी बाह्य गतियाँ इसके ठीक विपरीत हैं। सार रहित, मात्रात्मक, निरुद्देश्य, अति विस्तृत, अति निकृष्ट एवं बाधापूर्ण हैं। न वे निरन्तर हैं, न चिरन्तन हैं, न अविरल हैं और न ही अकाट्य हैं। इसका क्या कारण है? समस्त बाह्य गतियाँ देह की भीतरी गतियों के कारण ही होती हैं। भीतरी गतियाँ अदृश्य हैं, बाह्य गतियाँ दृश्यमान हैं। जो कर-करवा रहा है, वो अदृश्य है। उसकी शक्ति एवं कार्य अदृश्य हैं। लेकिन हमारे द्वारा किए जा रहे कृत्य अस्त-व्यस्त हैं। हमने किया कुछ, हुआ कुछ और। जो कृत्य ईश्वर द्वारा हो रहे हैं, उनका किया जाना दिखाई नहीं देता। हमारी अस्त-व्यस्तता बहुत दिखाई देती है। हमारी गतियाँ उच्छृंखल हैं।

परिवर्तनशीलता और नश्वरता मानव-देह का शाश्वत सद् है, देह का धर्म है। जीवात्मा ने देह को धारण किया लेकिन देह ने इसे कभी धारण नहीं किया। महादुर्भाग्यवश जीवात्मा ने देह धारणा में देह के परिवर्तनों से धारणा कर ली। देह ने इसे अपनी सद् धारणाओं को धारण नहीं करने दिया। अतः जीवात्मा देह-धारणा में भी देह की धारणाओं को धारण नहीं कर पाया। देह के हर परिवर्तन, हर स्थिति, अवस्था, स्थान, समय, लिंग, धर्म, सम्बन्धों आदि से इसकी तद्रूपता की परिपुष्टि होती रही और सद् धारणाओं रहित देह की धारणा हृष्ट, पुष्ट और तुष्ट होती रही। सच्चिदानंद परमात्मा का अंश और स्वयं में सहज सुखराशि जीवात्मा आधि-व्याधि-उपाधि, सुखों-दुःखों, भय,

त्रास, चिन्ता, शोक, मल-विक्षेप, आवरण से आबद्ध हो गया। इस उच्छृंखलता में इसकी धारणा इतनी क्षुद्र एवं तुच्छ थी, कि जन्मों-जन्मान्तरों में देह के परिवर्तनों में भी कुछ परिवर्तनों के साथ जीवात्मा तद्‌रूप हो गया। उदाहरणतः तीन पीढ़ियों से हम ऐसा करते आए हैं, ऐसा होना ही चाहिए। हमारी परम्परा है, यह नहीं होना चाहिए। देह के हर लिंग, हर धर्म, हर देश व स्थान, हर काल व समय, हर अवस्था व स्थिति, हर सम्बन्ध, हर उत्थान-पतन, हर गुण-अवगुण के साथ इसने अपनी शाश्वत् एवं अपरिवर्तनीय **'मैं'** को लगाया और सबके साथ जीवात्मा तद्‌रूप हो गया।

देह धारणा में अपनी मानव-देह पर विभिन्न अवस्थाओं, स्थितियों, परिस्थितियों, धारणाओं, धर्मों, कर्मों, उपाधियों के रूप में जितने अलंकरण हमने धारण किए वे अन्ततः हमें चुभने लगते हैं। देह के परिवर्तनों का मापदण्ड परिवर्तनशीलता है, जहाँ से परिवर्तनों का मूल्यांकन होता है। देहाध्यास के कारण तद्‌रूपता की परिपुष्टि होने पर जीवात्मा की देह धारणा सद् धारणाओं रहित देह के साथ हुई। जीवात्मा ने देह की सद् धारणाओं को धारण नहीं किया और धारणाओं रहित देह की धारणा कर ली। परिवर्तनशीलता और नश्वरता की धारणारहित देह स्वयं में असद् व मिथ्या (Fake) थी। इसलिए देह धारणा में जीवात्मा तुच्छ जीव बनकर चेतना से अवचेतना में उतर कर चिन्ताओं, शोक, तनाव, निराशा, भय, त्रास, आधि-व्याधि-उपाधि, मल-विक्षेप व आवरण में भटकने पर विवश हो गया। लेकिन अपने विशुद्ध चेतन स्वरूप की स्मृति इसकी चेतना से लुप्त नहीं हुई।

जीवात्मा अवचेतना में जीव-कोटि में तब आया, जब इसने धारणाओं रहित असद् देह की धारणा की। असद् देह की धारणा हृष्ट, पुष्ट और तुष्ट होकर अटूट हो गई। जब जहाँ जैसी अवस्था हुई, उसके साथ वह तद्‌रूप होने लगा। अब मैं यह हूँ, मैं ऐसा था और ऐसा होना चाहता हूँ, मैं अवश्य ऐसा हो जाऊँगा। जीवात्मा स्वयं में अपरिवर्तनीय था, देह का परिवर्तन हुआ यह भी परिवर्तित होने लगा। इसकी प्राण गतियाँ (प्राण, अपान, समान,

उदान, व्यान) विकृत हो गईं। प्राण प्राण जो इसकी **शक्ति** का द्योतक था **क्रोध** बन गया। इसी प्रकार **ख्याति** का द्योतक अपान प्राण **मोह, ऐश्वर्य** का द्योतक समान प्राण **लोभ, सौन्दर्य** का द्योतक उदान प्राण **काम** और **ज्ञान** का द्योतक व्यान प्राण **अहं** बन गया। इस प्रकार **अधूरेपन** में जीवात्मा **पूर्णरूपेण विकृत** हो गया। विकृतियों से विकृत होकर अपने सच्चिदानंद स्वरूप से पूर्णतः विमुख हो गया। जीवन-दर-जीवन ढोते हुए यह अजर, अमर जीवात्मा जन्मता-मरता रहा। देह धारणा में, यह एक असद् और काल्पनिक जाल में जकड़ा हुआ हताश एवं असमर्थ होकर आर्तनाद कर उठा। अन्ततः इसे सद्‌गुरु की शरण मिली।

निराकार एवं अदृश्य पारब्रह्म परमेश्वर स्वयं सद्‌गुरु के साकार रूप में अति कृपालु होकर प्रकट हो जाता है। वह इसकी देह धारणा से ही इसे चेतना की ओर ले जाता है। देह में हर पल परिवर्तन हो रहे हैं। असंख्य एवं गणनातीत परिवर्तनों का कोई निर्धारित क्रम भी नहीं है। प्रत्येक परिवर्तन स्वयं में हो सकता है, नहीं भी हो सकता और जो हो सकता है, वह फिर परिवर्तित हो सकता है। कभी स्वयं में परिवर्तन परिवर्तित हो जाता है, कभी उसकी जगह अन्य परिवर्तन ले लेता है।

सद्‌गुरु ने जीव बने जीवात्मा को इसकी चेतनता के प्रति **चेतन** (सजग) किया। सद्‌गुरु ने इसके सम्मुख इसकी देह की ही ऐसी निश्चित, परिलक्षित व दर्शित परिवर्तित अवस्था रख दी, जो स्वयं में अपरिवर्तनीय थी। वह भस्मी अवस्था देह की होते हुए भी **'देहातीत'** थी। अर्थात् उस परिवर्तन के साथ तद्‌रूपता में देह अपनी समस्त सुकृतियों-विकृतियों और विधाओं सहित अतीत की वस्तु हो जाती है। **'भस्मी'** देह का निश्चित परिवर्तन है, लेकिन परिवर्तित अवस्था में वह अपरिवर्तनीय परिवर्तन देह का नहीं रहता। इसलिए देहातीत है।

सद्‌गुरु कहता है, कि "हे जीवात्मा ! जब तुम देह की तद्‌रूपता में भस्मी अवस्था में होगे, तो तुम होते हुए भी नहीं होगे, क्योंकि तुम्हें देह की धारणा हो चुकी है। साथ ही जीवन-काल में देह के विभिन्न परिवर्तनों के

दौरान भी **'जीवात्मा स्वरूप'** में तुम नहीं हो, क्योंकि तुम्हें देह की धारणा हो चुकी है। देह के बाद जो अपरिवर्तनीय परिवर्तन (भस्मावस्था) होगा, तब भी तुम नहीं होगे, क्योंकि तब देह का बाध हो जाएगा और तुम्हारी देह की धारणा परिपुष्ट हो चुकी है। देह के हर परिवर्तन के साथ देह धारणा में तुम तद्रूप होते हो, लेकिन तुम देह के उस परिवर्तन का आकलन नहीं कर सकोगे। तुम देह के हर परिवर्तन से बँधे हो, लेकिन देह के उस निश्चित परिवर्तन के समय हे अजर, अमर जीवात्मा ! तुम होते हुए भी नहीं होगे, क्योंकि देह धारणा होने के कारण तुम्हारी भी तथाकथित मृत्यु हो जाएगी।'' देह का यह महापरिवर्तन है। देह के दौरान अन्य कोई परिवर्तन हो न हो, लेकिन यह परिवर्तन (भस्मी) निश्चित, परिलक्षित व दर्शित है। मृत्यु भी निश्चित एवं दर्शित परिवर्तन है, लेकिन वह परिलक्षित नहीं है। मृत्यु, देह का अन्त है, लेकिन मृत्यु के बाद देह पुनः भस्मी में परिवर्तित होती है। भस्मी निश्चित व दर्शित होने के साथ परिलक्षित परिवर्तन है, क्योंकि स्वयं में अपरिवर्तनीय है। **भस्मी, देह का अन्तांत (अन्त का अन्त) है।** देह की मृत्यु के बाद वह भस्मी रूप परिवर्तन देह का होते हुए भी परिवर्तन देह का नहीं होगा, क्योंकि भस्मी पंच-महाभूतों से अतीत तत्त्वातीत तत्त्व है।

जीवन-काल में देह में जितने भी परिवर्तन हैं, उनका अटूट एवं अभिन्न सम्बन्ध पंच-महाभूतों की देह सहित जगत की किसी न किसी विधा से रहता ही है। यहाँ तक कि मृतकावस्था में भी पंच-महाभूतों की हमारी देह रहती है। मात्र भस्मी, देह का निश्चित, दर्शित व परिलक्षित ऐसा परिवर्तन है, जो तब होगा जब पंच-महाभूतों की देह पंच-महाभूतों में विलीन हो जाएगी। भस्मी, देह के **बाध** के **बाद** का परिवर्तन है, इसलिए **देहातीत** है। Then there is nothing called body existence because it has already by all means difused in five elements.

जीवात्मा को देह धारणा में देह के परिवर्तनों से बँधने एवं तद्रूप होने की आदत पड़ी हुई है। सद्गुरु कहता है, कि ''तुझे देह के साथ धारणा है

इससे छूटने के लिए तुझे देह धारणा के ऊपर भस्मी की अवधारणा करनी होगी। यहाँ समस्या यह है, कि परिवर्तनशीलता एवं नश्वरता की अपनी धारणाओं रहित देह, भस्मी की अवधारणा की गरिमा का बोझ नहीं सह सकती। अतः पहले तुझे अपनी धारणा रहित देह को इसकी परिवर्तनशीलता एवं नश्वरता की धारणाओं से विभूषित करना होगा। इससे तेरी देह का शुद्धिकरण होगा। देह की अपनी धारणाओं से सुशोभित देह ही भस्मी की अवधारणा कर सकती है। इसलिए देह के अन्तांत (भस्मी) से पहले देह के अन्त (मृत्यु) का नित्य, निरन्तर अभ्यास कर। मृत्युयोग में यद्यपि तू नाम-रूप से ग्रसित रहेगा, लेकिन मृत्यु का अभ्यास व अध्यास करते-करते तेरी धारणा रहित देह में इसकी परिवर्तनशीलता व नश्वरता की धारणाएँ जाग्रत हो जाएँगी। हे शाश्वत् जीवात्मा ! तुझमें यह शक्ति है, कि तू देह की नश्वरता का दिग्दर्शन कर सकता है। फिर तुझे देह की अपनी धारणाओं सहित देह की धारणा हो जाएगी। धारणा रहित देह में तू देह की चिन्ताओं से ग्रसित था, अब इस धारणा सहित देह में तू देह-चिन्तन करेगा।'' मृत्यु योग का प्रतिफल देह-चिन्तन है। देह परिवर्तनशील है, नश्वर है, तो मुझे क्यों मिली है, यह कभी भी जा सकती है, मैं इसका सदुपयोग कैसे करूँ, यह देह-चिन्तन एक चाह जाग्रत कर देता है, कि आखिर मैं देह से क्या चाहता हूँ? इतनी चाहतें पूरी हो गईं, लेकिन मैं संतुष्ट क्यों नहीं हूँ? यदि आज देह चली जाए, तो मुझे क्या मिला? यह एक चाहत जीव की नहीं, जीवात्मा की होती है।

सद्गुरु ने देह का ही ऐसा परिवर्तन लिया जो निश्चित, परिलक्षित एवं दर्शित है तथा उसके होने के बाद उसकी जगह कोई अन्य परिवर्तन नहीं ले सकता एवं वह स्वयं में भी परिवर्तित नहीं हो सकता। देह का यह अन्तिम परिवर्तन भस्मी में ही होगा। देह में अन्य कोई परिवर्तन हों न हों, यह परिवर्तन अवश्य होगा और होने के बाद फिर परिवर्तित नहीं हो सकता। तब देह पंच-महाभूतों में पूर्णतः विलीन हो जाएगी। भस्मी गंगा-यमुना में विसर्जित होकर भी भस्मी रहती है। जन्म हुआ है, तो मृत्यु होगी ही। मृत्यु

निश्चित व दर्शित है, लेकिन परिलक्षित नहीं है, क्योंकि इसके बाद देह पुनः परिवर्तित होगी। भस्मी रूप में परिवर्तन देह का होगा, लेकिन यह तब होगा, जब देह नहीं रहेगी। देह होगी, तो भस्मी होगी और जब भस्मी होगी, तो देह नहीं होगी।

जीवात्मा की धारणा देह में है और वह देह के हर परिवर्तन के साथ तद्‌रूप हो जाता है। हर परिवर्तन के साथ तद्‌रूपता में जीवात्मा अपना दृष्टा पद ही भूल गया। सद्‌गुरु कहता है, कि अब तू देह धारणा के ऊपर देह के निश्चित, परिलक्षित, दर्शित परिवर्तन (भस्मी) की अवधारणा कर। देह के हर परिवर्तन के साथ धारणा में अगर तू बचपन और जवानी के साथ अपनी प्रौढ़ावस्था की अवधारणा करता है, तो वह अवधारणा नहीं तेरी कल्पना होगी, देह भाव में तेरी मान्यता होगी। क्योंकि देहान्त किसी अवस्था विशेष से बँधा हुआ नहीं है। देह **में** भविष्यों में अन्य परिवर्तन भी तेरी अपनी मान्यताएँ और कल्पनाएँ हैं। वे हो भी सकते हैं, नहीं भी हो सकते। देह धारणा में जीवन-काल में तू किसी भी परिवर्तन की अवधारणा नहीं कर सकता, क्योंकि हर परिवर्तन भविष्य खड़ा करेगा, जो तेरे हाथ में नहीं है। कोई भी भविष्य सुनिश्चित, परिलक्षित और दर्शित नहीं है। मात्र देह की भस्मी ही देह का ऐसा परिवर्तन है, जो निश्चित, दर्शित व परिलक्षित है। वह परिवर्तन देह **का ही** है, देह से होगा **ही** और जब हो जाएगा, तो पुनः परिवर्तित नहीं होगा। अतः देह धारणा में तू उस परिवर्तन की अवधारणा कर।

पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश इन पंच-तत्त्वों से संगमित देह जब इन्हीं तत्त्वों में विलीन हो जाएगी, तो उन पंच-तत्त्वों के शेष का अवशेष यह भस्मी है। **भस्मी,** इन पंच-तत्त्वों से अतीत है, इसलिए तत्त्वातीत **'तत्त्व'** है। देह जब भस्मी में परिणत होगी, तो वह भस्मी फिर देह में परिवर्तित नहीं हो सकती। **विशेष देह** से बनी भस्मी, एक **देह विशेष** की नहीं रहती। पंच-तत्त्वों की मानव-देह के अन्य समस्त परिवर्तन पंच-महाभूतों से जकड़े हुए हैं। वे सब देह की परिवर्तनधर्मिता के कारण पुनः परिवर्तित होते हैं। लेकिन

पंच-महाभूतों की देह की भस्मी पंच-तत्त्वों से अतीत परिवर्तन है। यह तत्त्वातीत तत्त्व है।

सद्गुरु इस **'तत्त्व'** की अवधारणा करवाता है, जो किसी कल्पना, मान्यता तथा देह की किसी स्थिति, समय, स्थान, अवस्था से बँधा हुआ नहीं है। कभी भी हो सकता है, अवश्य होगा और जब हो जाएगा, तो पुनः परिवर्तित नहीं होगा। देह का हर परिवर्तन स्थिति, स्थान व समय से बँधा हुआ है, स्वयं में अनिश्चित है और पुनः परिवर्तनशील है। सद्गुरु कहता है, कि ''तू देह की पूर्णता में धारणा कर। एक दिन ऐसा अवश्य होगा, जब तेरी देह खाक होगी। थोड़ी बहुत अग्नि की लपटें इधर-उधर निकल रही होगी, शेष बस राख होगी। अब तू देह के रहते अपनी परिपुष्ट देह धारणा पर उस भस्मी तत्त्व की अवधारणा कर। 'मैं देह हूँ और देह मेरी है' की अपनी आदत से मज़बूर उस समय तू यही कहेगा, कि 'मैं भस्मी हूँ तथा भस्मी मेरी है' 'मैं अग्नि हूँ तथा अग्नि मेरी है'। इस प्रकार 'मैं देह हूँ, देह मेरी है' की धारणा ही तुझे धीरे-धीरे छोड़ देगी। अन्ततः सद्गुरु-कृपा से तेरी देह-धारणा छूट जाएगी और अवधारणा तेरी धारणा बन जाएगी। तब तेरी देह स्वतः देहातीत दिव्य देह में परिवर्तित हो जाएगी।''

देह की परिवर्तनशीलता में हुए इस अपरिवर्तनीय परिवर्तन में इतनी शक्ति है, कि देह के रहते देहधारणा में इसकी अवधारणा देह-बन्धनों से मुक्त कर देती है। **'भस्मी'** शिव की विभूत्यातीत विभूति **'वैराग'** की प्रतिनिधि है। पंच-तत्त्वों की देह में यह तत्त्वातीत तत्त्व **अदृश्य** भस्मी के रूप में कण-कण में व्याप्त है। यही इन सहज जड़ पंच-तत्त्वों में होती अविरल, अबाध, अकाट्य, निरन्तर, चिरन्तन, अति संक्षिप्त, परम विशिष्ट, अति सारगर्भित, गुणात्मक एवं सोद्देश्य (दशानन) गतियों की अदृश्य शक्ति है। सद्गुरु आश्वस्त कर देता है, कि ''यदि देहधारणा में देह के रहते भस्मी की अवधारणा तेरी धारणा बन गई, तो फिर देह होते हुए भी तेरी देह में शिव की विभूत्यातीत विभूति **'वैराग'** जाग्रत हो जाएगा एवं तू ईश्वर की समस्त विभूतियों का रसास्वादन करेगा।

देह-चिन्तन, आत्म-चिन्तन का प्रथम सोपान है। अपने सद्शिष्य से सद्गुरु दोनों धारणाओं (परिवर्तनशीलता एवं नश्वरता) युक्त देह पर भस्मी की अवधारणा करवाता है। ''तू देह के रहते जीवन-काल में अवधारणा कर, कि मैं भस्मी हूँ और भस्मी मेरी है। जैसे तू कहता है, मैं बड़ा हूँ, मैं जवान हूँ, मैं पुत्र हूँ, मैं सन्यासी हूँ, मैं डॉक्टर हूँ, मेरा घर बहुत बड़ा है, दुकान मेरी है, देश मेरा है, मेरा समय खराब चल रहा है, मेरा धर्म हिन्दु है; उसी प्रकार अवधारणा कर, कि तू भस्मी बना हुआ पड़ा है। यह भस्माध्यास और भस्माधिपत्य तुझे देहाध्यास और देहाधिपत्य से मुक्त कर देगा।'' किसी विशिष्ट जन्म में सद्गुरु कृपावश जीव बने जीवात्मा ने मृत्युयोग द्वारा देह की धारणाओं सहित देह को धारण किया कि, ''मैं परिवर्तनशील देह हूँ और मैं नश्वर देह हूँ।'' यहाँ से इसकी देह-चिन्ता समाप्त हो गई और देह-चिन्तन प्रारम्भ हो गया। इसके बाद भस्मी की अवधारणा ने इसकी देह धारणा को समाप्त कर दिया। अब भस्मी की अवधारणा वाली देह ने इसे (जीवात्मा को) धारण कर लिया और यह देह इसे आत्म-चिन्तन में ले आई। यहाँ से स्वतः आत्मानुभूति के देहातीत व आनन्दमय क्षेत्र में प्रविष्टि हो जाती है। ब्रह्म-चिन्तन व ब्रह्मानुभूति स्वयं प्रभु करवाते हैं।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(13 , 14 दिसम्बर, 2007)

अधिकार एवं आकार

अधिकार स्वयं में निराकार है और जितना चराचर मायिक जगत है, सब **आकार** सहित (साकार) है। हम पाँचों ज्ञानेन्द्रियों द्वारा उसका अधिग्रहण करते हैं। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश स्वयं में निराकार हैं और इनके द्वारा संगमित चराचर मायिक जगत साकार है। ईश्वर (शिव) वैराग का पुंज है। पंच-प्राणों की महाज्योति (महाशक्ति) का वैराग से अभ्युदय होता है। अतिशक्ति वैराग और महाशक्ति (पंच-प्राणों की ज्योति) में क्रीड़ा होती है तथा पंच-महाभूतों का प्राकट्य होता है। इन सहज जड़ पंच-महाभूतों में समस्त शक्ति, शिव के वैराग की प्रतिरूप अदृश्य भस्मी की ही है, जो इनके कण-कण में समाहित रहती है। यह शक्ति पंच-महाभूतों से समस्त चराचर जगत का निर्माण, पालन व संहार करती है। प्रत्येक साकार में विरक्ति शक्ति अदृश्य भस्मी के रूप में अन्तर्निहित है, जिसके बिना पंच-महाभूतों का संगम हो ही नहीं सकता, चाहे वह चराचर जगत की कोई भी वस्तु, पदार्थ, प्राणी, पेड़, शिला कुछ भी हो। संहार के समय विरक्ति शक्ति का प्रतिरूप अदृश्य भस्मी, भौतिक रूप से प्रकट हो जाती है।

जीवात्मा निराकार है, परमात्मा भी निराकार है। लेकिन नाम-रूप की साकार देह में आकर हमारा लक्ष्य मात्र साकार जगत की विभिन्न विधाओं का सर्वांगीण विकास एवं आकार की विभिन्न प्रकार से वृद्धि रह जाता है। हम आजीवन अपनी प्राप्तियों के आकार को बढ़ाने में लगे रहते हैं। धन, प्रौपर्टी, पद-प्रतिष्ठा, सम्बन्ध, नाम-यश, सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति आदि को बढ़ाने में ही अपने होने की सार्थकता मानते हैं। उसी को हम प्राप्ति कहते हैं।

हम यही कर रहे हैं और यही करना चाहते हैं। हम नहीं जानते, कि जितना हम अपना आकार बढ़ाना चाहते हैं, उतना अधिकार खोते जाते हैं।

अधिकार शब्द में आकार छिपा है, लेकिन आकार में अधिकार नहीं है। हमारी समस्त मानवीय दौड़ आकार के लिए है, **यदि साकार के भोग का अधिकार नहीं है, तो समस्त आकार हमारे गले पड़ जाएँगे।** साकार जब आकार के पीछे भागा, तो उसने उसके भोग का अधिकार खो दिया। हम आकार में भटक गए। हमें हमारी अपनी देह, परिवार, सम्बन्धों, धन-सम्पत्ति, प्रौपर्टी, पद आदि को भोगने का अधिकार नहीं रहता। ये सब विधाएँ हमारे तनाव, चिन्ता, भय, विक्षेप, त्रास और रोगों का कारण बन जाती हैं।

मानवीय विकारों का मूल साकार के **'आकार'** के विस्तार की चाह होना ही है। उसका घर, गाड़ी, बंगला बहुत बड़ा है, मेरे पास तो छोटा सा ही है। उसके घर पाँच नौकर हैं, मुझे एक ही से काम चलाना पड़ता है, आदि भाव हमारे विकारों में वृद्धि करते हैं। हमारी आकार बढ़ाने की जितनी ज्यादा वृत्ति होती है, उतने ही अधिक हम विकृत होते जाते हैं। हर विकास और उन्नति प्रत्यक्ष रूप से आकार से सम्बन्धित है और **'अधिकार'** अप्रत्यक्ष रूप से आकार से सम्बन्धित है। आकार बढ़ाने में प्रत्यक्ष रूप से विकार बढ़ते जाते हैं और अप्रत्यक्ष रूप से अधिकार कम होता जाता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार की जननी आकार के संवर्धन की वृत्ति है। ये पाँचों इकट्ठे होते हैं। किसी एक की प्रमुखता होती है और वह परिवर्तित होती रहती है। कभी काम अधिक हो गया, कभी क्रोध बढ़ गया आदि-आदि। विकार, अहंकार, साकार एवं अधिकार चारों में आकार छिपा है।

साकार मानव-देह पाकर इससे तद्‌रूपता के कारण जीवात्मा आकार में खो गया। मकान का आकार, कमरे का आकार, सम्बन्धों का आकार, घर की विभिन्न वस्तुओं का आकार, हमारे पद-प्रतिष्ठा आदि का आकार। जहाँ हम आकार बढ़ाते हैं या आकार बढ़ाने की जितनी अधिक वृत्ति होती है, उसके अनुपात में ही पाँचों विकार बढ़ते हैं। आकार बढ़ता है और मानसिक रूप से उस बढ़े हुए आकार से ताल-मेल नहीं होता, तो **अहंकार** बढ़ता है। जितना भी

क्लेश, द्वेष, वैर है, उसके मूल में आकार ही रहता है। **'आकार'** में **'अधिकार'** नहीं है और **'अधिकार'** में **'आकार'** छिपा है। **जब तक अधिकार नहीं होगा, हम आकार को भोग नहीं सकते।** जहाँ अधिकार मिल जाएगा, वहाँ आकार होगा ही। आकार को बढ़ाने से पहले यह भी विचार करना होगा, कि अधिकार भी है या नहीं। यदि इसे हम उपेक्षित करेंगे, तो आकार जल्दी या देर से हमारी चिन्ता का कारण अवश्य बनेगा और हमारी दुर्गति करते हुए अधोगति में ले जाएगा। मैं विस्तार से वर्णन करूंगा।

हमारे भाव और चाहतें दिखाई नहीं देतीं, लेकिन जो हम चाहते हैं, वह वस्तु, प्राणी, पदार्थ अथवा इससे सम्बन्धित कोई भी ज्ञात-अज्ञात विधा दृश्यमान होती है। कोई भी वस्तु हम उसका भोग करने के लिए ही चाहते हैं। वह हमारी आवश्यकता भी हो सकती है और हमारे भोग के लिए सुख-साधन भी हो सकते हैं। जो आवश्यकता है अथवा भोग-पदार्थ या सुख-साधन हैं; जब तक दोनों पर अधिकार नहीं होगा तो जो आवश्यक है वह प्राप्त होते हुए भी हमारी आवश्यकता पूरी नहीं करेगा और भोग-पदार्थ व सुख-साधन प्राप्त होते हुए भी हमें भोग व सुख नहीं देंगे।

हमारी आवश्यकता अथवा इच्छा एक अदृश्य भाव है। उस भाव के अनुसार अथवा थोड़ा-बहुत कम-ज्यादा जब वह भाव आकार में प्रकट होता है, तो हम कहते हैं, कि हमारी इच्छा पूरी हो गई। उदाहरणतः हमें एक सुन्दर घर की आवश्यकता या इच्छा थी; घर मिल गया। घर की चाह एक अप्रकट व निराकार मानसिक भाव था। जो घर प्रकट हुआ वह साकार था। उस साकार घर को हमने देखा, तो उसका प्रभाव हमारे मन पर हुआ। जैसे भाव अदृश्य था, वैसे ही प्रभाव भी अदृश्य हुआ।

साकार प्राकट्य अथवा हमारी कल्पना में प्राकट्य हमें प्रभावित करता है और यह प्रभाव बहुत महत्त्वपूर्ण है। हमने बड़ी से बड़ी वस्तु प्राप्त कर ली, लेकिन उसे प्राप्त करने के बाद उसका प्रभाव यह हुआ, कि हम दुःखी व तनावग्रस्त हो गये। इस प्रभाव की हम पहले कल्पना भी नहीं कर सकते और आजीवन हमारी सारी दौड़ अधिक से अधिक वस्तुओं के साकार

प्रकाट्य की ओर रहती है। हम उस प्रकाट्य के प्रभाव के बारे सोचते ही नहीं, जबकि यह प्रभाव ही हमारे मन में उठी उस अदृश्य इच्छा या भाव का फल है।

हम मानव थोड़ा होश सम्भालते ही आकार की वृद्धि, विकास एवं संवर्धन में जुट जाते हैं। Our total attempts are to fullfill our fake temptations for temporary attainments. हम सब जानते हैं, कि जो कुछ भी हम प्राप्त करेंगे, वह अस्थाई व क्षणभंगुर ही होगा। धन-सम्पदा, प्राणी, पदार्थ, पद-प्रतिष्ठा, सौन्दर्य, शक्ति, नाम-यश कुछ भी हमेशा रहने वाला नहीं है। किसी भी चीज़ को हम भोग करने के लिए ही प्राप्त करना चाहते हैं। प्रश्न यह है, कि हम पूरा जीवन जो वस्तुओं की प्राप्ति में व्यर्थ कर देते हैं, क्या उनका भोग भी कर रहे हैं ? हमारी समस्त temptations fake होती हैं। क्योंकि वे अस्थाई व नश्वर वस्तुओं के लिए होती हैं। मानव-देह धारण करके यदि हम कुछ करना ही चाहते हैं तो हमारी चाहत तो स्थाई वस्तु की होनी चाहिए।

हर आकार अस्थाई है परन्तु हम उनकी प्राप्ति के प्रति लालायित हो जाते हैं। हम कभी भी तृप्त और संतुष्ट नहीं होते। जितना हम प्राप्त करते जाते हैं, उससे कहीं ज्यादा असन्तुष्ट होते जाते हैं। मैंने अपने प्रवचनों में गिलास, लोटे, बाल्टी, ड्रम, कुएँ और नदिया का उदाहरण कई बार दिया है। जीवन में यह तथाकथित विकास वस्तुतः ह्रास है। ह्रास को अंग्रेज़ी में Harrasement कहते हैं। गिलास संघर्ष करके लोटा बन गया, चार गिलास के बराबर लोटा बन कर उसका विकास मानो चार पर चार चौगुना (सोलह) हुआ, लेकिन यह प्रसन्नता अस्थाई होगी। दो-चार दिन बाद बाल्टी को देखकर जब असन्तुष्टि चार दर चार (4x4x4x4=256) हो जाएगी, तो वही विकास कई गुना अनुपात में ह्रास बन जाएगा।

गिलास के मन में भाव उठा, कि ''मैं लोटा बन जाऊँ।'' यह भाव स्वयं में निराकार व अदृश्य था। उसने सब प्रकार से प्रयत्न किए और वह लोटा बन गया। यद्यपि उसे लोटा बनना ही था। समय पर उसके लिए प्रकाट्य

हो जाता, लेकिन वह लोटा बनने के लिए बेचैन और संघर्षरत रहा, इसलिए वह उसके लिए प्राप्ति थी। जब वह लोटा बन गया, तो उसने अपने द्वारा किए गए प्रयासों का सविस्तार वर्णन करते हुए अपनी डींगे हाँकी। जैसे उसके मन में स्वतः इच्छा या भाव उठा था, कि मैं लोटा बन जाऊँ, वैसे ही उसके द्वारा इस दिशा में कुछ करवा भी लिया जाना था और उसके लिए लोटे का प्रकाट्य हो जाता। यहाँ बहुत सूक्ष्म लेकिन अति महत्त्वपूर्ण अन्तर है, कि इच्छा उठते ही वह बेचैन हो गया और प्राप्ति के लिए हर तरह से संघर्ष करने लगा; इसलिए लोटा बनना उसके लिए प्रकाट्य नहीं हुआ। बल्कि उसके लिए यह प्राप्ति हुई। जब हमारा भाव आकार ले लेता है, तो उसका प्रभाव (भाव पर भाव) होता है।

गिलास पहले आधा भरा हुआ था, वह अतृप्त था। पूरा भरने पर अस्थाई रूप से तृप्त हुआ और यह तथाकथित तृप्ति लोटा देखते ही असंतुष्टि में परिवर्तित हो गई। अपने हृदय की अदृश्य असंतुष्टि की भरपाई के लिए उसने बहुत संघर्ष किया। इस दौरान कई प्रकार के भय, विक्षेप, स्पर्धा, वैर-द्वेष, प्राप्ति के बाद उसकी सुरक्षा की चिन्ता आदि भाव अदृश्य व निराकार रूप से उसके मानस में समाहित हो गए। तरह-तरह के जुगाड़ लगाकर झूठ-सच बोल कर किसी भी तरह से कृत्य करते हुए और कृत्यों का अभिमान करते हुए, उसके लोटा बनने के भाव ने साकार रूप ले लिया। इसका प्रभाव अस्थाई प्रसन्नता और तात्कालिक सुख के रूप में हुआ। साथ ही वस्तु के मिलने के बाद देर-सबेर भय, तनाव, स्पर्धा, द्वेष आदि मानस के वे अदृश्य व निराकार भाव भी साकार रूप लेकर दृश्यमान हो जाते हैं। उदाहरणतः कोई घर मिल गया तो उसके कई दावेदार प्रकट हो गए, जिन्होंने सहयोग दिया था वे हिस्सा मांगने लगे, पड़ौसी बेकार मिले, वहाँ मुकदमेबाजी शुरू हो गई, कई लोगों से वैर-वैमनस्य बढ़ गया। इसलिए उस वस्तु का भोग तो क्या मिलना था ऐसा लगने लगता है, कि इसके बिना ही मैं ठीक था। इस प्रकार भाव से प्रभाव हुआ और फिर **दुर्भाव** में रूपान्तरित हो गया।

हमारी इच्छा का इच्छाफल उस इच्छा की साकार रूप में प्राप्ति नहीं है, बल्कि प्राप्ति के बाद का यह प्रभाव और दुर्भाव है। यही उस प्राप्ति के बाद विभिन्न भावों का सार होता है। हमारे प्रभाव को प्रभावित करने वाले कई factors होते हैं, इसलिए हमारा कोई प्रभाव स्थिर नहीं होता। लोटा बाल्टी से प्रभावित हो गया, इसका मूल कारण उसकी असंतुष्टि है जो वस्तु की प्राप्ति होने के बाद **'दर'** के अनुपात में बढ़ जाती है। प्राप्ति अस्थाई तौर पर अल्पकालीन प्रसन्नता देती है, लेकिन असंतुष्टि की आग कई गुना और बढ़ जाती है। इसी प्रकार बाल्टी से ड्रम, ड्रम से कुआँ, कुएँ से नदिया बनकर नदिया भी भागती रहती है, जब तक वह नाम-रूप खोकर समुद्र से मिल नहीं जाती, उसे संतुष्टि नहीं मिलती। जब संतुष्टि मिलती है, तो वह नदी नहीं रहती। गिलास से नदी बनकर भी नदी अस्त-व्यस्त विश्रंखल भागती रहती है और असंतुष्ट ही रहती है। यह जीवन में विकास है या ह्रास है, इसका निर्णय हम स्वयं विवेक बुद्धि से करें।

भौतिक रूप से तथाकथित बहुत बड़ा आदमी मरे, तो संसारी लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। क्योंकि दृश्यमान आकार की वृद्धि को विकास मानते हैं, इन्होंने अपना जीवन आधे भरे गिलास से शुरू किया था, अन्त में ये विशाल नदी बन गए; निरन्तर संघर्ष करते रहे। आइए ! इनके पद-चिन्हों पर चलकर हम भी जीवन में कुछ बन कर दिखाएँ। उनके हृदय में व्याप्त अदृश्य असन्तोष व आसक्तियाँ किसी को दिखाई नहीं देतीं। जीवन में जितना हम प्राप्त करते जाते हैं, उसके कई गुना असन्तुष्ट होते रहते हैं।

जीवन में आकार और उसकी वृद्धि महत्त्वपूर्ण नहीं है। यदि गिलास अपना जीवन समुद्र से प्रारम्भ करता, यानि आधा, पौना जितना भी भरा था, सीधा समुद्र में कूद जाता, तो समुद्र में उसका आयतन वही रहता तथा जो सन्तुष्टि उसे गिलास से लोटा, बाल्टी, ड्रम, कुआँ, नदिया बनने के बाद समुद्र में मिलने पर नाम-रूप (आकार) खोने के बाद मिलती वह उतने ही आकार में तुरन्त मिल जाती। समुद्र में पड़े गिलास को किनारे खड़ा हुआ कुआँ भी गरीब नज़र आता। सीमित गिलास को असीम सन्तुष्टि अपने

नाम-रूप में मिल जाती, क्योंकि उसके अधिकार समुद्र जितने हो जाते। **अतः आकार से अधिक महत्त्वपूर्ण है अधिकार।**

अधिकार में आकार छिपा है, परन्तु आकार के पीछे भागते-भागते हम अधिकार खो देते हैं, क्योंकि आकार स्वयं में अधिकार रहित है। गिलास समुद्र में **'अधिकार'** के लिए कूद गया और उसे उसी आकार में असीम सन्तुष्टि मिल गई। उसे आकार पर अधिकार मिल गया, क्योंकि अधिकार के कारण गिलास को स्वयं में अपने से कई गुना बड़े आकार वाले कुएँ को तृप्त करने की सामर्थ्य आ गई। एक कहावत है Might is Right लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से 'Right is Might' अधिकार प्राप्त होने के बाद समस्त आकार चरणों में आने लगते हैं। समुद्र विश्व के समस्त झरनों, प्रपातों, नदियों को स्वयं में समेटे है।

यह अधिकार कैसे प्राप्त हो? संसार में समस्त मानव और उनकी प्राप्तियाँ भस्मी में अन्त हो जाती हैं। मानव-देह में होश सम्भालते ही मुझे (जीवात्मा को) देहाधिपत्य 'देह मेरी है' और देहाध्यास 'मैं देह हूँ' हो गया। **'भस्मी'** मेरी देह का निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य है। मैं (जीवात्मा) अपनी पहचान वहाँ से क्यों न करूँ, जो सब मानवों की एक ही है, निराकार है तथा जीवन-काल में अदृश्य है। सीमित देह का अन्त **'भस्मी'** है, जो सारे विश्व की देहों की एक ही है। जो एक देह की भस्मी है, वह सबकी है। भस्मी **देहातीत** (जहाँ देह अतीत की वस्तु हो जाती है) और **देहातीत** (जो देह की सभी विधाओं और रूपों से अतीत है) है।

होश सम्भालते ही पहले हमारी अपनी देह हमारे लिए प्रकट हुई। जिस दिन जिस भाव के अनुसार देह प्रकट होती है, तद्नुसार साथ-साथ स्वतः एक जगत भी बना-बनाया प्रकट होता है। इस प्राकट्य का प्रभाव पृथक्-पृथक् होता है। किसी दिन हम बहुत प्रसन्न होते हैं, किसी दिन अवसाद में होते हैं, किसी दिन शान्त होते हैं, किसी दिन उत्तेजित होते हैं। भाव निराकार व अदृश्य था। देह सहित जगत साकार रूप में दृश्यमान हुआ और उस प्राकट्य का प्रभाव भी निराकार व अदृश्य था। प्रश्न उठता है, कि

इस प्रभाव को कौन-कौन से तथ्य प्रभावित करते हैं? What effects the effect. Why are we effected like that. यह प्रभाव भिन्न-भिन्न क्यों होते हैं ? एक ही प्रकाट्य से कभी हम अवसाद व निराशा में चले जाते हैं और कभी प्रसन्न हो जाते हैं। एक वस्तु की प्राप्ति कभी हमें भयभीत व तनावित करती है; कभी उल्लसित और हर्षित करती है। वस्तु की प्राप्ति के लिए जो करना था, वह मैं कर चुका हूँ, पर उसे पाने का प्रभाव भिन्न-भिन्न इसलिए होता है, क्योंकि बहुत से तथ्य प्रकाट्य के बाद के प्रभावों को प्रभावित करते हैं। हमारा सम्पूर्ण जीवन इस प्रकार व्यर्थ हो जाता है। हमारे जीवन की गुणात्मकता का स्तर बहुत निम्न होता है। देह, मौसम, अवस्थाएँ, स्थितियाँ, परिस्थितियाँ हर पल परिवर्तित होती रहती हैं। लेकिन हमारी मस्ती स्थिर रहनी चाहिएः–

''उदित सूर्य जेहि भाँति ते, अथवत ताहि भाँति।''

हमारी चाहतें पूरी होती रहती हैं, लेकिन उनके प्रकाट्य के बाद प्रभाव स्थिर नहीं रहते। कोई भी तकनीक जो प्रभाव को स्थिर कर दे जैसे Voltage Stablizer विद्युत को एक स्तर पर स्थिर रखता है, जिससे उपकरण खराब नहीं होता। मुझे भी ऐसा कोई Stablizer चाहिए जो हर प्रकाट्य के प्रभाव को स्थिर कर दे। चेतना (जीवात्मा) स्थिर है यह अवचेतना में आकर अस्थिर हो गई। **अस्थिर चेतना को अवचेतना कहते हैं। 'मैं'** जीवात्मा है जो स्वयं में चेतन, निराकार व अदृश्य है।

मैं (जीवात्मा) अवचेतना में दुःखी क्यों हूँ? क्योंकि जैसे ही मैंने स्वयं को देह के नाम-रूप के साथ पहचाना, तो मैं चेतन जीवात्मा से अवचेतन जीव बन कर स्वयं में **अभावमय** से अभाव **में** आ गया। मैं स्वयं में पूर्ण सच्चिदानंद व सहज सुखराशि था। मेरा स्वरूप अभावमय व आनन्दमय था, लेकिन देह के साथ तदरूपता में, मैं **अभाव में** आकर अनेकानेक चाहतों में भटक गया। चाहत स्वयं में निराकार थी, लेकिन जिसकी चाहत थी, वह विधा साकार थी। वह साकार विधा मुझे प्राप्त हुई तो उसका प्रभाव, प्रभाव पर प्रभाव एवं प्रभाव दर प्रभाव होता रहा, परन्तु मैं स्वयं **अभाव में** ही रहा।

मेरी भटकन बढ़ती रहती है और कारण मैं नहीं जान पाता। इस प्रभाव के दुष्प्रभावों को रोकने के लिए एक स्टैबलाइज़र चाहिए। यदि स्टैबलाइज़र नहीं होगा तो हम अवचेतना से चेतना की ओर मुड़ ही नहीं सकते। जन्म दर जन्म जरा-जरा (जरा यह मिल जाए, अब जरा और यह मिल जाए) करते हुए हम जराग्रस्त (बुढ़ापा) होते हुए मरते व जन्मते रहते हैं। मैं जब कुछ चाहता हूँ, चाहे वह मेरी आवश्यकता हो अथवा भोग पदार्थ, तो मैं उसकी प्राप्ति किसी न किसी प्रकार करना चाहता हूँ। मेरे लिए वह प्रकाट्य न होकर संघर्ष से की गई प्राप्ति होती है। इसके प्रभाव के बारे में तो मैं सोचता ही नहीं हूँ, जबकि वास्तव में मेरी इच्छा का फल वह **प्रभाव** ही होता है।

वस्तु मिल गई, लेकिन इसका प्रभाव बदलता रहता है। कुछ दिन बहुत प्रसन्न रहे, लेकिन फिर तनावग्रस्त हो गए। I am dis-stablized in life because of effect on effect. प्रभाव का प्रभाव तब नहीं होगा, जब आकार पर मुझे अधिकार मिल जाएगा। हम आकार की प्राप्ति या प्रकाट्य के बाद अधिकार करना चाहते हैं, जो सम्भव नहीं है। पहले मुझे अधिकार प्राप्त करना होगा, फिर कोई भी आकार मुझे प्रभावित नहीं करेगा। मैं हर आकार का भोग ही करूँगा।

देह मेरे (जीवात्मा के) लिए जगत की समस्त विधाओं सहित प्रकट होती है। मैं उसका रसास्वादन करना चाहता हूँ लेकिन जीवन भर मैं आकार के पीछे लालायित रहता हूँ। मेरी समस्त शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक शक्तियाँ किसी न किसी इच्छा (निराकार) की साकार प्राप्ति में लगी रहती हैं। यही दुर्भाग्यवश मेरा जीवन है। उस प्राप्ति का मेरे मानस पर प्रभाव (निराकार) पड़ता है। जब भाव निराकार है और उसका प्रभाव निराकार है, तो मैं साकार की बजाय उसके निराकार के पीछे क्यों न भागूँ ! निराकार की Realisation मुझे अधिकार दिला देगी। फिर सारे आकार अधिकार सहित मेरे लिए ही होंगे। **भस्मी–सम्पूर्ण जगत सहित देह का अधिकार है।** यह अधिकार प्राप्त होने पर मुझे अधिकार सहित आकार प्राप्त होंगे। यही छुटकारा है।

'अधिकार' का दूसरा नाम **'छुटकारा'** है। सब कुछ होते हुए भी हम किसी भी चीज़ में लिप्त नहीं होंगे। Uninvolved प्राप्तियों का ही भोग सम्भव है। अधिकार (भस्मी का कवच) मिलने पर चेतना व अवचेतना का संगम हो जाता है। समस्त वक्तव्य का सारांश है, कि **'मैं'** निराकार चेतना है। नाम-रूप की देह के सान्निध्य में आकार में आ गई और आकार का प्रभाव हुआ। यह प्रभाव निराकार था, इसमें निराकार जीवात्मा फँस गया। आकार का प्रभाव अवचेतना के कारण भिन्न-भिन्न था। यदि मैं पहले ही साकार का निराकार (भस्मी) पकड़ लेता, तो कोई भी आकार मुझे प्रभावित नहीं करता। **साकार के निराकार पर साकार की तरह अधिपत्य और अध्यास को ही 'अधिकार' कहते हैं।** जैसे मैंने मान लिया, कि 'मैं देह हूँ' और 'देह मेरी है' उसी तरह मैं मान लूँ, कि 'मैं भस्मी हूँ' तथा 'भस्मी मेरी है।'

मैंने प्रवचन के आरम्भ में चर्चा की थी, कि पंच-महाभूत स्वयं में सहज जड़ एवं निराकार हैं। इनके संगम से चराचर साकार जगत बनता है। जो पंच-महाभूत निराकार हैं, उनके संगम से साकार मानव-देह बनी। पंच-महाभूतों में शिव के वैराग की अथाह शक्ति अदृश्य भस्मी के रूप में समाहित रहती है। बिना विरक्ति के शक्ति पर अधिकार नहीं हो सकता। शक्ति हो और उस पर अधिकार न हो, तो न केवल वह निरर्थक है, बल्कि वह घातक हो जाती है। निराकार से साकार बनने में बहुत महत्त्वपूर्ण तत्त्व **'भस्मी'** है। इसके बिना निराकार पंच-महाभूतों का संगम साकार में नहीं हो सकता। निराकार पंच-महाभूतों में शिव की विरक्ति शक्ति **'भस्मी'** से ही **'मैं'** (जीवात्मा) निराकार से साकार मानव-देह में आया हूँ। मेरी देह का निर्माण और पालन पंच-महाभूतों से ही होता है, जिसमें यह **'भस्मी'** अदृश्य रहती है और संहार के समय जब पंच-महाभूतों की मानव-देह पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है, तो वह अदृश्य भस्मी प्रकट हो जाती है।

मैं साकार में आकर **'सब कुछ'** चाहता हूँ। एक चाहत पूरी होती है, तो हज़ार चाहतें प्रकट हो जाती हैं। मैं विभिन्न प्रकार से आकार बढ़ाने में ही जीवन-पर्यन्त संघर्षरत रहता हूँ और मैं अधूरा का अधूरा, आसक्त ही अकाल

मृत्यु को प्राप्त हो जाता हूँ। भस्मी मेरी साकार देह का अन्तान्त है। भस्मी स्वयं में निराकार है तथा इसमें शिव की भाँति सारे गुण हैं। भस्मी देशातीत, कालातीत, धर्मातीत, सम्बन्धातीत, लिंगातीत, कर्मातीत, मायातीत है। **'भस्मी'** मानव-देह के **'सब कुछ'** का **'कुछ नहीं'** है।

जीवन की कहानी **'कुछ नहीं'** से प्रारम्भ होती है और अन्ततः **'कुछ नहीं'** रह जाता है। जीवन का प्रारम्भारम्भ वह भ्रूणावस्था है, जब माँ के गर्भ में मेरी देह के लिए गर्भाधान हुआ। वह भ्रूण अथवा बिन्दु, जिसे मैंने D.V.Dot की संज्ञा दी थी, खुले नेत्रों से देखा नहीं जा सकता। देह बनी, जन्म हुआ और मृत्योपरान्त अन्तान्त **'भस्मी'** के रूप में दृश्यमान हो गया। जन्म से पहले मैं **'कुछ नहीं** (मात्र एक भ्रूण) था और मृत्योपरान्त **'कुछ नहीं'** (**भस्मी**) रह जाऊँगा। मध्य में कुछ करना, कुछ पाना, कुछ खोना और कुछ न कुछ होना होता रहता है। इस सब कुछ को बनाने वाली, संगमित करने वाली शक्ति, शिव की विरक्ति शक्ति-भस्मी है। पंच-महाभूतों को संगमित किया, इस अदृश्य **'कुछ नहीं'** (भस्मी) ने और अन्ततः यह **'कुछ नहीं'** प्रकट रूप से दृश्यमान हो गया। सब कुछ भस्मी से बना है, केवल वह भस्मी अदृश्य है, इसलिए हम इसे उपेक्षित नहीं कर सकते।

मानव-देह धारण करके होश परिपक्व होने पर, हमारा मात्र यही कर्म है, कि हम इस विषय में चिन्तन करें। वह कौन सी रहस्यमयी वस्तु है, जिसने मुझे पंच-महाभूतों की देह में साकार बनाया है। इन्हीं पंच-महाभूतों में मेरा पालन व विकास होता है और अन्ततः साकार देह, जगत सहित पंच-महाभूतों में ही विलीन हो जाएगी। **जीवन-काल में भस्मी तत्त्व का मूल्यांकन, चाहत और अनुभूति हो जाए, तो हमें 'अधिकार' मिल जाएगा। अधिकार में आकार समाहित ही है, फिर आकार की वृद्धि का महत्त्व ही न रहेगा।** यदि जीवन-काल में तहे-दिल से प्रभु से यह मांग और प्रार्थना हो जाए, कि "प्रभु ! मुझे मेरा **'कुछ नहीं'** दिखा दो, मेरा **'कुछ नहीं'** सबका भी है।" ईर्ष्या, द्वेष तो **'सब कुछ'** में होते हैं, जब **'कुछ नहीं'** पर अधिपत्य हो जाएगा, तो आकार वृद्धि से होने वाले समस्त विकार समाप्त हो

जाएँगे। **सबका हित तो एक विरक्त ही सोच सकता है।** अधिकार विरक्ति भस्मी का है। आकार पर अधिकार व अधिपत्य के लिए हमें **'कुछ नहीं'** (**भस्मी**) को जीते जी आत्मसात् करना होगा।

'कुछ नहीं' (भस्मी) देहातीत है और आनन्द भी देहातीत है। आनन्द अभावमय है और आनन्द **'कुछ नहीं'** का है। दोनों में सीधा सम्बन्ध है। **'भस्मी'** मेरी देह की है, लेकिन देहातीत है और मेरी देह के कोई गुण या अवगुण उसमें नहीं हैं। देह देश-काल, धर्म-कर्म, सम्बन्ध, लिंग, प्राप्तियों और खोने तथा माया के तीनों गुणों से बँधी है, लेकिन भस्मी देह की इन सभी विधाओं से अतीत है। आनन्द भी मेरी देह का है, लेकिन देहातीत है। अधिकार में आकार है ही, लेकिन मात्र **'आकार'** में अधिकार खो जाएगा।

सद्गुरु-कृपा से ही अधिकार की प्राप्ति सम्भव है। तभी हम जीवन के आधार **'अर्थ'** से यथार्थ जीवन जीते हुए धर्म, काम और मोक्ष की ओर अग्रसर होंगे। नहीं तो अर्थ से निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ में असीम अधोगति को प्राप्त हो जाएँगे। जब तक उस विरक्ति शक्ति को जीवन में आत्मसात् नहीं करेंगे, तब तक हम देह एवं जीवन का आनन्द नहीं ले सकते। जब तक **'अधिकार'** नहीं है, तब तक हम दिशाहीन भटकते रहेंगे। महाकाल की 1008 धाराओं के अन्तर्गत सज़ाएँ पाते रहेंगे। मानव-देहधारी होते हुए भी पशुओं से बदतर जीवन जीने पर बाध्य होंगे।

सारांश में, **'अधिकार'** एक आध्यात्मिक दस्तावेज है, जो मात्र सद्गुरु-कृपा से जीते जी अपनी देह की भस्मी से आत्मसात् होने पर मिल सकता है। योगी ही संसार का भोग कर सकता है। भोगी को संसार भोग लेता है। अधिकार हमें मात्र अपनी विरक्ति से ही मिलेगा।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(21 अगस्त, 2007 और 27 व 28 मार्च, 2008)

ज्ञान-ध्यान एवं समाधि

आज इष्ट-कृपा व सद्‌गुरु-प्रेरणा से ध्यान-समाधि एवं ज्ञान के सूक्ष्मतम् बिन्दुओं को विश्व में प्रथम बार आप समस्त जिज्ञासुओं के सम्मुख रख रहा हूँ। यह विशेष रूप से गोपनीय एवं परम रहस्यमय विषय है, आप सबकी विशिष्टतम् श्रद्धा व पूर्ण एकाग्रता वांछनीय है। शास्त्र में निद्रा को **'जड़ता'** की संज्ञा दी है। कृपया एकाग्र करें। प्रगाढ़ निद्रा (स्वप्न रहित सुषुप्ति) में पंच-महाभूतों की अवचेतनामयी देह सहित जगत के प्रपंचमय आडम्बर का पूर्ण अभाव हो जाता है; लेकिन अपनी इस अभावमयी (आनन्दमय) स्थिति का हमें ज्ञान नहीं होता। दूसरी ओर एक योगी की अभावमयी मानसिक स्थिति से ओत-प्रोत तथाकथित निद्रा है, जिसमें उसका देह व जगत में **ध्यान** नहीं होता और अपनी इस स्थिति का उसे **ज्ञान** होता है। साथ ही उसका ध्यान अपने सद्‌गुरु व इष्ट में होता है, इसलिए उसकी निद्रा भी समाधि स्थिति है।

मैं पुनः सविस्तार वर्णन करूँगा। देह में नाम-रूप की अवचेतना कि मैं (जीवात्मा) अमुक-अमुक हूँ, एक मानसिक स्थिति है, जो सुषुप्ति में नहीं रहती। एक देह के रूप में जब मैं सोता हूँ, तो मैं देखता हूँ, कि मुझे सोने के लिए क्या-क्या सुविधाएँ चाहिए। जगत को सुलाने की मुझे चिन्ता नहीं होती, कि बाहर बादल गरज रहे हैं, गाड़ियाँ चल रही हैं या कुत्ते भौंक रहे हैं, वे सोएँ तो मैं सोऊँगा। मैं अपनी देह को सुलाने का प्रयत्न करता हूँ। फलस्वरूप जब मैं सोता हूँ, तो जगत सहित देह मेरे लिए नहीं होती। जब मैं उठता हूँ, तो यद्यपि मैं एक नाम-रूप की देह में उठता हूँ, लेकिन वह देह,

जगत सहित होती है। अतः देह जगत सहित सोती है और जगत सहित ही उठती है। तो मेरी नाम-रूप की देह की अवचेतना जो कि मेरी निराकार मानसिक स्थिति है, उसकी प्रस्तुति जब साकार में होती है, तो वह देह सहित जगत के रूप में होती है।

सुषुप्ति में मेरी देह सहित जगत का लय हो जाता है और जब मैं उठता हूँ तो जगत (उस समय का मौसम, त्रिविध समीर, पक्षियों का कलरव, भूत, वर्तमान व भविष्य की योजनाओं-परियोजनाओं सहित ब्रह्माण्ड की समस्त विधाओं) सहित देह के रूप में उठता हूँ। इसलिए मेरे एक नाम-रूप की एक अवचेतना (मेरी निराकार मानसिकता) जब साकार में देह सहित जगत के रूपों में प्रकट होती है, तो उस प्रकाट्य में मुझे अपनी देह और जगत में पृथकता का भ्रम हो जाता है। स्पष्ट है कि मैं नाम-रूप की देह की अवचेतना में भ्रमित नहीं हुआ, बल्कि अवचेतना में जगत सहित देह के साकार प्रकाट्य में भ्रमित हुआ। प्रकाटय में मैं अपनी देह को समस्त जगत से पृथक् मान लेता हूँ, कि मैंने उसके लिए इतना किया, वह मुझे पूछता ही नहीं है, उसका मैंने यह करना है। मेरे साथ जो प्रकट हुआ है, उसमें मैंने किसका, क्या किया और क्या करना है। जिसका ख्याल मुझे नहीं आया उसका मैंने कुछ नहीं करना था। इसी प्रकार उस समय प्रकट बादल, हवा, मौसम, पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों का मैंने क्या करना है? मेरे साथ अनेक लखपति, करोड़पति, भिखारी, मज़दूर प्रकट होते हैं, मैं किसका क्या कर सकता हूँ?

देह सहित ब्रह्माण्ड निराकार से साकार में मेरे लिए स्वतः प्रकट किया गया, इसमें जो प्रकट हुआ है उसका लय अवश्य होगा। जो लय हो गया, वह पुनः किस रूप में प्रकट होगा, यह मेरे हाथ में है ही नहीं। कभी मैंने विवेक बुद्धि से विचार किया होता, कि जो जगत मेरे साथ प्रकट हुआ है, वह मुझसे पृथक् कैसे हो सकता है? देह सहित जगत का पूर्ण प्रतिनिधित्व उस समय की देह और देह की मानसिकता करती है। उस समय जो मेरा मूड होगा, उसी मानसिक विधा के अनुसार देहसहित जगत प्रकट होगा। मैं

निराकार में One in all था साकार प्रकटीकरण में मैंने स्वयं को One out of all मान लिया, यही मुझसे बहुत बड़ी भूल हो गई। वहीं से **'मैं'** (जीवात्मा) देश-काल, कर्म-धर्म, कर्तव्य-सम्बन्ध, शुभ-अशुभ, छोटा-बड़ा, ऊँचा-नीचा, पाप-पुण्य, उन्नति-अवनति, मान-अपमान, आधि-व्याधि-उपाधि, मल-विक्षेप-आवरण और न जाने किस-किस से जकड़ा गया। आँखें बंद थीं, तो मैं One in all था, आँखें खुली तो मैं Out of all हो गया और इस प्रकार मैं देह पर देह लेता हुआ आवृत होता रहा।

रात्रि में सुषुप्तावस्था में हमें जो स्वप्न आता है, उसमें हमारी देह सहित जगत के रूप में उस समय की पूर्ण सृष्टि होती है। सुबह उठकर हम जो अपना स्वप्न सुनाते हैं, तो अपनी स्वप्न वाली देह से सम्बद्ध होते हैं। वह देह नाम-रूप की अवचेतना में है। चेतना के आच्छादित होने का नाम अवचेतना है। चेतना लुप्त व नष्ट नहीं होती, बल्कि ढककर अवचेतना बन जाती है। चेतना में जीवात्मा None in all होता है, क्योंकि वहाँ देह सहित जगत का पूर्ण अभाव होता है। एक नाम-रूप की देह की अवचेतना जगत सहित देह की अवचेतना थी, तो **मैं** One in all था। लेकिन साकार प्राकाट्य में देह और जगत की पृथकता के भ्रम में **मैं** One out of all होकर अपनी समष्टि से कट सा गया।

प्रभु की महाचेतना मानव-देह में मानव-बुद्धि है। मानव-मन ईश्वर के आनन्द का स्रोत है। ईश्वरीय मन और चेतना में समन्वय होता ही है, इसलिए इसका प्रकाट्य **'सद्'** के रूप में होता है। समस्त साकार जगत का प्रकाट्य निराकार मानस से होता है। सुषुप्तावस्था में मेरे निराकार मानस से स्वप्न-सृष्टि प्रकट होती है, लेकिन अपनी उस निराकार स्थिति की मुझे अनुभूति नहीं होती। निद्रा से उठकर मैं जान जाता हूँ, कि स्वप्न-सृष्टि में **सब कुछ** मेरी **Nothingness** से प्रकट हुआ है। उसी में चलकर उसी में समाहित हो गया। सुषुप्ति जड़ता है, लेकिन **सुषुप्ति** की स्थिति का **ज्ञान, समाधि** है।

कोई वस्तु, कोई प्रश्न, कोई विचार, कोई विचार-प्रक्रिया, मन-मस्तिष्क

की कोई स्फुरणा किसी भी प्रकार से या सब प्रकार से हमें यह जनवा दे, कि हम कुछ नहीं चाहते, इस **अभावमय आनन्दमयी स्थिति** में प्रविष्टि का नाम ही **समाधि** है। **समाधि** वह मानसिक स्थिति है, जिसमें हमें **ज्ञान** होता है, कि हमें **देह सहित जगत का ध्यान** नहीं है और इस ज्ञान में किसी भी प्रकार से अपने **सद्‌गुरु** या **इष्ट** का **ध्यान** होता है। ध्यान दो प्रकार के हैं—एक देह और जगत के प्रपंच का ध्यान और दूसरा ईश्वर या सद्‌गुरु का ध्यान। दोनों ध्यान एक साथ नहीं हो सकते।

योगी को देह और जगत का ध्यान नहीं होता, क्योंकि उसका ध्यान ईश्वर (आत्म-चिन्तन, ब्रह्म-चिन्तन) में होता है। ईश्वर में ध्यान के कारण उसका देह और जगत में ध्यान नहीं होता। साथ ही योगी को यह भी ध्यान होता है, कि उसका ध्यान ईश्वर में लगा हुआ है और देह व जगत उसके ध्यान में नहीं है। **देह और जगत के ज्ञान न होने का ज्ञान ही ईश्वरीय ध्यान है।** ज्ञान और ध्यान दोनों पर्यायवाची हैं, बशर्ते कि वह ईश्वर में हो। **ईश्वर में ध्यान ही ज्ञान है और यह ज्ञान ही ध्यान है।** ज्ञान को आत्मसात् करने के लिए ध्यान का होना परमावश्यक है और **ध्यान, बिना ज्ञान के नहीं हो सकता।** जहाँ **ईश्वर में ध्यान** लग गया, वह **ज्ञानमय** ही होगा। **ध्यान नहीं होगा तो ज्ञान नहीं होगा और ज्ञान नहीं होगा तो ध्यान भी नहीं होगा।** **ज्ञान** का **प्रवचन, ध्यान** का **प्रवचन** है, उसे **ज्ञान** और **ध्यान** से सुनना **'श्रवण'** है।

The concentration in divinity is Meditation. **ध्यान का ईश्वर में केन्द्रीकरण समाधि है।** उस ध्यान का वर्णन ज्ञान है। ईश्वर में ध्यान का केन्द्रीकरण स्वयं में एक समाधि व अनुभूति है। वह अनुभूति जब शब्दों में विस्तार लेती है, तो उसे **प्रवचन** कहते हैं और उसे एकाग्र होकर सुनना ही **श्रवण** है। यही प्रवचन और श्रवण की परिभाषा है। समाधि स्वयं में एक अनुभूति है। समाधि की अवस्था में उस अनुभूति का वर्णन नहीं किया जा सकता। समाधि से उतर कर वह अनुभूति होठों तक आते-आते जूठी हो जाती है और उसका शब्दों में पूर्णतः वर्णन नहीं किया जा सकता।

जीवात्मा ईश्वर का इकलौता मानस-पुत्र है और अपने पिता परमात्मा की तरह सच्चिदानंद ठोस-घन-शिला एवं उसकी सभी विभूतियों से विभूषित है। पंच-महाभूतों की एक मानव-देह की सक्रियता में इसका प्रकाट्य **'मैं'** शब्द रूप में होता है। मैं इसकी एक है क्योंकि **'मैं'** (जीवात्मा) एक ही है और देहें अनेक हैं, क्योंकि जीवात्मा की मानव-देह एक है। उस एक देह की अवचेतना में आते ही जीवात्मा के लिए उसकी देह सहित जगत प्रकट होता है। उसका स्वरूप अभावमय है।

आनन्द अभावमय है और देहातीत है। जहाँ देह व जगत से सम्बन्धित सब कुछ का पूर्णतः अभाव हो जाए, वह अभावमय आनन्दमयी स्थिति जीवात्मा का स्वरूप है। उसे अपनी उस स्वरूपगत स्थिति की स्मृति है। जीवात्मा अपनी उस अभावमय आनन्दमयी स्थिति में जाने के लिए सोता है, लेकिन सुषुप्ति में उसे अपनी उस अभावमयी स्थिति का ज्ञान नहीं होता और यह भी ज्ञान नहीं होता, कि देह सहित जगत का उसके लिए पूर्ण अभाव हो गया है। किसी लक्ष्य तक पहुँचने के लिए हम किराए की कोई गाड़ी लें, तो उस गाड़ी के रख-रखाव आदि के विषय में हमें कोई चिन्ता नहीं होती। हम यात्रा का भरपूर आनन्द लेते हैं। गन्तव्य स्थान तक पहुँच कर हम किराया देते हैं और छुट्टी। लेकिन जब अपनी गाड़ी हो तो उसके रख-रखाव, पेट्रोल, ड्राइवर, रूट, लाइसैन्स, कर (टैक्स) आदि सबकी जिम्मेदारी हमारी होती है। हमारी उसके साथ अतिरिक्त लिप्तता भी हो जाती है।

जीवात्मा ने इसी प्रकार मानव-देह पाकर होश सम्भालते ही इस देह पर अधिपत्य कर लिया, कि देह मेरी है। हमारी देह का एक उद्देश्य एवं परिलक्षित लक्ष्य है। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक नहीं है, कि हम उस देह से लिप्त हो जाएँ। उसे अपनी वस्तु नहीं, बल्कि अपना स्वरूप (सब कुछ) ही मान लें। यदि अपना मानेंगे तो देह अनेकानेक, अगणित सिरदर्दियाँ हमारे सम्मुख रख देगी। देहाधिपत्य (देह मेरी है) करते ही देह के रख-रखाव की सारी जिम्मेदारियाँ हमारी हो गईं और देहाध्यास (मैं देह हूँ) करते ही हम देह का लक्ष्य या गन्तव्य स्थान भूल गए। देह द्वारा देह के

लिए ही आजीवन संघर्षरत रहे; हमने यह जानना ही नहीं चाहा, कि देह काहे के लिए है।

मैं उदाहरण दूंगा। मानों हमने अपनी गाड़ी ली। अब गाड़ी हमारी है। उसमें हम कभी म्यूज़िक सिस्टम लगवाने जा रहे हैं, कभी रेडियल टायर लेने जा रहे हैं, कभी सीट कवर सुन्दर से सुन्दर लगवा रहे हैं, कभी गाड़ी धुलवाते हैं, कभी पॉलिश से चमकवाते हैं, कभी आपतकालीन सुरक्षा की व्यवस्था करते हैं। कभी गाड़ी किसी से टकरा गई तो उसे गैराज में ले जाते हैं। इसका अर्थ है गाड़ी का प्रयोग गाड़ी के लिए ही कर रहे हैं और गाड़ी को गाड़ी के लिए ही थका रहे हैं। इस प्रकार होश सम्भालते ही आजीवन होश रहने तक हम अपनी मानव-देह को देह के लिए ही इस्तेमाल करते रहते हैं। दिनभर भाग-दौड़ एवं संघर्ष करते हुए हम रात को सोना चाहते हैं। सोने के लिए हमें आरामदायक बैडरूम, ए. सी. तथा और बहुत कुछ चाहिए। हमारे परिवार में सब स्वस्थ हों, किसी की चिन्ता न हो, कोई शोक न हो। एक बार नींद आने पर हमें कुछ नहीं चाहिए। क्योंकि वहाँ हमारा देह सहित जगत ही नहीं रहता, लेकिन हमें इसका ज्ञान नहीं होता, कि हमें कुछ नहीं चाहिए। इसलिए निद्रा आनन्द की स्थिति नहीं है। आजीवन देह व देह पर आधारित जगत के लिए करना, पाना, खोना और कुछ न कुछ होने के लिए किसी न किसी चाहत की आसक्ति को लेकर मर जाते हैं। उन्हीं आसक्तियों में पुनः पैदा होकर जन्म-जन्मान्तरों के काल-चक्र में भटकते रहते हैं।

प्रभु ने हमें मानव-देह दी है, तो इसके भरण-पोषण एवं सुरक्षा आदि की उचित व्यवस्था की हुई है। इसके लिए थोड़ा बहुत हमसे भी करवा लेता है। ''हीले रिजक बहाने मौत'' पेट भरने का प्रबन्ध परमात्मा करता ही है, बशर्ते हम उसके चरणों में समर्पित हो जाएँ। महादुर्भाग्यवश युगों-युगान्तरों से देह सहित जगत की अवचेतनामयी विधाओं में लिप्त होकर हम इन्हीं में इतने रीझ जाते हैं, कि सद्‌गुरु के सान्निध्य एवं स्पर्श की चेतनता हमें अस्वभाविक लगती है। हम अवचेतना को ही सर्वस्व मान बैठते हैं–**''दर्द का हद से गुजर जाना है दवा हो जाना।''**

किसी भी तरह से हम जान जाएं, कि हमें कुछ नहीं चाहिए। अपनी उस अभावमयी स्थिति का ज्ञान ही आनन्द है। मैं पुनः वर्णन करूँगा। प्रगाढ़ निद्रा में भी हम अभावमयी स्थिति में होते हैं, जहाँ देह सहित जगत की समस्त विधाओं का लोप हो जाता है। इसलिए हम कुछ नहीं चाहते, लेकिन हमें इसका ज्ञान नहीं होता। इसलिए वह आनन्द की स्थिति न होकर जड़ता की स्थिति है। वास्तव में हम जानना चाहते हैं, कि हमें कुछ नहीं चाहिए। **यही ज्ञान हमारी असली चाहत है।** इसके लिए हम सोते हैं लेकिन सोकर अपनी इस स्थिति का ज्ञान हमें नहीं होता, क्योंकि हम सो जाते हैं। The want which makes us know that we do not want anything is **जिज्ञासा**। जिज्ञासा स्वयं में एक चाहत है, जिसमें हम अपनी उस स्थिति के बारे में जानना चाहते हैं, जिसमें हमें कुछ नहीं चाहिए।

सद्‌गुरु अपने सद्‌शिष्य की जिज्ञासा, भाव व स्वभाव के अनुसार सम्बन्धों में पुरुषार्थ कर्मों से स्वयं को उसके साथ जोड़ देता है। सद्‌गुरु का ध्यान हमें जगत के ध्यान में नहीं जाने देता। जगत से छूटने में हमें बहुत सी समस्याएँ आती हैं, इसलिए जिज्ञासुओं को प्रारम्भ में थोड़ा बहुत तनाव झेलना पड़ता है। सद्‌गुरु, देह सहित जगत की अवचेतनामयी विधाओं से निकालने के लिए सद्‌शिष्य को किसी न किसी कृत्य अथवा तथाकथित सेवा में लगा देता है, ताकि उसका ध्यान अपने जगत सहित देह से हट जाए। इस रूपान्तरण में समय अवश्य लगता है, लेकिन एक न एक दिन सद्‌गुरु-कृपा से सद्‌शिष्य की पूर्ण एकाग्रता देह सहित जगत के ध्यान से हट कर सद्‌गुरु व इष्ट में ही हो जाती है।

ध्यान तो हम सबका कहीं न कहीं लगता है, तभी तो ज्ञान होता है कि दो घण्टे बैठ कर भी ध्यान नहीं लगा। कहीं और ध्यान लगा, इसलिए सद्‌गुरु व इष्ट में ध्यान नहीं लगा। उसकी कृपा से ध्यान की पूर्ण एकाग्रता जब इष्ट व सद्‌गुरु में ही हो जाती है, तो समाधि की अभावमयी आनन्द की स्थिति में प्रविष्टि होती है। सद्‌गुरु कहता है–''**उत्तिष्ठ जाग्रत !** तू उठ गया है, चाहे तू जगत सहित देह One in all है अथवा जगत रहित देह One

out of all है यह तेरी अवचेतना है अब तू जाग। अर्थात् तू देख, कि तू None in all है। न तू देह है न जगत है। सुषुप्ति में तू देह व जगत नहीं था, लेकिन तू उसे देख नहीं पाया। अब तू अपनी उस मानसिक स्थिति को देख, जिसमें न तू देह है न जगत है। तूने स्वयं को जगत सहित देह मान लिया है अथवा जगत को पृथक् और अपनी देह को पृथक् मान लिया है; दोनों में तू मात्र अवचेतना में उठा हुआ है, जागा हुआ नहीं है। सद्गुरु जागृति के लिए समाधि का आभास कराता है। भाव समाधि, योग समाधि, ज्ञान-ध्यान समाधि, कीर्तन व नृत्य समाधि, प्रवचन समाधि, श्रवण समाधि, प्राणायाम समाधि किसी भी प्रकार से अपने सद्शिष्य को देह सहित जगत रहित मानसिक स्थिति का दिग्दर्शन व अनुभूति करवा देता है। समाधि द्वारा **'धि'** यानि बुद्धि सम हो जाती है और मैं (जीवात्मा) None in all की स्थिति की अनुभूति करता हूँ। तभी All in all (परमात्मा) के सम्मुख हो कर शिवत्व की अनुभूति कर पाता हूँ।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(27 फरवरी एवं 7 मार्च, 2008)

विदेह-देह

ईश्वर देशातीत, कालातीत, धर्मातीत, कर्मातीत, कर्तव्यातीत, सम्बन्धातीत, लिंगातीत मायातीत और ब्रह्माण्डातीत है। यदि वह इन विधाओं से परे है, तो देश, काल, धर्म, कर्म, कर्तव्य, सम्बन्ध, लिंग, माया और ब्रह्माण्ड आदि किसके हैं? इन सब मायिक विधाओं का आधार एवं अस्तित्व क्या है? क्या देश, काल, धर्म आदि ये सब विधाएँ शिवातीत हैं? ऐसा नहीं है, शिव ब्रह्माण्डातीत है, लेकिन कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड शिवमय है। देश-काल, धर्म-कर्म-कर्तव्य, सम्बन्ध, लिंग तथा समस्त चराचर जगत की माया का आधार व अस्तित्व शिव है। शिव स्वयं में अनिर्वचनीय, प्रवचनातीत, श्रवणातीत, वर्णनातीत, तत्त्वातीत एवं विभूत्यातीत विभूति है। समस्त दृश्यमान देश-काल, धर्म-कर्म-कर्तव्य, सम्बन्ध, लिंग एवं त्रिगुणमयी माया से युक्त कोटि-कोटि साकार ब्रह्माण्डों का वर्णन किया जाता है। निराकार शिव अनिर्वचनीय है, लेकिन उसकी साकार माया का प्रवचन, श्रवण एवं वर्णन होता है। यह दूसरी बात है, कि पूर्णतः वर्णन सम्भव नहीं है, क्योंकि यह माया भी स्वयं में शिव की ही तरह अथाह है।

हम सब मानव ब्रह्माण्ड में रहते हैं और देश-काल, धर्म-कर्म-कर्तव्य, सम्बन्ध, लिंग और माया के तीनों गुणों से सम्बद्ध हैं। हमारा अस्तित्व, आधार एवं कारण शिव है। शिव स्वयं में ब्रह्माण्ड की इन सब विधाओं से अतीत है। जिसका अस्तित्व, आधार, कारण, निर्माणकर्ता, पालनकर्ता व संहारकर्ता सच्चिदानंद (सद्, चेतन व आनन्द का अकाट्य संगम) शिव है, वह असद्, अवचेतन व आनन्दरहित नहीं हो सकता, क्योंकि कोटि-कोटि

ब्रह्माण्डों की समस्त साकार मायिक विधाएँ शिवमय हैं। शिव है, तो ये सब हैं और ये सब नहीं हैं, तो भी शिव है। **शिव है, शिव है, शिव है।**

कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का **'कारण'** शिव है, इनके **'कारणों का कारण'** (कारणं कारणानाम्) शिव है और इनका **'अकारण'** शिव है। क्योंकि शिव इनके बिना भी है, लेकिन ये शिव के बिना नहीं हैं। समस्त ब्रह्माण्डों की साकार व शिवमय मायिक विधाएँ देखी, सुनी, सूँघी, चखी व स्पर्श की जा सकती है। इनके विषय में बोला जा सकता है, लेकिन शिव अनिर्वचनीय है। निराकार शिव को देखा, सुना, सूँघा, चखा और छुआ नहीं जा सकता। शिव की शक्ति मूर्तिमान होकर शिव के सद् संकल्पों को उसके संकेतों से सम्पादित एवं प्रकट करती है। समस्त दृश्यमान साकार एवं शिवमय जगत की मायिक विधाएँ उसकी क्रीड़ा एवं विलास हैं। अनेकों महाब्रह्माण्डों के शिव के साथ सम्बन्धों को जानने के लिए हमें इन ब्रह्माण्डों की मायिक विधाओं को जानना होगा। प्रत्येक साकार विधा से शिव का दिग्दर्शन करते हुए उस निराकार एवं अदृश्य की अनुभूति की जा सकती है।

मानव-देह है, तो समस्त ब्रह्माण्डों में देश-काल, धर्म-कर्म-कर्तव्य, सम्बन्ध, लिंग एवं माया के तीनों गुण आदि हैं। सारांश में मानव-देह कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की समस्त साकार एवं निराकार विधाओं की प्रतिनिधि है। मानव-देह है तो **'शिव'** है, देह नहीं है, तो **'शिव'** है। यदि **'मैं'** (जीवात्मा) अपनी देह की अवचेतना में नहीं हूँ, तो मेरे लिए जगत की किसी भी साकार विधा का अस्तित्व नहीं है। मेरे अवचेतना में होने का कारण मेरी चेतना है। मेरी (जीवात्मा की) अवचेतना और चेतना दोनों का अस्तित्व शिव है:–

''निराकार रूपं शिवो हम् शिवो हम्,
साकार कारणं शिवो हम् शिवो हम्।
कारण कारणानाम् शिवो हम् शिवो हम्,
अकारण कारणं शिवो हम् शिवो हम्।''

लोम-विलोम में अद्वितीय शक्ति का प्रस्फुटन होता है और विशिष्ट

रहस्य अनावृत हो जाता है। घर्षण, मन्थन, मैथुन ही लोम-विलोम है। आत्म-चिन्तन व अध्यात्म में जो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं, वे लोम-विलोम मन्थन से मिलते हैं। हम दही का मन्थन करते हैं, तो मन्थन से घी निकलता है। दो लकड़ियों के घर्षण से दावाग्नि, जल के मन्थन से बड़वाग्नि प्रकट होती है। तो मन्थन से कुछ ऐसा प्रकट होता है, जो अद्वितीय और अतीत होता है। इसी प्रकार देह द्वारा तप से देवत्व व ईश्वरत्व का प्रकाट्य होता है। शिव, देहातीत व देह-मुक्त है और देह, शिवमय व शिव-युक्त है। ईश्वर, कर्मातीत व कर्म-मुक्त है और कर्म, ईश्वर-युक्त हैं। जिस प्रकार दूध, घी-युक्त है और घी, दूध-मुक्त है। देह की भस्मी, देहातीत व देह-मुक्त है और देह, भस्मी-युक्त है।

ईश्वर, देशातीत, कालातीत, कर्मातीत, कर्तव्यातीत, धर्मातीत, सम्बन्धातीत, लिंगातीत व माया के तीनों गुणों से अतीत है। लेकिन देश, काल, कर्म, धर्म, कर्तव्य, सम्बन्ध, लिंग, माया के तीनों गुण शिव से युक्त व शिवमय है। दोनों एक दूसरे के अतीत नहीं हैं। समस्त कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों और देह के एक-एक श्वास, एक-एक पल, एक-एक विधा में ईश्वर का वास है और ईश्वर, इन सबसे अतीत एवं मुक्त है। दूध के एक-एक अंश, अणु, परमाणु में घी समाहित है। दूध से बाती नहीं जल सकती। दूध से प्रकट होने वाला घी, दूधातीत है लेकिन दूध, घी-युक्त है। यही सम्बन्ध जगत और ईश्वर में हैं। दूध का मन्थन किया जाता है, तो उसमें से घी निकल आता है। दूध से दही बनाया और उसका मन्थन करके मक्खन निकाल लिया गया। मक्खन दुबारा दही नहीं बन सकता, साथ ही मक्खन निकालने के बाद वह दही भी दही नहीं रहता।

हम होश सम्भालते ही देह में विभिन्न परिवर्तन चाहते हैं। देह में हर परिवर्तन स्वयं में परिवर्तनशील है। यदि कोई परिवर्तन है, तो वह स्थाई नहीं रह सकता। यह जानते हुए कि हर परिवर्तन आगे फिर परिवर्तित होगा, हम फिर भी कुछ न कुछ परिवर्तन चाहते हैं। परिवर्तन से परिवर्तन हुआ है और परिवर्तन का परिवर्तन होगा, क्योंकि वह परिवर्तन है। देह व जीवन-काल में

जितने परिवर्तन होते हैं, वे हमारी चाहतों से सम्बन्धित नहीं हैं। लेकिन फिर भी हम कुछ न कुछ परिवर्तन चाहते हैं। वह दूसरी बात है, कि परिवर्तन जब प्रकट हो जाए, वह हमारी चाहत के अनुकूल या प्रतिकूल कुछ भी हो सकता है। वास्तव में हम जीवन से चाहते क्या हैं, यह हम नहीं जानते। **चाहत बनाम चिन्ता बनाम भविष्य बनाम परिवर्तन।** हमारा समस्त जीवन इसी में बीत जाता है। भस्मी ऐसा परिवर्तन है, जिसकी मेरी चाहत हो, तो भी होगा और चाहत न हो, तो भी होगा। साथ ही वह परिवर्तन एक बार हो गया, तो फिर नहीं बदलेगा। क्योंकि वह **विशेष देह** का ऐसा परिवर्तन है, जो किसी **देह विशेष** से सम्बन्धित नहीं है। देह उस परिवर्तन (भस्मी) से युक्त है, लेकिन वह परिवर्तन देह से मुक्त है, क्योंकि देहातीत (देह के बाहर) और देहातीत (देह की देश-काल आदि सभी विधाओं से परे) है।

भस्मी, देह का निश्चित, परिलक्षित व दर्शित परिवर्तन है, जिसे मैं देह के रहते नहीं देख सकता। क्योंकि देह मेरी धारणा हो चुकी है। इस विषय का **'धारणा अवधारणा'** शीर्षक प्रवचन में सविस्तार वर्णन हो चुका है। जीवन व देह में सारे लक्ष्यों को हटा कर भस्मी परिलक्षित है, दर्शित है और निश्चित है, लेकिन मेरे लिए अनिश्चित है। जीवन-काल में उस निश्चित को सुनिश्चित करते हुए उस परिलक्षित को लक्ष्य बनाकर उस दर्शित का दर्शन **मैं** क्यों नहीं कर सकता? ईश्वर ने जीवन **में** मेरे छोटे-छोटे लक्ष्यों के ऊपर देह का एक परिलक्षित लक्ष्य रख दिया, कि मैं चाहे कुछ भी कर लूँ, बन जाऊँ और कुछ भी हो जाए, उस **'सब कुछ'** का अन्ततः **'कुछ नहीं'** (भस्मी) रह जाएगा। ईश्वर ने मेरे समस्त भविष्यों और परिवर्तनों का निश्चित, भविष्य व परिवर्तन रखा है, जो होगा ही। मुझे देह की धारणा है। यदि मुझे वास्तव में परिपुष्ट देहाध्यास है, तो जिस भस्मी से मेरी देह युक्त है, मैं उसका जीते जी प्रकाट्य क्यों नहीं कर सकता?

देह धारणा में **'मैं'** (जीवात्मा) ने देह का हर स्वरूप, हर परिवर्तन देखा और विभिन्न परिवर्तनों व भविष्यों की चाहत की। कुछ भविष्य पूरे हुए, लेकिन भविष्य नहीं समाप्त हुआ। परिवर्तन हुए, उन्होंने अन्य परिवर्तनों की

चाहत उत्पन्न कर दी। क्योंकि हर परिवर्तन किसी परिवर्तन की जगह था। मैं कुछ चाहता हूँ क्योंकि पहले कुछ चाहता था। इसलिए मैं फिर कुछ चाहता हूँ और आगे भी कुछ न कुछ चाहता रहूँगा। मेरी चाहतों का कोई भी सिर-पैर नहीं होता। I want something because I wanted something and if I want something I would want something. देह-धारणा में देह की **'भस्मी'** ही एक मात्र ऐसा परिवर्तन है, जो स्वयं में अपरिवर्तनीय है और वह देह का परिवर्तन होते हुए भी स्वयं **परिवर्तन,** देह का नहीं है। वहाँ पहुँच कर किसी परिवर्तन की चाहत समाप्त हो जाती है। यदि जीते जी **मैं** उसके प्रकाट्य की चाहत रखते हुए उससे आत्मसात हो जाऊँ, तो मुझे देह की परिवर्तनशीलता आत्मसात् हो जाएगी।

जिस प्रकार दही के कण-कण में मक्खन समाहित है और मन्थन के बाद मक्खन का गोला निकलने के बाद दही पहले जैसा नहीं रहता, तो मेरी देह, जो भस्मी-युक्त है, उसके रहते भस्मी के प्रकाट्य के बाद मैं देह रूप में क्या रहूँगा? मक्खन निकलने के बाद दही छाछ बन जाता है। भस्मी के प्रकाट्य के बाद मेरी वह देह, **विदेह-देह** हो जाती है, जो भस्मी की तरह देशातीत, कालातीत, धर्मातीत, कर्मातीत, कर्तव्यातीत, सम्बन्धातीत, लिंगातीत और माया के तीनों गुणों से अतीत होती है। तभी मानव-जीवन का वास्तविक रसास्वादन होगा। मानव-देह का यही लक्ष्य है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(7 एवं 9 मार्च, 2008)